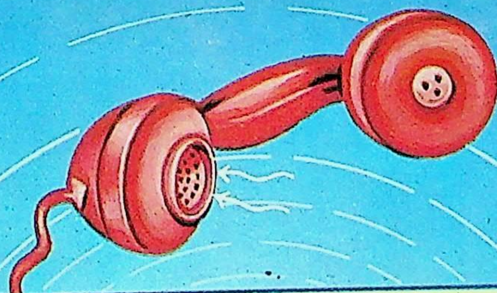
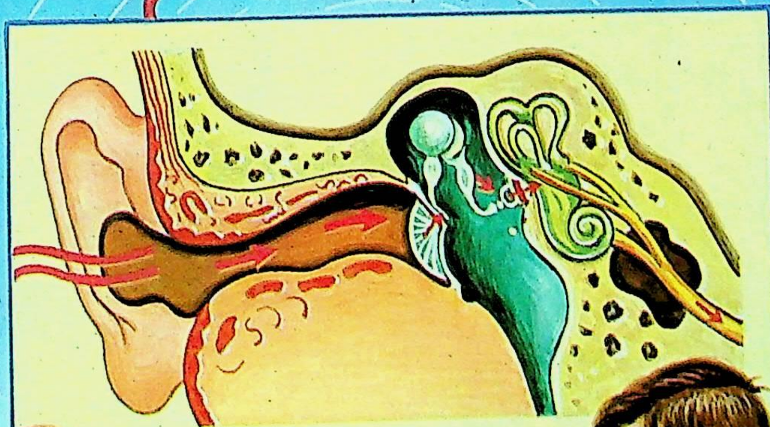
आवाज और हम

डा॰ एम॰ एल॰ शुक्ल







आवाज और हम

मंद से मंद ध्वनि, जो मनुष्य के कानों से सुनी जा सकती है, को शून्य डेसीबल इकाई माना गया है। कानाफूसी की खुसफुस प्रायः 10 से 20 डेसीबल तक ही होती है। 140 डेसीबल की ध्वनि मनुष्य के कान के परदे फाड़ सकती है और उसे बहरा कर सकती है। एक सौ पचास डेसीबल पर तो शरीर में भारी विक्षोभ उत्पन्न हो सकता है—मृत्यु तक हो सकती है। यों तो 70 डेसीबल को ही असह्य मानकर उसके विरुद्ध शरीर विद्रोह करने लगता है।

तेज शोर के बीच रहनेवाले लोगों की शारीरिक एवं मानसिक स्थिति मंद या तीव्र रोगों की ओर अग्रसर होती है। ····ध्वनि का प्राणियों पर क्या प्रभाव पड़ता है, यह देखने के लिए गिनीपिग चूहों को जेट इंजन के शोर में रखा गया—कुछ ही मिनट में वे झुलसकर मर गए। ····इतनी तीव्र ध्वनियों का आविष्कार कर लिया गया है कि उनके शोर मात्र से बारूद या पेट्रोल की तरह देखते-देखते भयंकर अग्निकांड हो सकता है।

— इसी ग्रंथ में पढ़ें

आवाज की असीम-अपार शक्ति का
वैज्ञानिक विवेचन अर्थात् आधुनिकतम
ध्वनि-विज्ञान और उसके वैज्ञानिक, दार्शनिक,
आध्यात्मिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा
व्यक्तिगत आयामों और प्रभावों का आकलन
एक चिकित्सा-वैज्ञानिक द्वारा रोचक साहित्यिक
भाषा-शैली में प्रस्तुत है—

आवाज और हम

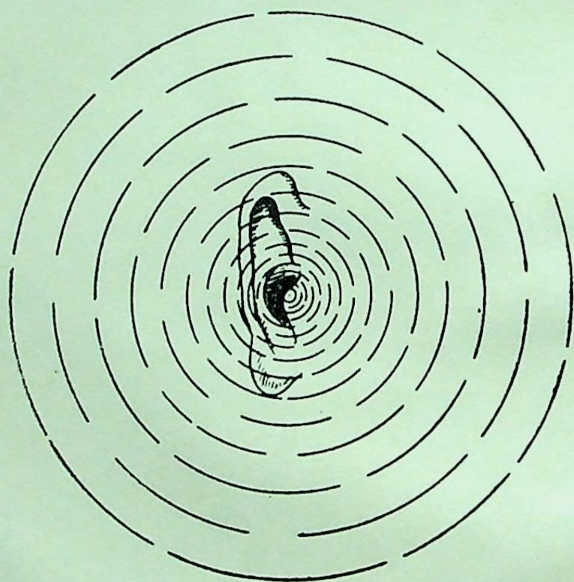
प्राचीन भारतीय परंपरा में निहित
'शब्द ब्रह्म' की अवधारणा से लेकर
आधुनिकतम 'विस्फोट सिद्धांत' (Big Bang Theory)
तक वैज्ञानिक शोध और संकल्पना का
अभिनव प्रस्तुतीकरण—वैज्ञानिक विषय का
तार्किक विवेचन, सहज-सरस 'भावात्मक' निबंध
शैली और चिंतनगर्भित साहित्यिक भाषा में —

आवाज और हम

वि०ला — २८७

आवाज और हम





आवाज और हम

(ध्वनि विज्ञान)

डा॰ एम॰ एल॰ शुक्ल

विद्या विहार, नई दिल्ली-२

प्रकाशक : विद्या विहार, १६८५ कूचा दखनीराय, दरियागंज, नई दिल्ली-२
संस्करण : प्रथम, १९९० / सर्वाधिकार : सुरक्षित / मूल्य : सौ रुपए

AWAAZ AUR HUM (SOUND) by Dr. M. L. Shukla
Rs. 100.00

समर्पण

मेरे स्वर्गीय पिता परमपूज्य पंडित रामभरोसे शुक्ल को यह पुस्तक समर्पित है। जब वह केवल दो वर्ष के थे, उनके पिताजी की मृत्यु हो गई थी। कुछ ही वर्षों बाद उनकी मातृश्री भी परलोक सिधार गईं। उनकी मौसी ने उन्हें पाल-पोसकर बड़ा किया। इस तरह से यथार्थ में उनका सारा जीवन रामभरोसे ही था। उन्होंने अपना जीवन एक शिक्षक के रूप में प्रारंभ किया था। वह तुलसीकृत 'रामचरितमानस' के प्रकांड विद्वान्, धर्मपरायण और धर्मभीरु व्यक्ति थे। लेकिन उनका कर्मठ व्यक्तित्व हम सभी भाइयों के लिए प्रकाशस्तंभ था। उनकी मृत्यु ८२ वर्ष की उम्र में हुई। वह सदैव कहा करते थे कि जीवन कितना ही संघर्षमय, चुनौतीपूर्ण क्यों न हो, एक गुणोत्कृष्ट व्यक्ति को सदैव सम्मान मिलता है। गुण ग्राहकों की कभी कमी नहीं रही। अकबर इलाहाबादी की ये पंक्तियां वह अकसर दोहरा दिया करते थे—

"कमी नहीं है कद्रदां की अकबर,
करे तो कोई कमाल पैदा।"

उनके जीवन-दर्शन का सारा मर्म निम्नलिखित पंक्तियों में समाहित है—

"धन्य जनम जगती तल तासू।
पितहिं प्रमोद चरित सुनि जासू।"

आज उन्हें परलोक सिधारे १८ वर्ष पूर्ण हो गए, परंतु आज भी उनके जीवन की आकांक्षाएं उक्त पंक्तियों में झांक रही हैं। वह पितृ-सुख से वंचित रहे परंतु जीवनपर्यंत हम चारों भाइयों के चरित्र की प्रशंसा सुनते रहना चाहते थे। उन्हीं की पुण्य कृपा तथा आशीर्वाद के फलस्वरूप मेरी यह पुस्तक है।

—डॉ० मदनलाल शुक्ल

आमुख

डॉ० मदनलाल शुक्ल प्रसिद्ध चिकित्सा-विशारद और विदग्ध विचारक रहे हैं। उन्होंने लगभग आधी शताब्दी के अपने अनुभवों और चिंतन-सरणियों के विभिन्न आयामों की सूक्ष्म संवेदनाओं का आकलन 'आवाज और हम' नामक ग्रंथ में बड़े अध्ययन और अध्यवसाय से प्रस्तुत किया है। शब्द, ध्वनि एवं उसके सूक्ष्म संचरणों का ऐसा वैज्ञानिक विवेचन साहित्य की मनोभूमि में अभी तक विश्लेषित नहीं हो सका था। भारतीय मनीषा ने शब्द को ही ब्रह्म मानकर सृष्टि की संरचना की जो मनोवैज्ञानिक कल्पना की थी, उसका सारभूत विवेचन इसमें उपलब्ध होता है। छांदोग्य उपनिषद् में 'ओ३म्' शब्द को अभिव्यक्ति का प्रथम आधार माना गया है। नाभि से निसृत इस नादात्मक स्वर को इसीलिए परम मांगलिक माना गया—

ओङ्कारश्चाथ शब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा।
कण्ठं भित्वा विनिर्यातौ तेन मांगलिकावुभौ॥

—छांदोग्योपनिषद् १।१।१

इसी का विस्फोट 'माँ' और बछड़े की 'बाँ' में तथा सृष्टि की समस्त मूलाधारी व्यंजनाओं में अंतर्निहित है। ऋषि ने 'ओ३म्' और 'अथ' को कंठ को फाड़कर फूटने की ध्वनि के रूप में ग्रहण किया है। इसीलिए प्रत्येक मांगलिक कार्य का प्रारंभ इसी से माना गया।

डॉ० शुक्ल ने स्वयं वैज्ञानिक होते हुए भी दर्शन, संगीत, धर्म, प्रकृति, साहित्य, इतिहास, कला सभी में शब्द और ध्वनि के इस मर्म को उद्घाटित करने का प्रयत्न किया है। पं० जवाहरलाल नेहरू ने अपनी बेटी इन्दिरा को लिखे पत्रों में प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों को आत्मसात करने के लिए जिन प्रतीकों की ओर इंगित किया था, श्री शुक्ल ने इस ग्रंथ में उसके विभिन्न स्वरूपों को अद्भुत अंतर्दृष्टि से संजोया है। पं० नेहरू ने प्रियदर्शी इन्दिरा को सृष्टि के रहस्य के संबंध में लिखा था, "एक छोटा-सा रोड़ा, जिसे तुम सड़क पर या पहाड़ के नीचे पड़ा हुआ देखती हो, शायद संसार की पुस्तक का छोटा-सा पृष्ठ हो, शायद

इससे तुम्हें कोई नई बात मालूम हो जाए। शर्त यही है कि तुम्हें उसे पढ़ना आता हो। कोई जबान—उर्दू, हिंदी या अंग्रेजी—पढ़ने के लिए तुम्हें उसके अक्षर सीखने होते हैं। इसी तरह पहले तुम्हें प्रकृति के अक्षर पढ़ने पड़ेंगे तभी तुम उसकी कहानी उसके पत्थरों, चट्टानों, निर्झरों और नदियों की किताब से पढ़ सकोगी।"

'आवाज और हम' में अंतरात्मा के उन्हीं विविध स्तरों को उद्घाटित करने का प्रयत्न किया गया है। शीर्षस्थ शल्यशास्त्री (सर्जन) होने के साथ-साथ श्री शुक्ल मानव मन के उन स्तरों को पर्त-दर-पर्त हमारी चेतना में सहज भाव से उतारने में समर्थ हो सके हैं जिनके लिए कालिदास ने कहा था कि—

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुकी भवति यद् सुखतोपि जंतुः।
तत् चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्ण
भावस्थिराणि जननांतर सौहृदानि॥

अर्थात् किसी सुंदर दृश्य को देखकर अथवा किसी मधुर शब्द को सुनकर सुखी व्यक्ति भी क्षण-भर के लिए पुलकित हो उठते हैं। संभवतः अनजाने ही उस समय उस दृश्य अथवा शब्द के स्पर्श से उसके जन्म-जन्म के संस्कारों की पर्तें संचरित हो उठती हैं।

श्री शुक्ल ने शब्द और ध्वनि के इसी माध्यम से मानवात्मा के उन बिखरे सूत्रों को गूंथने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया है जिनके द्वारा मानवमात्र की आशा-आकांक्षाओं, स्वप्नों और आदर्शों को नई आध्यात्मिक संवेदनाओं से जोड़ा जा सकता है। आज के युद्ध-विग्रह, स्वार्थ-लिप्सा, संकीर्णता और जड़ता से संत्रस्त विश्व में 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना को संचरित करने का यह संकल्प सर्वथा सराहनीय है। युद्ध-जर्जर, शंकाग्रस्त, क्षुब्ध अहं के विस्फोट से नष्टप्राय हो जाने की प्रलयंकरी विभीषिका से स्वस्ति प्रदान करने और मंगल एवं कल्याण का पथ प्रशस्त करने वाले पाथेय के रूप में यह सद्प्रयास सर्वथा अभिनंदनीय है।

उज्जैन

—शिवमंगलसिंह सुमन

प्राक्कथन

'आवाज और हम' डॉ० मदनलाल शुक्लजी की अपने विषय की मौलिक रचना है। आवाज न केवल बाह्य जगत् में गूंजती है प्रत्युत् हमारे अभ्यंतर जगत् में भी विद्यमान है। वह सत्-असत् का संकेत देती रहती है। वर्तमान समय में महात्मा गांधी ने मौन की आवाज सुनी थी। वह अनुभव करते थे कि अंतरात्मा की आवाज ही सत्य का निर्देशन करती है। आज समाज में गांधीवादियों ने अंतर की आवाज को अनसुना कर दिया है। अंतर और बाह्य ध्वनियों का विद्वान् लेखक ने तर्कसम्मत विवेचन किया है।

प्रकृति का प्रत्येक अंग कुछ बोलता है पर हम सब कुछ नहीं सुन पाते। कवि भी भविष्य दृष्टा होता है। वह हृदय की धड़कनों को सुनता है और उन्हें शब्दों में अभिव्यक्ति देता है। विद्वान् लेखक का यह निष्कर्ष है कि यदि हम अपने हृदय और प्रकृति के प्रत्येक अंग की आवाज सुनने लगें और उसके संकेतों से जाग्रत् हो उठें तो व्यक्ति, समाज और देश का महान् कल्याण संभव है। उसका विवेक जागेगा तथा उसमें नवस्फूर्ति आएगी।

लेखक ने, जो ऐलोपेथी पद्धति के कुशल सर्जन रहे हैं, समाज की नाड़ी की धड़कनों की आवाज को ध्यान से सुना है। विकृत एवं प्रदूषित आवाज के परिणामों की ओर जन सामान्य का ध्यान आर्काषित किया है।

आवाज बहुआयामी है। लेखक ने उसके वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक, साहित्यिक, आध्यात्मिक तथा व्यावहारिक पक्ष की विवेचना की है। पुस्तक के अंत में उनके द्वारा 'सामूहिक अंतरराष्ट्रीय आवाज' में व्यक्त विचारों से मैं पूर्णरूपेण सहमत हूं। विश्व का कल्याण सामूहिक सद्बुद्धि तथा सहयोग से संभव है। पाठक इस पुस्तक को पढ़कर न केवल अपने ज्ञान को समृद्ध बनाएंगे अपितु समाज और देश के हित को भी समझेंगे।

मुझे विश्वास है कि ऐसे विषय पर प्रस्तुत पुस्तक के अध्ययन से समाज की सुप्त चेतना जाग्रत् होगी और व्यक्ति अपनी अंतरात्मा की आवाज को सुनने में सक्षम होंगे। मैं विद्वान् लेखक की सर्वथा नूतन विषय पर अध्ययन एवं चिंतनपूर्ण

रचना पर हृदय से शुभकामनाएं करता हूं।

आशा है, न केवल हिंदी-जगत् में इस पुस्तक का यथोचित स्वागत होगा अपितु अहिंदी-क्षेत्रों में इस पुस्तक का क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवाद भी होगा। इस प्रकार लेखक के उद्देश्य की पूर्ति हो सकेगी। प्रत्येक लेखक की अभिलाषा समाज को स्वस्थ और सुंदर देखने की होती है। डॉ० मदनलाल शुक्ल द्वारा लिखित 'असामयिक मृत्यु : कारण और बचाव' प्रभात प्रकाशन, दिल्ली द्वारा प्रकाशित हो चुकी है। 'आवाज और हम' उनकी दूसरी कृति है।

—विनयमोहन शर्मा

भूमिका

आवाज और वाणी का संसार जितना व्यापक है उतना ही रहस्यमय भी है। सही अर्थ में उनकी दुनिया में प्रवेश पाना सरल नहीं। सामान्यत: जो हम सुनते और बोलते हैं, वह मानव-जीवन का एक स्वाभाविक अंग है। लेकिन आवाज और वाणी की पेचीदगी तथा बारीकियों की दुनिया अत्यंत आकर्षक है। हमारे पूर्वजों ने स्फोट और ध्वनि को लेकर जो साहित्य लिखा है उससे इस दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों का ज्ञान होता है। कुमारिल भट्ट, भर्तृहरि तथा पाणिनि जैसे प्रकांड विद्वानों ने स्फोट और ध्वनि के बीच का अंतर व उनकी व्यापकता को समझाया है।

इस पुस्तक में मैंने ध्वनि के सृजन के साथ-साथ वाणी के सृजन, विकास और प्रकारों की चर्चा की है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी कुछ अध्याय लिखे गए हैं; जैसे मौन की आवाज, मौसम की आवाज, अंधत्व में आवाज और वाणी, आंतरिक और बाह्य कोलाहल। इन अध्यायों में सर्वांगीण वाणी के विकास की रूपरेखा है। यों तो संपूर्ण जीवन भी अपूर्ण रह जाता है पर समन्वित विकास की चेष्टा तो करनी ही चाहिए। इसके अतिरिक्त पुस्तक में व्याहारिक विषय; जैसे ध्वनि प्रदूषण पर भी मैंने उचित सामग्री दी है। ध्वनि प्रदूषण से सारा वातावरण कैसे विषाक्त होता है तथा उसके कारण कैसे कुछ शारीरिक व मानसिक बीमारियां हो जाती हैं, इन सब पर भी चर्चा इसमें की गई है।

प्रकृति की आवाज, समारोह, उत्सव, युद्ध तथा श्मशान की आवाज जैसे अध्यायों में मैंने नैसर्गिक तथा चिरंतन ध्वनियों की ओर संकेत किया है। प्रकृति के हर क्षेत्र से मानव संदेश पाता रहता है। कुछ उस संदेश को सुनकर सुखी जीवन व्यतीत करते हैं और जो उस आवाज को अनसुनी कर देते हैं उनका जीवन किसी तरह रो-धोकर व्यतीत हो जाता है। उनके जीवन में कोई आकर्षण नहीं रहता। कहने का तात्पर्य है कि प्रत्येक अध्याय में व्यावहारिक निष्कर्ष निकाले गए हैं।

श्रवणेंद्रिय की रचना तथा कान से संबंधित साधारण बीमारियों का ज्ञान सब लोगों के लिए लाभदायक हो सकता है। मानव स्वर-यंत्र की रचना, आवाज

और वाणी का परस्पर क्या संबंध है, इस दृष्टिकोण से भी विवेचन किया गया है। आवाज, ध्वनि की भौतिकी कितनी जटिल है, ध्वनि और संगीत का क्या संबंध है—इस विषय पर भी प्रकाश डाला गया है। आवाज ही संगीत का प्राण है। सौंदर्य को जब हम देखते हैं और उससे संबंधित आवाज को सुनते हैं, हमारे हृदय और मन गद्‌गद हो उठते हैं। कहा गया है कि मानव-जीवन का सारा सौंदर्य चार उंगलियों के बीच में स्थित है; अर्थात् आंख और कान के बीच। एक बधिर को मधुर संगीत का संदेश अनुप्राणित नहीं कर सकता। वह सुंदर से सुंदर दृश्य देखे, आकर्षक नृत्य देखे, पर जब तक नूपुरों की झनझनाहट वह न सुने, उसे आनंदातिरेक की अनुभूति हो ही नहीं सकती जो एक साथ देखने और सुनने से मिलती है। सुंदर वस्तु को देखते हुए उसके वर्णन से आनंद द्विगुणित हो जाता है।

स्फोट ध्वनि, शब्द, वाणी की दुनिया से ही संसार जीवंत प्रतीत होता है, बिना उनके सब शून्य है। हमारे हिंदू शास्त्रों में बाह्य प्रलय का वर्णन है। जब प्रलय का समय आता है तब ऊपर से सूर्य और नीचे से अग्नि की सात ज्वालाएं पृथ्वी को भस्म करने लगती हैं। प्रथम, चराचर प्राणी उस अग्नि से दग्ध होकर धूल में मिल जाते हैं। उस समय पृथ्वी तृण, वृक्षों से रहित होकर कछुए की पीठ की तरह दिखाई देती है। जब अग्नि पृथ्वी के गुण गंध को ग्रहण कर लेती है तो इससे गंधहीन पृथ्वी अपने कारणभूत जल में लीन हो जाती है। तदनंतर तेज जल के गुण रस को ग्रहण कर लेता है। रसहीन जल तेज में लीन हो जाता है। उस समय संपूर्ण आकाश लपटों से व्याप्त हो जाता है। फिर तेज के गुण रूप को वायु तत्त्व ग्रहण कर लेता है। इसलिए अग्नि शीतल होकर वायु के गुण स्पर्श को ग्रस लेता है। तब वायु शांत होकर आकाश में लीन हो जाती है और शब्द-गुण से युक्त केवल आकाश शेष रह जाता है। रूप, रस, गंध, स्पर्श का नाम भी नहीं रह जाता। तत्पश्चात् दृश्य प्रपंच को व्यक्त करने वाला मन आकाश के गुण शब्द को, जो मन से ही प्रकट हुआ था, अपने में लीन कर लेता है। इस प्रकार पंच भौतिक सृष्टि का ब्रह्मा के मन में लय होना 'बाह्य प्रलय' कहलाता है।

शब्द ब्रह्म (वाक् तत्त्व प्रतिमा) महान् है। उसी की कृपा से अर्थ तत्त्व का विकास हुआ है। वैदिक ऋषि-मुनियों से लेकर आज तक जितने भी शब्द-शास्त्री हुए हैं—'वाग योग वित्त' हैं—जिन्होंने शब्द तत्त्व और अर्थ तत्त्व का विवेचन करके वेद, आरण्यक, उपनिषद्, दर्शन, व्याकरण, साहित्य एवं ज्ञान और विज्ञान की विभिन्न शाखाओं को जन्म दिया है और जिनके ग्रंथ-रत्नों या प्रकाश-स्तंभों से प्रकाश पाया है उन सभी प्राचीन और अर्वाचीन भारतीय और वैदेशिक शब्द-शास्त्रियों का योगदान अविस्मरणीय है। शब्द ब्रह्म के बिना सर्वतोमुखी विकास संभव न था।

'कलात्मक मूर्तियां एवं चित्रकला एवं आदर्शों की प्रतीक प्रतिमाएं' अध्याय

में कला की परिभाषा देते हुए, कला की विवेचना करते हुए कलात्मक मूर्तियों की आवाज का निरूपण करने का प्रयास किया गया है। सौंदर्य से परिपूर्ण चित्रकला कितनी मनमोहक होती है तथा आदर्शों की प्रतीक प्रतिमाएं कितनी मुखर हो सकती हैं, इसका भी चित्रण इसमें किया गया है। पांच महान् आत्माओं को चुना है जिनकी आवाज हम नहीं सुन रहे हैं और फलस्वरूप रसातल की ओर जा रहे हैं।

'अपराध-बोध-जनित आवाज' नामक अध्याय में यह बताया गया है कि व्यक्ति विशेष अपराध-बोध की भावना को कब समझता है, कैसे समझता है और उस भावना के क्या दुष्परिणाम होते हैं। आज समस्त समाज अपराध-बोध से ग्रसित है; जिसके कारण अपराध-निवारण की दिशा में कुछ भी नहीं हो पा रहा है। आम शिकायत है कि सामाजिक तथा राष्ट्रीय स्तर पर अपराधियों का बोलबाला है। वे संरक्षण पाते हैं और फलते-फूलते हैं। सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय विकास नहीं हो पा रहा है। बड़े-बड़े प्रसिद्ध उपन्यासों के पात्रों का उदाहरण देकर इस विषय की गंभीरता और व्यापकता को उजागर किया गया है।

संतुलित, अर्धविक्षिप्त मानव की मन:स्थिति क्या होती है, वह कैसे जीता है, कैसे बोलता है तथा उसकी आवाज सबको कैसे धोखा दे सकती है, इन सब बिंदुओं पर चर्चा की गई है। सबसे अधिक सोचनीय पक्ष तो यह है कि ऐसे व्यक्ति स्वयं नहीं जानते कि वे असंतुलित हैं तथा उनके सारे कार्यकलाप उनकी मन:-स्थिति का दिग्दर्शन कराते रहते हैं।

अंत में 'सामूहिक अंतरराष्ट्रीय आवाज' के अध्याय में मैंने यह व्यावहारिक निष्कर्ष निकाला है कि आज के वातावरण में अंतरराष्ट्रीय संस्थाएं ही कुछ कर सकती हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ, विश्व स्वास्थ्य संगठन, अंतरराष्ट्रीय रेडक्रास संस्था, यूनेस्को, होप, केयर, हेल्पेज आदि संस्थाएं मानव-विकास तथा विश्व में शांति स्थापना के लिए जी-तोड़ प्रयास कर रही हैं—अच्छे परिणाम भी निकल रहे हैं। यदि भाग्य ने साथ दिया तो एक दिन 'वसुधैव कुटुंबकम्' की कल्पना साकार हो सकती है। हम सब अमन-चैन से जी सकते हैं।

बाइबल के अनुसार, सृष्टि के प्रारंभ में शब्द था। शब्द परमात्मा के साथ था और शब्द ही परमात्मा था। हमारे हिंदू शास्त्रों में नाद को ब्रह्म का पर्याय माना गया है। सर्वप्रथम ध्वनि के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। 'ॐ' की सर्व-शक्तिमान ध्वनि चारों ओर तरंगित रहती है। 'ॐ' की इस तरंग से प्रथम ध्वनि-सिद्धांत की उत्पत्ति हुई। बाद में इस सिद्धांत से पदार्थ का निर्माण हुआ। इस तरह, नाद-योग के अनुसार, संपूर्ण रचना ध्वनि-तरंगों का ठोस रूप है, अन्य कुछ नहीं। शब्द ब्रह्म हमारे आध्यात्मिक चिंतन का प्रकाश-स्तंभ है। कहने का तात्पर्य यह है कि सृष्टि का जन्म शब्द से हुआ। सृष्टि का परिचालन शब्द से हो रहा है। इस आधारभूत सत्य की पृष्ठभूमि में जीवन के विभिन्न पहलुओं का

विवेचन पुस्तक में किया गया है। प्रकृति, मौसम, पशु-पक्षी, जीव-जंतु सबकी आवाज है। भौगोलिक विज्ञान भी पृथ्वी एवं सौर-मंडल के सृजन को महान् भयानक विस्फोट के सिद्धांत के द्वारा प्रतिपादित करता है। इसकी मान्यता है कि अचानक विस्फोट हुआ और ग्रह आदि सर्वत्र फैल गए, तदनुसार सौर-मंडल की उत्पत्ति हुई।

भौतिकी में आवाज का महत्त्व असीमित है। सौर-मंडल में दो तत्त्व—ध्वनि और प्रकाश—सदा विद्यमान रहते हैं। इनके महत्त्व तथा उपयोग की संभावनाएं कितनी प्रबल हैं, यह हाल के आविष्कार 'साउंड सिगनल्स', जो पृथ्वी से सौर-मंडल में प्रस्थित सैटेलाइट को भेजा जाता है, सिद्ध हो गया है। इस ध्वनि सिगनल के द्वारा सैटेलाइट के माध्यम से एक सेकंड का १/१० लाखवां हिस्सा भी जाना जा सकेगा। हमारे शास्त्रों में पल से भी छोटी जो समय की कल्पना है वह भी इस नए आविष्कार से प्रमाणित होती है। भविष्य में इसका उपयोग लड़ाई के समय ज्वार-भाटा का पूर्व संकेत देने, कई अन्य प्राकृतिक प्रकोपों की पूर्व सूचना देने एवं ग्रहों का विचरण तथा गतिशीलता बताने में किया जाएगा। पूरे विश्व में केवल अमेरिका तथा भारत में ही यह पद्धति विकसित हुई है। ईश्वर की महिमा से अभिभूत होकर संत तुलसीदास ने समर्पित भाव से कहा था :

"लव निमेस परमाणु युग, बरस कल्प सरचंड।
भजसि न मन तेहि राम कहु कालु जासु को दंड।"

संत तुलसीदास मानव-कल्याण के लिए भक्ति को ही सर्वोपरि मानते थे।

ध्वनि, जिसका एक रूप वाणी है, कभी मरती नहीं। दूसरी आवाजों की अपेक्षा मनुष्य के बोलने की आवाज अलग पड़ जाती है। अंग्रेजी में मानव की आवाज के लिए 'व्हाएस' शब्द का प्रयोग होता है जबकि अन्य आवाजों के लिए 'साउंड' शब्द प्रयुक्त होता है। कितनी ही आवाजें हमें अच्छी लगती हैं, कितनी ही कानों में बजती हैं और कितनी ही कर्ण-कटु आवाजें हमें पसंद नहीं आतीं। ध्वनि वातावरण में गूंजती रहती है, तरंगित रहती है। सौर-मंडल में ध्वनि और प्रकाश का साम्राज्य है। इससे अनगिनत छोटे-छोटे ग्रह एक सीमित अवधि में नष्ट होते रहते हैं। बाद में केवल ध्वनि शेष रह जाती है।

सन् १६०८ में श्री मारकोनी ने रेडियो-तरंगों का आविष्कार किया। बिजली के द्वारा उन तरंगों को बांधा जाने लगा और पुन: बिजली के द्वारा मनचाही जगह पर संचारित किया जाने लगा। रेडियो और ट्रांजिस्टर आवाज की दुनिया के ऐसे ही आविष्कार हैं।

सन् १६२५ में श्री जान ल्यूकास लेटार्ड ने टी०वी० का आविष्कार किया। टी०वी० के द्वारा न केवल आवाज सुनी जा सकती है, अपितु बोलनेवाले का

चेहरा भी देखा जा सकता है और उस माध्यम से, जिससे आवाज निकलती है, उसकी तस्वीर भी समस्त पृष्ठभूमि के साथ देखी जा सकती है।

नए वायरलैस सेट की उपलब्धि भी महान् है। इन सभी साधनों में विद्युत् (बिजली) के माध्यम से ध्वनि और वाणी के चमत्कार देखे तथा सुने जाते हैं। भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न अवसरों पर जो चमत्कार होते रहते हैं उन सबको आपने भी देखा और सुना होगा। रेडियो तथा टी०वी० ने मानव-सभ्यता के प्रचार और प्रसार में अभूतपूर्व सहयोग दिया है। इन दोनों माध्यमों के द्वारा सारा विश्व सिकुड़कर नजदीक आ गया है तथा यह आभास होता है कि सारी पृथ्वी पर समग्र मानवता एकात्म हो गई है।

आपने कभी-न-कभी यह अनुभव किया होगा कि टी०वी० सेट के चलते समय कभी-कभी उसमें आवाज नहीं आती। सब कुछ दिखता रहता है, नर्तकी नाचती रहती है लेकिन बिना ध्वनि के। जो शून्य का आभास होता है वह आवाज के महत्त्व व व्यापकता का आभास देता है। दृश्य व श्रव्य साथ-साथ रहने पर ही विशेष आनंदानुभूति पैदा होती है।

आज के समाज का दृश्य ही विचित्र है। सभी पदार्थों का अवमूल्यन तो हो ही रहा है, साथ-ही-साथ मानवीय-मूल्यों, साहित्यिक धरोहरों, कलात्मक कृतियों, जो सब हमारी सभ्यता को संजोते हैं, का भी तीव्र गति से अवमूल्यन हो रहा है। उनकी अवहेलना हो रही है।

अपराध-बोध की भावना से तथा उससे निकलती आवाज से सब वर्ग के लोग ग्रसित हैं। इसीलिए सर्वत्र अपराध हो रहे हैं, फल-फूल रहे हैं। उन्हें रोकने की क्षमता किसी में नहीं है। समाज भ्रष्ट हो रहा है। सत्ता स्वार्थपरक होकर चुपचाप सब देख रही है।

आज का आदमी सही आवाज तथा सही वाणी के बिना जी रहा है। सर्वविदित है कि एक अंधे आदमी के लिए सारी दुनिया अंधेरी रहती है। लेकिन वह अंदर की वाणी से प्रकाशित रहता है जो उसे सदैव ऊंचा उठाती है। इसके विपरीत आंखवाला आदमी भी जब काम, क्रोध, मद, मोह और लोभ का रंगीन चश्मा पहन लेता है तो वह सब कुछ देखते हुए भी कुछ नहीं देख पाता। सही वाणी नहीं सुन पाता। उसमें दृष्टि-दोष आ जाता है। इस तरह से आंखें रहते हुए भी वह अंधा तो नहीं कहा जा सकता पर उसकी मन:स्थिति एक अंधे व्यक्ति की मन:स्थिति से भी अधिक त्रसित रहती है।

हर क्षण आदमी के जीवन में एक ऐसी दस्तक महसूस होती रहती है कि वह अपने को पहचाने, जीवन में कुछ कर गुजरे, जीवन को सार्थक बनाए, परंतु इस दस्तक के बावजूद वह कुछ नहीं कर पाता। उसका सारा जीवन उधेड़बुन, ऊहापोह, व्यग्रता तथा मानसिक अशांति में व्यतीत हो जाता है। इस प्रकार जीवन

बिताते हुए एक दिन वह पंचतत्त्व में मिल जाता है। जिस तरह एक पुष्प और उसकी पंखुड़ियां एक साथ विकसित होती हैं, उसी तरह मनुष्य की भिन्न शक्तियां एक साथ विकसित नहीं होतीं, जबकि यह संभव है। बशर्ते कि मानव अपनी बुद्धि को, अपने चिंतन को सर्वांगीण रूप में पुष्पित करे। लेकिन वह ऐसा कर नहीं पाता। इस युग की यह सबसे बड़ी विडंबना है।

मनुष्य अपने दिल की धड़कन नहीं सुन सकता लेकिन अपनी आत्मा की आवाज तो सुन सकता है। प्रत्येक मनुष्य जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में एक विशेष उद्देश्य को लेकर जीता है और उस दिशा में भरसक प्रयत्न करते हुए जीवन को अर्थ देना चाहता है। जैसे एक साहित्यकार अपने साहित्यिक सृजन में चिरंतन सत्य को जीवंत बनाता है। एक कलाकार अपनी कला में जीवन के रहस्यों तथा सौंदर्य को निखारना चाहता है, जिससे जीवन की गहराइयों का एहसास हो सके। एक आध्यात्मिक पुरुष अपने चिंतन में जीवन के परम उद्देश्य को परिभाषित करना चाहता है। एक राजनीतिक व्यक्ति अपनी राजनीति के द्वारा जीवन की चरम ऊंचाइयों पर पहुंचना चाहता है। एक अभिनेता अपने अभिनय से खट्टे-मीठे सत्यों को अपने अभिनय में प्रदर्शित करना चाहता है।

कहने का तात्पर्य है कि प्रत्येक मनुष्य की अपनी एक विशेष प्रकार की जिंदगी जीने की लालसा रहती है। कोई व्यक्ति, जीवन के कितने वर्ष गुजर गए, बस यही सोच-सोचकर अपने जीवन को समाप्त कर देता है। लेकिन ऐसे भी व्यक्ति हैं जो अंतरात्मा की आवाज सुनते हैं और अपनी जीवन-शैली को महान् बनाते हैं, अपने जीवन में प्रकाश लाते हैं तथा दूसरों की सेवा के लिए तैयार रहते हैं।

इस पुस्तक को लिखने का मेरा मुख्य उद्देश्य यह है कि मानव सहज जीवन जीते हुए भी सही और सच्ची आवाज सुन सकता है। सही वाणी के माध्यम से अपने व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास भी कर सकता है। कोरे दंभ और अहंकार के वशीभूत होकर गुमराह हो जाना आज एक मामूली बात है। एक व्यक्ति कहता है कि अब मैं तीस वर्ष का हो गया, चालीस वर्ष का हो गया, या पचास वर्ष का हो गया; लेकिन कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं जो प्रतिदिन यह महसूस करते हैं कि जीवन में दिव्य ज्योति जागे, वे जीवन की गहराइयों को समझें। मनुष्य और मनुष्य का यह अंतर उस गुण पर अवलंबित है कि वह सही आवाज किस हद तक सुनता है तथा अपने विवेक का उपयोग करता है या नहीं। प्रायः ऐसे लोग देखे जाते हैं जो सबकी सुनते हैं पर करते मन की हैं। कुछ लोगों को, जिन्हें कुछ कर दिखाना है, यह महसूस होता है कि जिंदगी के क्षण कितनी तीव्रता के साथ भाग रहे हैं। कुछ लोग, जो लालची हैं, निष्क्रिय जीवन व्यतीत करते हैं। वे सोचते हैं कि जिंदगी में कितनी बोरियत है, कितना विकर्षण है। कुछ लोग प्रायः यह कहते हुए सुने जाते हैं कि उनकी जिंदगी के स्वर्णिम क्षण बीत चुके हैं और अब जीवन में

क्या रखा है।

सार की बात यह है कि मानव के जीवन के आयाम उसकी चिंतन-शैली की सीमा के अनुसार होते हैं। रचनात्मक, सकारात्मक चिंतन-शैली विवेक की आवाज सुनकर ही विकसित होती है। अपनी आवाज की मधुरता एवं अहमियत को समझ लेने पर मानव महान् हो सकता है। केवल ताकत से ही तो दुनिया चलती नहीं। पूरे जीवन को एक सांचे में ढालना पड़ता है। अच्छी आवाज के माध्यम से लोग बड़े-बड़े सिने कलाकार बन जाते हैं, बड़े-बड़े गवैए हो जाते हैं। सही आवाज और वाणी को लेकर एक साधारण आदमी बड़ा नेता बन जाता है। महात्मा तथा संत अपनी वाणी के कारण अमर हो जाते हैं।

आवाज भगवत्-प्रदत्त है, स्वाभाविक है। वह मेहनत करके नहीं पाई जा सकती, केवल सुधारी जा सकती है। भाषा का अच्छा ज्ञान, शब्दों का सही चुनाव व सही उच्चारण किसी के भी व्यक्तित्व को निखार सकता है बशर्ते कि उस व्यक्ति में दृढ़ संकल्प हो तथा आत्मिक शक्ति हो। बिना नैतिकता के, बिना सच्चाई के जो वाणी बोली जाती है वह केवल एक शब्दाडंबर ही होता है।

हरएक आदमी की आवाज एक विशेषता लिए होती है। किसी की आवाज मीठी, किसी की कड़वी, किसी की कर्कश, किसी की मुलायम, किसी की दबंग तथा किसी की रोबीली होती है। जिसकी आवाज मुरझाई तथा शिथिल होती है वह व्यक्ति हीन भावना से ग्रसित तथा दुखी रहता है। संगीत की दुनिया में गायकों के लिए आवाज ही सब कुछ है। सबसे खतरनाक आवाज वह होती है जो बनावटी तथा छल-छद्म से लिप्त होती है। किसी की वाणी में जरूरत से ज्यादा मिठास हो या जरूरत से ज्यादा विनम्रता हो तो ऐसे व्यक्ति से संभलकर रहना चाहिए।

कभी-कभी किसी की बोली किसी को चुभ जाती है और उसका जीवन ही बदल जाता है। तुलसीदास की पत्नी अपने मायके चली गई थी। उसके प्रेम के वशीभूत होकर तुलसीदास जब अपनी ससुराल पहुंचे तथा सांप को रस्सी समझकर व्याकुल मन से उसके शयनकक्ष में पहुंचे तब उनकी पत्नी ने उन्हें देखकर अफसोस जाहिर करते हुए कहा कि जितना प्रेम, स्नेह आप मुझसे रखते हैं यदि उतना ही प्रेम आप ईश्वर से रखें तो आपका जीवन धन्य हो जाएगा। तुलसीदास जी को पत्नी की यह वाणी चुभ गई। और हम-आप सब जानते हैं कि उस क्षण से तुलसीदासजी के जीवन का कायापलट हो गया।

इसी तरह, सौतेली मां की व्यंग्यात्मक वाणी को सुनकर ध्रुव जंगल में चले गए और अमर हो गए।

लंदन जाते समय महात्मा गांधी की मां ने जो वादा अपने पुत्र से कराया था वे शब्द, वह ध्वनि महात्मा गांधी के जीवन-पर्यंत उनके अंदर गूंजती रही और

वह जीवन के नित्य प्रति के प्रलोभनों से बचते रहे और एक युगपुरुष के रूप में पहचाने जाने लगे। राष्ट्रपिता ने जो संदेश दिया उस वाणी की यदि आज हमारे कर्णधार इज्जत करते तो देश की हालत इतनी खस्ता नहीं होती जितनी आज है।

कालिदास अपने प्रारंभिक जीवन में अनपढ़ तथा गंवार थे। उन्हें संस्कृत भाषा की वर्णमाला तक का ज्ञान नहीं था। संयोगवश उस समय की एक विदुषी नारी, विद्योत्तमा से उनका विवाह हो गया। कालिदास और विद्योत्तमा का परिचय हुआ। प्रथम क्षण में ही उस विदुषी ने मूर्खराज कालिदास को पहचान लिया। उसने 'हाय' करके कपाल पर हाथ मारा और रोते हुए यह कहकर कालिदास को अपने कक्ष से बाहर धकेल दिया कि अपने से महान् पति की आकांक्षा रखनेवाली मैं तुम महामूर्ख को पति स्वीकार कर विद्या को अपमानित और अविद्या को आदृत नहीं कर सकती।

कालिदास को धक्का लगा। आत्मविभोर कालिदास चौंककर सहसा जाग उठे। उनकी आत्मा में अचेत पड़े मनुष्य की मूर्छा टूट गई। अपनी पत्नी को सुखी बनाने के ध्येय से उनके अंतस्तल से आवाज उठी कि वह अपने पुरुषार्थ और संकल्प-बल से अपने को बदल क्यों नहीं लेते। अनेकानेक वर्षों तक कालिदास ने अध्यवसाय को तपस्या की सीमा तक पहुंचाकर जो कुछ पाया उसे लेकर वह वापस लौटे। उन्होंने दरवाजे पर थाप के साथ शुद्ध एवं परिमार्जित संस्कृत में कहा, "प्रियतमे, द्वारं कपाटं देहि।" पत्नी ने दरवाजा खोला। कालिदास मुस्करा उठे। विद्योत्तमा हर्ष-विह्वल हो उठी। दोनों के उस पुनर्मिलन ने कालिदास की साधना और विद्योत्तमा की वेदना सफल एवं सार्थक बना दी। यह है संकल्पपूर्ण पुरुषार्थ एवं लगन का चमत्कार! आवश्यकता है आत्मा की पुकार सुनने और उसकी शक्ति पहचानने की।

महाकवि भूषण भी अपनी भाभी की कटु बोली से पीड़ित होकर मुगल बादशाह के पास चले गए थे। एक दिन कवि भूषण घर में भोजन कर रहे थे। भोजन में नमक कम था। भूषण ने अपनी भाभी से और थोड़ा नमक मांगा। भाभी ने व्यंग्यात्मक स्वर में कहा कि घर में नमक हो तब तो दूं। भूषण को बात लग गई और मुगल बादशाह के दरबार में जाकर अथक परिश्रम से महाकवि बने और बाद में उन्होंने एक सौ नमक के बोरे अपनी भाभी के लिए भिजवा दिए।

मौर्य साम्राज्य के पहले उत्तर भारत में नंद-वंश का राज्य था। उस समय चाणक्य महान् विचारक तथा कूटनीतिज्ञ के रूप में प्रसिद्ध थे। एक ऐसा प्रसंग आया कि नंद-वंश के महाराजा ने भरे दरबार में चाणक्य को कुछ अपशब्द कहकर अपमानित कर दिया। चाणक्य को वह अपमान असह्य हो गया और उन्होंने

प्रतिज्ञा की कि नंद-वंश का जड़ से नाश करके ही वह शांति से बैठगे। अंत में चाणक्य ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।

पाणिनि जो संस्कृत व्याकरण के जनक माने जाते हैं, बचपन में मूर्ख थे। एक दिन पाठशाला में उनके गुरुजी ने उनसे कुछ सवाल पूछे। वह नहीं बता पाए। गुरुजी ने नाराज होकर उन्हें बेंत मारने के लिए उनसे कहा कि वह अपने दोनों हाथ खोलें। जैसे ही पाणिनि ने हाथ खोले, गुरुजी कह उठे कि इस विद्यार्थी के हाथ में विद्या की रेखा ही नहीं है, अतएव इसे बेंत मारकर भी क्या होगा। और उन्होंने अपनी छड़ी हटा ली। पाणिनि को गुरुजी का यह कहना कि उसके हाथ में तो विद्या की रेखा ही नहीं है, इतना चुभा कि घर पहुंचकर पाणिनि ने अपने उस हाथ की हथेली में चाकू से एक गहरी रेखा खींच ली। प्रतिज्ञा की कि वह विद्वान् बनकर ही रहेंगे। पाणिनि का व्याकरण आज भी संस्कृत साहित्य में अद्वितीय है।

यही पाणिनि अपने दो मित्रों के साथ जंगल के मध्य से कहीं जा रहे थे। रास्ते में एक व्याघ्र दिखा। पाणिनि के मित्र शेर देखते ही तुरंत झाड़ पर चढ़ गए। लेकिन पाणिनि ने व्याकरणाचार्य होने के नाते व्याघ्र की आवाज को नहीं पहचाना। पाणिनि व्याघ्र शब्द की उत्पत्ति तथा व्याख्या करने में लग गए। इस बीच व्याघ्र ने उन्हें धर दबोचा। इससे उनकी मृत्यु हो गई।

निष्कर्ष यह है कि गुरुजी की आवाज के चुभ जाने से पाणिनि महान् बन गए और व्याघ्र की आवाज न पहचानने के कारण सदा के लिए मृत्यु की गोद में सो गए। इस प्रकांड विद्वान् की मृत्यु त्रयोदशी के दिन हुई थी। संस्कृत-जगत् उस महान् विद्वान् को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए इस तिथि के दिन व्याकरण का पठन-पाठन नहीं करता।

सन् १६१८ में प्रथम विश्व महायुद्ध के बाद इंग्लैंड और जर्मनी में जो संधि हुई वह जर्मन जाति के लिए अत्यंत अशोभनीय थी। जर्मन जाति को उस संधि के अनुसार न केवल अपमानित किया गया था बल्कि उसके उत्थान के सब रास्ते बंद कर दिए गए थे। जर्मनी निवासी उसी समय से इंग्लैंड के प्रति प्रतिशोध की भावना से जल रहे थे। पूरे राष्ट्र से वह अपमान सहा नहीं गया। सन् १६३६ में द्वितीय विश्वयुद्ध इसी पृष्ठभूमि में प्रारंभ हुआ। हिटलर ने अपने देशवासियों की इस भावना का पूरा-पूरा फायदा उठाया और बहुत हद तक हिटलर ने इंग्लैंड से बदला भी ले लिया। यद्यपि युद्ध के अंत में जर्मनी हार गया।

वर्तमान समय में हमारे देश में ऐसा कोई भारतीय है जिसे कभी किसी के द्वारा किए गए अपमान की बात लग गई हो! बड़े-से-बड़े स्तर पर लोग स्वार्थ-वश खून का घूंट पीकर रह जाते हैं। पर उनमें न तो राष्ट्र-प्रेम जागता है और न ही आत्मसम्मान की भावना जागती है। इसी मनोदशा का परिणाम है कि

राष्ट्र में मनमानी चल रही है। न तो किसी का स्वाभिमान है और न ही किसी का स्वतंत्र अस्तित्व है। कुछ अपवाद यहां-वहां हो सकते हैं।

आज देश को स्वतंत्र हुए तैंतालीस वर्ष हो गए परंतु राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने जो रामराज्य की कल्पना की थी वह बिलकुल सच नहीं हुई। गांधीजी की वाणी और संदेश को लोगों ने भुला दिया है। न्याय सबको मिलेगा, ईमानदारी की कद्र की जाएगी, समाजवाद आएगा, श्रम की गरिमा बढ़ाई जाएगी, गरीबी हटेगी आदि कई आदर्शों की बातें सुना करते थे परंतु सब उल्टा हो रहा है। हर क्षेत्र में उल्टी गंगा बह रही है।

पहले आदमी की ईमानदारी उसका आभूषण मानी जाती थी और ईमानदारी की बात वजनदार होती थी। अब ईमानदारी को बेवकूफी का पर्याय माना जाता है। ईमानदारी की बात हल्की पड़ गई है, अतः एक कान से सुनकर दूसरे से निकाल दी जाती है। दोनों कानों के बीच आपकी कही बात बनी रहे, इसके लिए जब तक व्यवस्था नहीं करेंगे, सुनाने मात्र से कुछ नहीं होगा। ईश्वर ने सबको दो कान दिए हैं। सब लोग अच्छी-बुरी बातें सुनते रहते हैं। फिर भी आज यह आम शिकायत है कि कोई किसी की नहीं सुनता, सब अपने-अपने धंधे में लगे हैं।

मुगलकाल में एक ऐसा भी समय था जब जहांगीर के महल में एक घंटा लटका रहता था। पूरे राज्य में कोई भी फरियादी हो, दुखिया हो वह उस घंटे को बजाकर जहांपनाह का ध्यान तुरंत आकर्षित करता था। दिन हो या रात, बादशाह तुरंत आते थे तथा न्याय देते थे। आज बड़े-बड़े दफ्तरों में कोई किसी की फरियाद नहीं सुन रहा है। साहब की बात तो छोड़िए, उनके चाकर भी सुनने के लिए 'कुछ उम्मीद' रखते हैं। आज अपने दामन फटने की बात किसे सुनाई जाए। यहां तो सब अपने-अपने लिबास की बात कर रहे हैं—

"सुनेगा कौन मेरी चाकदामानी के अफसाने।
यहां सब अपने-अपने पैरहन की बात करते हैं।।"

बात वजनदार हो तो टिकती है अन्यथा आपकी बात एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल दी जाती है। बात वजनदार बनाने के लिए वजन रखना आवश्यक है। आज बात सचाई से वजनदार नहीं बनती। हां, यदि कोई राजनीतिक पहुंच हो तो आपकी आवाज कुछ हद तक सुनी जा सकती है। आज तो वे मजे में हैं जो दफ्तर का लाजिमी काम छोड़कर इधर-उधर चक्कर लगाकर अपने साथियों की शिकायतें अपने से बड़ों को सुनाते रहते हैं तथा साथ-ही-साथ उनकी कब्र खोदते रहते हैं। जो ईमानदार और कर्त्तव्यनिष्ठ हैं उन्हें गलत तरीके से फंसा दिया जाता है। फिर उनकी कोई नहीं सुनता। केवल यही सुना जाता है कि धीरज रखिए, इंसाफ होगा और यह इंसाफ कभी नहीं होता। हालात तो ये हैं

कि आज एक सच्चे कर्मचारी, सच्चे अफसर को ही चुनौती दी जाती है कि देख लेंगे कहां तक और कब तक यह ईमानदार बना रहता है। आज के माहौल में ईमानदार पर उंगली उठाई जाती है। भ्रष्ट व्यक्ति सम्मानित हो रहा है। बताइए, हम रसातल की ओर जा रहे हैं या नहीं ? हम रसातल की ओर जा रहे हैं, यह ध्वनि सर्वत्र गूंज रही है, पर है किसी की हिम्मत कि वह सही परिस्थिति को बता सके और सच्ची वाणी बोल सके ? जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं जहां पाखंड, प्रपंच, षड्यंत्र की आवाज न निकल रही हो।

ऊपरी तबके की बात सब सुनते हैं। ऊपर की बात तो नीचे सुनी ही जाती है, लेकिन नीचे वालों की बात सुनने की ऊपर वालों को फुरसत नहीं मिलती। प्राय: सुना जाता है कि नीचे के लोग भ्रष्ट हैं जबकि यह सिद्ध हो चुका है कि आज देश में भ्रष्टाचार ऊपर से नीचे टपक रहा है। पहले बूंद-बूंद टपकने की आवाज आती थी पर अब उसकी धारा बह रही है। छलछलाने की आवाज आ रही है। सारे विभाग, सारे कर्मचारी, सारे देश में करीब-करीब सभी नेता उस भ्रष्टाचार की धारा में नहा रहे हैं—आखिरकार धारा जो बह रही है अर्थात् बहती गंगा में कोई हाथ क्यों न धो ले ! आज तो हालत यह है कि छोटों का दर्द भी बड़े हल्के ढंग से सुना जाता है। किसे पड़ी है दूसरे की बला मोल लेने की ! बकौल एक शायर के—

"दर्दे दिल अव्वल तो वो आशिक का सुनते ही नहीं।
और जो सुनते हैं तो सुनते हैं फसाने की तरह।"

बाप अपने बेटे की नहीं सुन रहा है। बेटा अपने बाप की नहीं सुनता। पति अपनी पत्नी की नहीं सुनता और पत्नी पति की नहीं सुनती है। जब वे नहीं सुनते तो वह क्यों सुने ! आखिर कान तो दोनों के पास हैं ! एक न सुने तो दूसरा ही क्यों सुने ? समाज में आज इंसान को केवल 'वोट' का ठप्पा बनाकर रख दिया गया है। यदि वह विरोध की आवाज उठाता है तो उसे समाप्त कर दिया जाता है। यदि वह कुछ इस तरह की वास्तविकता रखता है तो उसे खरीद लिया जाता है। बकौल एक शायर के—

"मत खोजो इंसान नहीं मिल पाएंगे,
हर कोई बना दलाल हमारी बस्ती का,
जाति भाषा के सवालों को उठाया जाएगा,
कब तक इस देश में मजहब भुनाया जाएगा।
मंदिरों या मसजिदों के वास्ते कब तक जनाब
झोंपड़ों को हम गरीबों के जलाया जाएगा।
इस सियासत की नजर में आदमी बस वोट है
वोट का ठप्पा इसे कब तक बनाया जाएगा।"

बड़े कार्यालयों में, दफ्तरों में इतनी दयनीय तथा दुखद स्थिति है कि बड़े-बड़े-

बड़ी सचाई की घटना भी दबा दी जाती है। उस घटना के तथ्यों को तोड़-मरोड़-कर झूठी घटना दिखाई जाती है। दस्तावेज बदल दिए जाते हैं, छिपा दिए जाते हैं। यदि कोई जवाब तलब करता भी है तो केवल आंसू पोंछने के लिए जांच समिति बैठा दी जाती है। बकौल गालिब—

"गालिब तुम्हीं कहो कि मिलेगा जवाब क्या,
माना कि तुम कहा किए और वो सुना किए।"

वर्तमान समय में नीचेवालों के दु:ख-दर्द कोई नहीं सुनता—

"दूसरे के दर्द का एहसास होता है किसे,
हंस दिया करते हैं, गुल शबनम को रोता देखकर।"

ऊपर की पंक्तियों में दाग साहब ने कमाल कर दिया है। दूसरे के दर्द का एहसास करने के लिए और उसके दर्द की आह सुनने के लिए बहुत बड़ा कलेजा चाहिए।

आज समाज के कर्णधारों की मन:स्थिति केवल भोग-विलास की है। उन्हें किसी की गुहार, व्यथा, दुखड़ा तथा मांग से कुछ भी वास्ता नहीं है। सवेरे उठते समय वे मुर्गे की बांग को भी घबराहट में मांग के रूप में सुनते हैं तथा झल्लाते हुए अपनी दिनचर्या शुरू करते हैं। प्राचीन और वर्तमान दिनचर्या के अध्याय में इस विषय पर मैंने चर्चा की है। आज मानव की जीवन-शैली यांत्रिक हो गई है। आम जनता सबकुछ समझती है पर सियासत (राजनीति) की गलत नीतियों के कारण, कमरतोड़ महंगाई के कारण अपनी आवाज बुलंद नहीं कर पाती।

दो कानों के बीच में जीवन का सारा सुख, आनंद, उल्लास भरा हुआ है। कानों से मधुर, मीठी बातें सुनते हैं, संगीत सुनते हैं तथा आंखों से सौंदर्य देखते हैं। इस विषय पर भिन्न अध्यायों में चर्चा की गई है। आज का मानव कहता कुछ है, करता कुछ है। उसकी कथनी और करनी में कोई सामंजस्य नहीं है। यह कैसा पतन है! आत्मविश्वास की कमी आ गई है या धोखा देने की प्रवृत्ति सब कार्य-कलापों पर हावी होती जा रही है। यह चरित्र-दोष हमारे देश की सबसे बड़ी बीमारी है। जब व्यक्ति ही चरित्रवान नहीं तो समाज में सामाजिक चरित्र पनप नहीं सकता। अतएव राष्ट्रीय चरित्र विकसित होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

वर्तमान समय में भारत का राष्ट्रीय चरित्र क्या है, यह किसी की समझ में नहीं आ रहा है। जब तक उसे उजागर करने की आवश्यकता नहीं महसूस होगी तब तक हम पिछड़े ही रहेंगे। आज भारतीय व्यक्ति कहीं का नहीं रह गया है। उसकी आवाज और उसकी वाणी पर सहसा किसी को विश्वास नहीं होता। सबका जीवन चौराहे पर खड़ा है। और आदमी को केवल सांय-सांय और भांय-

भांय की आवाज सुनाई पड़ रही है। अर्थात् वह भौचक्का होकर अपना जीवन व्यतीत कर रहा है। आवाज और वाणी का अवमूल्यन किस सीमा तक हुआ है, इसका अनुमान तो इसीसे लग सकता है कि साधारण आदमी से लेकर वी० आई० पी० दर्जे के लोग भी सही और वजनदार आवाज नहीं निकाल पा रहे हैं। वे किस डर से परेशान हैं, यह किसी की समझ में नहीं आ रहा है। सबकी आवाज दबी हुई है। या यों कह सकते हैं कि दबाई गई है। खुलकर, दबंग होकर, निर्भीकता से वह बोलता ही नहीं। वह सहमा हुआ है; इसके क्या कारण हैं, यह सोचने की बात है। किसी भी व्यक्ति की वाणी में ओज और तेज उसी समय आते हैं जबकि वह स्वयं दूध का धुला हो, अन्यथा वह मिमियाता है या आत्म-प्रवंचना करते हुए सबको धोखा देता है। आज प्रवंचना की प्रवृत्ति साधारण बात हो गई है।

संपूर्ण राष्ट्र को कान खोलकर सही और सच्ची आवाज सुननी पड़ेगी; उसी स्थिति में राष्ट्र का उत्थान होगा तथा आम जनता का भला होगा। अन्यथा अधः-पतन, अवनति ही शेष रह जाएंगे। समाज का प्रबुद्ध वर्ग जान-बूझकर आज विवेक-शून्य हो रहा है। फिर आम आदमी का क्या पूछना है। समाज के लोग अंतःस्थल की आवाज नहीं सुन रहे हैं। इसीलिए सर्वत्र धोखा-ही-धोखा नजर आ रहा है। दुःख तो इस बात का है कि विशेष परिस्थिति के अनुसार लोगों की अंतरात्मा की आवाज भी बदल जाती है। कितने भी सिद्धांतवादी क्यों न हों, समय पाते ही अपने विवेक की आवाज को दबा देते हैं। इस युग की सबसे बड़ी त्रासदी यही है।

मनुष्य के जीवन को सुखद और संपूर्ण बनाने में आवाज और वाणी का अद्भुत योगदान है। दोनों के आदान-प्रदान से ही शिशु धीरे-धीरे संपूर्णता की ओर अग्रसर होता है। बिना आवाज सुने वाणी विकसित नहीं होती। बालक गूंगा रह जाता है। वह जन्मजात बधिर (गूंगा) ही रहता है। यद्यपि वर्तमान समय में इन लोगों के लिए भी एक-से-एक साधन जुटाए जा रहे हैं।

यह मानव-जीवन पारसमणि है। इसका तत्काल श्रेष्ठतम उपयोग करनेवाले महान् होते हैं। वे अमूल्य स्वर्ण बन जाते हैं, जो लालच में निरंतर रत रहकर अवसर को चुका देते हैं, अंतरात्मा की आवाज को नहीं सुनते, वे खाली हाथ रहते हैं। हाथ मलते-मलते जीवन व्यतीत करते हैं। वे निराश तो रहते ही हैं पर जीवन की अंतिम घड़ियों में उन्हें बेहद आत्म-परिताप आ घेरता है और उनकी बहुत दुःखद मृत्यु होती है।

समय बड़ा बलवान् है। इस तथ्य की गूंज को सदैव सुनते रहना चाहिए। समय के सदुपयोग से ही जीवन को सार्थक बनाया जा सकता है। बुराइयां गुपचुप जीवित रहती हैं। अपनी बुराई अपने जीवन में ही मरने दो। विवेक और योग-

बुद्धि से ही बुराई भगाई जा सकती है। तन, मन और वचन की एकता रखनी चाहिए। बुराइयों पर कभी पर्दा नहीं डालना चाहिए। हानि क्या है ? अवसर से चूकना। निर्मल चित्त होकर काम करते रहने से आंतरिक शक्ति का उद्भव होता है। जीवन की सबसे प्रबल ऊर्जा आत्मविश्वास और आत्मज्ञान से निःसृत होती है। शुभ और अशुभ कर्मों का फल इसी जीवन में मिलता है। अपनी गलती मान लेना ही महान् चरित्र का लक्षण है। वही व्यक्ति इस मनःस्थिति को पा सकता जो अंतर्मन की आवाज सुनेगा एवं तदनुसार अपनी जीवन-शैली बनाएगा।

—लेखक

विषय-सूची

१

श्रवणेंद्रिय (कान) की रचना एवं सामान्य बीमारियां

प्रकृति ने बहुत सूझबूझ के साथ कान की रचना की है। श्रवण-शक्ति की संरचना ठोस वैज्ञानिक सिद्धांतों पर हुई है। मनुष्य की पांच ज्ञानेंद्रियों में से कान भी एक कोमल इंद्रिय है। इसके मुख्य तीन भाग हैं—बाहर का कान, मध्य कान तथा अंदर का कान। यह सुननेवाला यंत्र चेहरे के दोनों ओर दाएं और बाएं स्थित है। इसीलिए दाहिना कान एवं बायां कान कहा जाता है। मैडिकल परीक्षण के द्वारा यह जाना जा सकता है कि कौन-से कान में खराबी है और व्यक्ति विशेष को किस कान से सुनने में अड़चन आ रही है। प्रायः देखा गया है कि नौकरी में आने के समय जब मैडिकल परीक्षण होता है तो कई लोग, जो एक कान से ही सुन सकते हैं, यह बताने की कोशिश करते हैं कि उनके दोनों कान ठीक हैं।

ये दोनों कान एक साथ ध्वनियों को सुनते हैं, ग्रहण करते हैं तथा मस्तिष्क में उन ध्वनियों को स्नायु (आडिटरी नर्व) के द्वारा पहुंचाते हैं। ये कान दो तरीकों से इन ध्वनियों को ग्रहण करते हैं। एक सीधा तरीका है हवा के माध्यम से और दूसरा तरीका है कान के पीछे की हड्डी के माध्यम से। हवा के माध्यम से ध्वनि सीधी जाकर कर्णपर्त (कर्णपटल) पर टकराती है। बाहरी कान में जो घुमाव बने रहते हैं वे ध्वनियों को इधर-उधर फैलने से रोकते हैं। ध्वनियां सीधी जाकर कान के परदे पर टकराती हैं और फिर वहां से मध्य कान में पहुंचती हैं। मध्य कान में स्थित तीन छोटी-छोटी अस्थियां होती हैं। इन अस्थियों का मुख्य काम यह होता है कि ये ध्वनि को मस्तिष्क में प्रसारित करती हैं।

बाहरी कान के पीछे जो उठी हुई हड्डी रहती है उसे 'मेसटायड' हड्डी कहते हैं। इस हड्डी की बनावट अत्यंत ही सूक्ष्म वैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित है। उस हड्डी में अनगिनत छोटे-छोटे रंध्र होते हैं जिनमें हवा आती-जाती रहती है। इस हड्डी का सीधा संपर्क मध्य कान से रहता है।

बाहरी कान के किनारों में कुछ कड़ापन रखा गया है। किनारों में 'कारटीलेज' नामक हिस्सा है जिसके कारण कड़ापन बना रहता है और बाहरी कान के कार्य का संचालन सुचारु रूप से चलता है। बाहरी कान के निचले भाग को 'लोब्यूल' कहते हैं, जो मुलायम होते हुए भी अत्यंत संवेदनशील होता है। कामसूत्र के ग्रंथों में इस हिस्से का बड़ा रोमांचक वर्णन मिलता है। महिलाएं इसी हिस्से में 'ईयररिंग' आदि गहने पहनती हैं। बड़े कान पुरुषों के लिए भाग्यशाली माने जाते हैं। छोटे कान स्त्रियों की सुन्दरता में चार चांद लगा देते हैं।

बाहरी कान से एक नली मध्य कान में जाती है। मध्य कान में तीन छोटी-छोटी लघु अस्थियां होती हैं। इन्हीं तीन अस्थियों के द्वारा ध्वनि प्रसारित होती है। कान की नली के अंदर एक झिल्ली होती है जिसे कान का परदा कहते हैं। मध्य कान में दो नलियां जाती हैं, एक पीछे की तरफ और दूसरी सामने नाक और गले की ओर। इसी कारण गले की खराबियों से या विकृतियों से कान पर भी असर पड़ता है। गले का स्वच्छ और साफ रहना आवश्यक है।

अंदर के कान की रचना जटिल होती है। इतना बता देना काफी है कि मस्तिष्क से जो नाड़ी-तंतु निकलते हैं उनकी बारीक शाखाएं अंदर के कान में चारों तरफ फैली रहती हैं। उन्हीं तंतुओं के द्वारा ध्वनियां मस्तिष्क में पहुंचती हैं और मनुष्य सब तरह की ध्वनियों का आनंद अपनी इच्छा तथा श्रद्धा के अनुसार लेता रहता है। यह मनुष्य की स्वेच्छा पर है कि वह किसी विशेष ध्वनि को अधिक पसंद करे और किसी दूसरी ध्वनि की ओर ध्यान ही न दे। मस्तिष्क से आठवां कान संदेशवाहक नाड़ी तंतु निकलता है जिसे आडिटरी नर्व कहते हैं। विभिन्न ध्वनियां जो अंदर के कान में पहुंचती हैं उनमें संतुलन बनाए रखना, उसका ठीक-ठीक अर्थ निकालना, ये सारे काम मस्तिष्क के द्वारा होते हैं। एक संगीतज्ञ जो 'रियाज' करता है उसे न केवल अपने कंठ पर संयम का अभ्यास करना पड़ता है अपितु कान के द्वारा ध्वनियों की बारीकियों को भी समझना पड़ता है। उसके सुनने की शक्ति इतनी सध जाती है कि ध्वनि की थोड़ी भी विकृति या परिवर्तन वह शीघ्र जान लेता है।

कान की सामान्य बीमारियों को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) कान में ही उत्पन्न होनेवाली बीमारियां,

(२) शरीर की अन्य बीमारियों के कारण कान में आनेवाले दोष,

(३) मानसिक बीमारियों का कान पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव।

(१) केवल कान के बाहरी हिस्से को देखकर कई बीमारियां पहचानी जा सकती हैं; जैसे 'गाउट' एक गठिया या जोड़ों की बीमारी है जिसके कारण कान के किनारों में एक विशेष प्रकार की खराबी आ जाती है। उनके ऊपर भूरे रंग के छोटे-छोटे पदार्थ जमा हो जाते हैं जिसे 'टोफाई' कहते हैं। गाउट की बीमारी में

कानों में 'टोफाई' का पाया जाना उस बीमारी की पहचान के लिए विश्वसनीय आधार है।

मानव-शरीर में कोढ़ की बीमारी हो जाने पर कानों के बाहरी हिस्से में कुछ सफेद दाग दिखने लगते हैं। वे हिस्से संज्ञाशून्य होते हैं तथा कान के किनारे और भी अधिक कड़े हो जाते हैं। कान के ऊपर की चमड़ी में एक मोटी पर्त जम जाती है। मरीज को कान के उन हिस्सों में उष्णता महसूस नहीं होती। उन हिस्सों में पसीना भी नहीं निकलता तथा ठंड भी नहीं लगती।

बाहर के कान की जो नली रहती है उसमें वैक्स मैल जम जाता है। प्रकृति ने ऐसी व्यवस्था की है कि उस मैल को बाहर निकाला जा सके। एक ऐसी प्रक्रिया कान के अंदर होती रहती है जिससे साधारण मैल अपने-आप ही बाहर फेंक दिया जाता है। प्राय: लोग इस मैल को किसी चीज से टोंचकर या किसी नुकीली वस्तु की सहायता से निकालने का प्रयत्न करते हैं जो गलत है। कान का मैल निकालने-वालों के फंदे में पड़ जाने पर अकथनीय नुकसान हो जाता है। कभी-कभी वे लोग कान के परदे में छेद कर देते हैं जिससे सुनने की क्षमता प्रभावित होती है और अन्य कई बीमारियां होने लगती हैं।

कान के अंदर जो फोड़े होते हैं वे भयानक दर्द करते हैं। कान में अधिक दर्द होते ही फौरन चिकित्सक को दिखाकर उसे खुलवा देना चाहिए ताकि फोड़े का मवाद कान के परदे पर असर न डाल सके। यदि कान का परदा प्रभावित होता है तो अन्य कई गंभीर बीमारियां होने का डर रहता है।

कान के पीछे उठी हुई हड्डी में सूजन आना अर्थात् मध्य कान में बीमारी का होना माना जाता है। कभी-कभी उस हड्डी में बीमारी अपने-आप हो जाती है। इस हालत में चिकित्सक से शीघ्र मिलना चाहिए। उस बीमारी में सिरदर्द, उलटी, बुखार आदि आने लगते हैं। कान में पीव या मवाद होते ही टिटेनस नामक एक भयंकर बीमारी होने का खतरा रहता है। इसलिए कान में किसी भी तरह के मवाद के पड़ते ही जल्दी से जल्दी टिटेनस रुकवाने का इंजेक्शन लगवा लेना चाहिए। टिटेनस अर्थात् धनुषवात की बीमारी जो अकालमृत्यु का प्रमुख कारण माना जाता है।

यदि किसी आदमी के किसी कान में दर्द हो, जीभ में छाले बन जाएं तथा जीभ का छाला ठीक न होता हो, आदमी की उम्र ४० वर्ष के आसपास हो तो जीभ में कैंसर की बीमारी होने का शक किया जाता है। जीभ की नसों से कान की नसों का संबंध है। इसीलिए जीभ में कैंसर हो जाने से कान में दर्द होने लगता है।

लगभग ६० वर्ष के आसपास कान के मैल को बाहर फेंकने की प्राकृतिक प्रक्रिया शिथिल हो जाती है। उस आयु में मैल अधिक जमा होने लगता है। उस अवस्था में विशेष सावधानी की जरूरत पड़ती है। जमे हुए मैल को निकलवाने के

लिए सदैव चिकित्सक का ही सहारा लेना चाहिए। घरेलू दवाइयां बजाय फायदा के नुकसान ही पहुंचाती हैं। दस-बारह वर्ष का बालक यदि अचानक बधिर हो जाए तो जन्मजात गरमी या 'सिफलिस' की बीमारी का शक करना पड़ता है। उसके माता-पिता को गरमी की बीमारी होनी चाहिए। कभी-कभी ऐसे बच्चे अंधे भी हो जाते हैं। 'पेनीसिलीन' इंजेक्शन के आविष्कार के बाद गरमी की बीमारी लुके-छुपे तौर पर पाई जाती है।

आजकल 'मीनियर्स सिंड्रोम' नाम की बीमारी काफी लोगों में पाई जाती है। महिलाएं प्राय: अधिक उत्तेजित एवं व्यथित रहती हैं और इसीलिए उनमें यह बीमारी अधिक पाई जाती है। इस बीमारी से पीड़ित व्यक्ति को उलटी, चक्कर तथा सिरदर्द बना रहता है। उन्हें सुनने में भी दिक्कत होने लगती है। इस बीमारी का मुख्य लक्षण कम सुनाई देना है। यह बीमारी रह-रहकर आती-जाती रहती है। इसीलिए लोग इसकी ज्यादा परवाह नहीं करते। कभी-कभी इन मरीजों को चलते-चलते चक्कर आने लगता है और वे बैठकर आराम करने लगते हैं। मेरी राय में ऐसी बीमारी का शीघ्र ही इलाज कराना चाहिए। मानसिक तनाव की पृष्ठभूमि में यह बीमारी उत्पन्न होती है।

(२) उच्च रक्तचाप के कारण कानों में अजीब-सा सन्नाटा आता रहता है। सांय-सांय, भांय-भांय जैसी आवाजें आती रहती हैं। कभी महसूस होता है कि कान से सुनाई नहीं पड़ रहा है। ऐसा मरीज दोनों कानों को दबाकर शांति पाना चाहता है। उसके सिर में भारीपन भी रहता है। सोते समय अचानक एक अजीब-सी आवाज सुनाई पड़ती है और मरीज सोते से जागकर बैठ जाता है। रक्तचाप कम रहने पर भी कान में कुछ शून्य-सा मालूम होता है। पूरे शरीर में ऐसी थकान महसूस होती है कि चलने की हिम्मत नहीं रहती।

दुर्घटना के कारण यदि सिर में चोट लगे और कानों से खून बहने लगे या बूंद-बूंद खून भी आए तो यह निश्चित समझना चाहिए कि भेजे (मस्तिष्क) के अंदर चोट लगी है। वैसे कभी-कभी कान के अवयवों में भी चोट लगने से खून आ सकता है। कान से खून बहने पर मरीज को फौरन अस्पताल में भरती होना चाहिए। साधारण जुकाम में गला खराब हो जाने पर उसका तुरंत इलाज कराना चाहिए ताकि वह कान तक न फैलने पाए। जुकाम बिगड़ने पर कानों में भी तकलीफ होने लगती है क्योंकि कान के अंदर का हिस्सा गले के बाहर के हिस्से के साथ जुड़ा हुआ है। जुकाम में कान में दर्द होना स्वाभाविक है। यदि जोर से छींक आए तो उसे रोकने की कोशिश करनी चाहिए ताकि रोग के कीटाणु (वाइरस) मध्य कान तक न पहुंच जाएं। इसी तरह इंफ्लुएंजा और खसरा जैसे छूत के रोगों के साथ-साथ कान में भी जलन अथवा सूजन हो सकती है। कभी-कभी जोरों का दर्द भी हो जाता है।

(३) अर्धविक्षिप्त मानव कान की कई तरह की तकलीफें बताते रहते हैं। उन्हें प्रायः कान के पास कुछ गूंजता-सा मालूम होता है। 'फोनोफोबिया' नाम का एक मानसिक रोग पहचाना गया है। इसमें अधिक आवाज से, अधिक भीड़ से, अधिक तेजी से जानेवाले वाहन को देखकर मरीज को डर लगने लगता है। वह चुप होकर बैठ जाता है। यदि कोई व्यक्ति बिना किसी बीमारी के कान की तकलीफ बताए तथा अतिरंजित तरीके से अपनी तकलीफों का बयान करे तो समझना चाहिए कि वह किसी-न-किसी प्रकार के मानसिक रोग का शिकार है। ऐसे मरीज यह कभी नहीं समझते कि उनका मानसिक संतुलन पटरी से उतर चुका है। वे अपने-आपको सब लोगों से अधिक चतुर तथा काबिल समझते हैं।

बहरापन कई प्रकार का होता है, उसका विशद वर्णन संभव नहीं। मैं इतना ही कहना चाहूंगा कि जितनी जल्दी बहरेपन का इलाज कराया जाए उतना ही शीघ्र लाभ मिलेगा। यदि बहरापन ठीक न हो तो बहरेपन की सहायता के लिए जो विभिन्न यंत्र निकले हैं उनका शीघ्र उपयोग करना चाहिए। यह अवश्य पता लगा लेना चाहिए कि बहरेपन का कारण क्या है? मामूली बैटरी के सेटवाले यंत्र के अलावा अब इलेक्ट्रॉनिक हीयरिंग एड मिलने लगे हैं जिन्हें कानों के पीछे लगवाने पर किसी को मालूम भी नहीं होता कि उन्हें सुनने में कोई अड़चन होती है।

'रिलेटिव्ह बहरापन' नाम का एक दोष बताया जाता है, जिसके अनुसार एक व्यक्ति उन्हीं बातों को ध्यान से सुनता है जिनमें उसकी दिलचस्पी होती है और शेष बातों की ओर वह ध्यान नहीं देता। इस प्रक्रिया में वह उन सारी बातों को अनसुनी कर देता है जिन्हें वह नहीं सुनना चाहता। ऐसे व्यक्ति बड़े नाटकीय स्वभाव के होते हैं। सरासर सुनते हुए भी साफ मना कर देते हैं कि बात उनकी समझ में नहीं आई या उस बात को वे सुन नहीं पाए।

डॉक्टर ग्रांट सेल्फीज के अनुसार, "कान के अनेक रोगों का मूल कारण छूत न होकर दोषपूर्ण आहार है। विटामिनरहित दोषपूर्ण भोजन के कारण कान के अंदर की कुछ पर्तें ठीक-ठीक विकसित नहीं हो पातीं। बाहर के रोगों से वे अपनी सुरक्षा भी नहीं कर पातीं। कान के तंतु बहुत नाजुक होते हैं।"

श्रवण-संबंधी रोगों का उपचार करने के लिए विटामिन 'ए' का विशेष महत्त्व है। विटामिन 'ए' का प्रभाव सिर्फ आंखों पर ही नहीं वरन् नाक, कान, गले एवं शरीर की भीतरी व बाहरी त्वचा पर भी पड़ता है। श्रवणशक्ति को बनाए रखने के लिए इस विटामिन की आवश्यकता रहती है। विटामिन 'ए' तथा विटामिन 'बी'-युक्त आहार कानों के रोगी को बहुत लाभदायक होता है। बाहर का कोलाहल उन्हें अधिक परेशान नहीं करता।

वृद्धावस्था में श्रवणशक्ति कुछ दुर्बल पड़ जाती है। उसके कई कारण हैं।

उस उम्र में जैसे बाल पकने लगते हैं वैसे ही कान के ततुओं में भी जीर्णता आने लगती है। भोजन में विटामिन 'ए' की कमी तो रहती ही है। प्राय: देखा गया है कि यदि मां-बाप को बुढ़ापे में सुनने की तकलीफ होती थी तो बच्चे भी बूढ़े होने पर कान से कम सुनते हैं।

आहार के अलावा नित्य धूप-सेवन कानों को बहुत फायदा पहुंचाता है। सूर्य की किरणें जब कानों को धीरे-धीरे सेंकती हैं तो उसके अंदर के तंतुओं को लाभ पहुंचता है। कान के अंदरूनी नाजुक अवयवों को बिना कुछ किए आप जीवन-भर अपनी श्रवण-शक्ति को बनाए रख सकते हैं। बशर्ते कि भोजन संतुलित हो तथा नियम-संयम का पालन किया जाए। संतुलित भोजन मिलना आजकल मुश्किल है।

डॉक्टर जोसेफ लोबेले ने आहार और बधिरता पर लेख लिखा है। उनके अनुसार, विटामिन ए की कमी से गले की झिल्ली में परिवर्तन हो जाता है। उसके कारण जो कीटाणु गले में पनपते हैं ये मध्य कान में भी पहुंच जाते हैं। विटामिन ए की कमी में मध्य कान की लघु अस्थियां अत्यधिक बढ़ जाती हैं जिसके कारण ध्वनि का प्रसार ठीक-ठीक नहीं हो पाता। शुद्ध दूध में विटामिन ए की मात्रा अत्यधिक रहती है। मछली खानेवाले लोग विटामिन ए की कमी से कभी दु:खी नहीं रहते। उन पदार्थों का जिक्र करना आवश्यक है जिनमें विटामिन ए प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं जैसे—लौकी, पात-गोभी, चौलाई, धनिया-पौदीना, मेथी, पालक, गाय का दूध, मूंग की दाल, सौंठ, अजवायन तथा पपीता आदि।

कान को स्वस्थ रखने के लिए मनुष्य की दिनचर्या संतुलित होनी चाहिए। कान के तंतुओं पर अधिक ठंडा स्नान, अधिक ठंडी हवा, विशेषकर शिशिर ऋतु में नुकसान पहुंचा सकती है। शोर प्रदूषण के अध्याय में मैंने विस्तारपूर्वक बताया है कि शोर का दिल और दिमाग पर क्या प्रभाव पड़ता है। कोलाहलपूर्ण वातावरण, अधिक वाचालता से भी कान पर असर पड़ता है। अनिद्रा, अधिक जागरण, अधिक असंयमित मैथुन से भी कान के तंतु प्रभावित होते हैं। संयम ही सर्वोत्तम स्वास्थ्य है।

यदि एक बार कर्ण-प्रणाली क्षतिग्रस्त हो गई तो उसे फिर से कार्यक्षम बना सकना दुष्कर कार्य है। कान-संबंधी दोषों को उत्पन्न न होने देने में ही चतुराई और भलाई है।

हमारे पूरे शरीर को स्वस्थ रखने के लिए विभिन्न यौगिक क्रियाएं वर्णित हैं। 'शून्य मुद्रा' की विधि द्वारा कुछ ही मिनटों में कान के दर्द पर काबू पाया जा सकता है। बीच की (मध्यमा) उंगली को अंगूठे की गद्दी पर लगाकर ऊपर से अंगूठा हलका दबाने पर यह मुद्रा निर्मित होती है। यदि इस अभ्यास को प्रतिदिन आधा घंटा किया जाए तो कान का बहना, कम सुनना आदि ठीक हो जाते हैं।

पूरी प्रक्रिया में एकाग्रता होनी चाहिए। इस विधि को अपनाने के लिए योग-संबंधी साहित्य पढ़ लिया जाए या किसी जानकार से समुचित ज्ञान प्राप्त कर लिया जाए तो बेहतर होगा।

एक दूसरा साधन नेतिक्रिया का है। इसे अवश्य करना चाहिए। इससे जुकाम भाग जाता है एवं कान-संबंधी कई तकलीफें अपने-आप ठीक हो जाती हैं। कान में जो सांय-सांय की ध्वनि आती रहती है वह भी बंद हो जाती है। मनुष्य अपने अंदर से ही पूरे स्वास्थ्य को सुरक्षित रखता है। अंदर से दृढ़ संकल्प होने पर, संयम, अनुशासन एवं आत्म-संतोष स्वयं ही आ जाते हैं।

पशुओं की खोपड़ी के बाहरी बाजू के स्नायु ऐच्छिक होने के कारण उनके कानों में यह विशेषता होती है कि वे अपने कान आवाज की दिशा में मोड़ लेते हैं। परंतु हमारे स्नायु अनैच्छिक होने के कारण बाहरी कान का उपयोग आवाज की लहरों को एकत्रित कर उन्हें कर्णनलिका की ओर भेजने में ही होता है। कुछ जीव-जंतुओं के कान नहीं होते; जैसे सांप—चक्षुश्रवा कहलाता है। अर्थात् वह देखकर या शरीर के कंपन से आवाज सुनता है। चमगादड़—पक्षी बिना कान के होते हैं। इस संबंध में विस्तृत चर्चा मैंने संबंधित अध्याय में की है।

वर्तमान समय में शल्य-चिकित्सा-जगत् में इतनी अधिक प्रगति हुई है जिसका अंदाज नहीं लगाया जा सकता। वृद्धावस्था में बुढ़ापे के कारण मध्य कान की लघु अस्थियों में जो खराबी आ जाती है उसे सुधारकर बहरापन दूर किया जा सकता है। बिना श्रवणशक्ति के जीना, न जीने के बराबर है। संगीत का आनंद तो कानों के द्वारा ही लिया जा सकता है।

आवाज और वाणी की दुनिया में बोलचाल की भाषा में कान शब्द का प्रयोग बड़ा ही मुहावरेदार रहता है। कान शब्द के क्षेत्र को व्यापक बनाता है। कान और मस्तिष्क आपस में कितने जुड़े हुए हैं इसका बोध कराता है। इन मुहावरों से बोलनेवाले व्यक्ति तथा सुननेवाले व्यक्ति, दोनों के नैतिक स्तर का पता चल जाता है। मैं कुछ उदाहरण देना चाहूंगा —

(१) **कान खड़े करना**—वे व्यक्ति जो चैतन्य तथा जागरूक होते हैं, सदैव अपने कान खड़े रखते हैं। सतर्क होते हुए भूल नहीं करते। कान खड़े हो जाने का मतलब होता है किसी बात को सुनकर आश्चर्य में पड़ जाना या अत्यंत सचेत हो जाना।

(२) **कान पकना**—किसी बात को बार-बार सुनते रहने से जो बोरियत होती है उसे ही कान का पकना कहते हैं। कुछ लोगों का स्वभाव होता है कि वे पिष्टपेषण करते हुए अपने दुश्मन को किसी दूसरे की निगाह में गिरा देना चाहते हैं और बार-बार अपनी बात उसके हितैषी को सुनाते रहते हैं।

(३) **कान का कच्चा**—अर्थात् चापलूसी-पसंद तथा सिद्धांतहीन व्यक्ति।

ऐसे व्यक्ति स्वयं के विवेक का उपयोग नहीं करते। वे दूसरों की निंदा करना तथा सुनना चाहते हैं। अहंकार और अहं से पूर्ण रहते हैं। उनमें आत्मविश्वास की कमी रहती है।

(४) **कान भरना**—अर्थात् किसी व्यक्ति को किसी के बारे में गलत या सही बताकर उसके अंदर उसके प्रति दुर्भावना उत्पन्न करना। विशेष व्यक्तियों के कान भरे जा सकते हैं, सबके नहीं। जो व्यक्ति किसी का कान भरता है वह अपना तो अहित करता ही है, सुननेवाला व्यक्ति भी पक्षपातपूर्ण हो जाता है। जो व्यक्ति कान भरने की कोशिश करता है उसके अंदर प्रतिशोध या स्पर्धा की भावना मुख्य रहती है।

(५) **राजा के कान होते हैं, आंखें नहीं होतीं**—यह कहावत प्रतिदिन चरितार्थ हो रही है। आज राजा नहीं रहे पर सत्ता के कर्णधार इस कमजोरी को भली-भांति बनाए हुए हैं। राजपद पाने के बाद, सत्ता में आने के बाद साधारण मनुष्य अपना विवेक तथा विश्लेषण करने की शक्ति को खो देता है और इसीलिए वह कान का कच्चा हो जाता है।

(६) **पैनी दृष्टि तथा चौकन्ने कान**—इन गुणों के द्वारा कोई भी व्यक्ति महान् बन सकता है।

(७) **कान का बहरा**—अर्थात् बातों को सुनकर भी अनसुनी कर देना। या तो उन विषयों पर उदासीन रहता है या वह उन बातों को ग्रहण नहीं करना चाहता।

(८) **कान पर जूं न रेंगना**—अर्थात् अहम् एवं अहंकार से पूर्ण उसका व्यक्तित्व गंभीर से गंभीर बातों को भी अनसुनी कर देता है। वह अपने अंतर्मन की आवाज सुनना ही नहीं चाहता। ऐसे व्यक्ति यथार्थ से कोसों दूर रहते हैं।

इन मुहावरों को मैंने एक तरह की व्याधि समझकर ही लिखा है। आज के जमाने में जब तक कोई किसी की आवाज न समझे, वह ठीक-ठीक जीवन-यापन कर ही नहीं सकता। या तो वह गुमराह होगा या धोखा खाएगा। छः कानों में कही बात फैल जाती है।

२

मानव-स्वरयंत्र की रचना, ध्वनि का सृजन तथा स्वरयंत्र का कैंसर

मानव-स्वरयंत्र को अंग्रेजी में लेरिंक्स या 'वायस-बाक्स' कहा जाता है। यह खोखले कार्टीलेज (उपास्थि) से बना होता है। यह वायु पक्ष (ट्रेकिया) के ऊपर स्थित होती है (ट्रेकिया अर्थात् सांस लेने की नली)। इस 'वायस-बाक्स' में स्नायुओं की दो पट्टियां होती हैं जिन्हें स्वर-तंतु कहते हैं। हवा के प्रवाह से ये तंतु हिलते हैं जिससे ध्वनि उत्पन्न होती है। इन दोनों में छोटे-छोटे एक-एक नोड्यूल होते हैं। बोलते समय स्वर-तंतुओं की स्थिति इस प्रकार होती है कि दोनों स्वर-तंतु नजदीक आ जाते हैं तथा दोनों के बीच में इतनी जगह रहती है कि हवा निकल सके। श्वासोच्छ्वास के समय वोकल नोड्यूल तंतु एकदम नजदीक आ जाते हैं ताकि हवा का आवागमन उसी रास्ते से हो जिससे मनुष्य चाहता है।

इस ध्वनि को भिन्न उच्चारणों में बदलने का काम मुख-गुहा, नाक तथा औरोफेरिंक्स में होता है। मुंह के अंदर औरोफेरिंक्स वह हिस्सा है जो खाने की नली के ऊपर होता है। दूसरी सभी आवाजों की अपेक्षा मनुष्य के बोलने की आवाज अलग पड़ जाती है। अंग्रेजी में मानव की आवाज के लिए 'वायस' शब्द का प्रयोग होता है जबकि अन्य आवाजों के लिए 'साउंड' का। जो ध्वनि 'वायस-बाक्स' से निकलती है वह वायस अर्थात् 'बोल' कहलाती है।

मानव की आवाज पैदा करने की प्रक्रिया काफी जटिल होती है। फिर भी सरल शब्दों में कहें तो होता यह है कि जैसे बांसुरी में से हवा फूंकी जा रही हो। हवा के प्रवाह को बांसुरी के छिद्रों की मदद से नियंत्रित किया जाता है और भिन्न प्रकार की ध्वनियां निकलती हैं। बांसुरी-वादन एक महान् कला है। भगवान् कृष्ण की बांसुरी की ध्वनि सुनकर पूरा ब्रज रोमांचित हो उठता था। सितार के तार की खनक में कंपन पैदा होता है। वह कंपन हवा में स्वर की तरंग उत्पन्न करता है। यह तरंग कान के परदे को स्पर्श करती है और अंत में हमें

आवाज के रूप में सुनाई देती है। स्वर-पेटी के स्वर-तंतु भी सितार के तार की भांति कार्य करते हैं। हम सांस लेकर जब बाहर निकालते हैं तब हवा स्वर-पेटी से फैलती है। जब बोलना होता है तब स्वर-तंतुओं में कंपन उत्पन्न करने के लिए हम उच्छ्वास की हवा का उपयोग करते हैं। जोर से बोलने के लिए या लंबे जोरदार वाक्य बोलने के लिए श्वासोच्छ्वास पर भी काबू पाना जरूरी रहता है।

छाती से उठती सांस लेने की क्रिया तथा छाती के निचले भाग से उठती सांस की क्रिया—अच्छा बोलने के लिए विशेष उपयोगी होती है। दमा से पीड़ित मरीज तथा अन्य फेफड़ों की बीमारी से पीड़ित लोग लगातार बोलने में अपने-आप को असमर्थ पाते हैं। उनका दम फूलने लगता है। हरएक मनुष्य के स्वर-तंतु की अपनी मूलभूत कंपन-संख्या (फंडामेंटल फ्रीक्वेंसी) होती है। पुरुषों की यह कंपन-संख्या, स्त्रियों की अपेक्षा कम होने से, उनकी आवाज स्त्रियों की तुलना में मोटी लगती है। कंपन-संख्या पुरुषों की ८५ से १५० हट्‌र्ज, स्त्रियों की १७५ से २५० हट्‌र्ज और बालकों की २०० से ३०० हट्‌र्ज होती है। इसी कारण पुरुष, स्त्री और बालकों की आवाजें अलग-अलग होती हैं। उनमें भी हरएक की आवाज एक-दूसरी से भिन्न मालूम पड़ती है। दो मनुष्यों या दो स्त्रियों या दो बालकों की आवाजें भी भिन्न-भिन्न होती हैं। हरएक इंसान की आवाज एक विशेषता लिए रहती है तथा उम्र के अनुसार उसमें अंतर पड़ता है। परंतु मूलभूत मौलिक आवाज वही रहती है क्योंकि हरएक व्यक्ति की कंपन-संख्या अपने-आप में एक विशेष प्रकार की होती है। यहां तक कि हरएक अक्षर की कंपन-संख्या भी अलग-अलग होती है। जैसे 'स' अधिक संख्यावाला व्यंजन है जबकि 'ऊ' की कंपन-संख्या कम है।

किसी की आवाज इतनी धीमी होती है कि उससे कहना पड़ता है कि जरा जोर से बोलिए; कुछ लोग जब बोलते हैं तो कान फटने लगते हैं और कुछ की बोली सुनने की इच्छा ही नहीं होती। आवाज का यह अंतर कंपन-संख्या पर आधारित है। लेकिन आवाज की एक और विशेषता होती है, उसकी जाति। लता मंगेश्कर की आवाज कर्णप्रिय, गूंजती हुई लगती है। कुंदनलाल सहगल की आवाज आज भी लोग इसलिए सुनना चाहते हैं कि वह गूंजती रहती है तथा उसमें कुछ दर्द छिपा रहता है। अमिताभ बच्चन की आवाज दबंग होते हुए भी सरस है। कुछ लोगों की आवाज फटी हुई या विकर्षण पैदा करनेवाली लगती है। तरह-तरह की इन आवाजों का वैज्ञानिकों द्वारा विश्लेषण किया जा रहा है।

एक नए यंत्र—'साउंड स्पेक्ट्रोग्राफ'—का आविष्कार हुआ है जिसके द्वारा आवाज की कंपन-संख्या, कंपन-विस्तार आदि को जाना जा सकता है। नकारात्मक तथा सकारात्मक शब्दों की पहचान करने के लिए भी नए यंत्रों का आविष्कार हुआ है।

घूमकर आने के बाद घर के अपने कमरे के पलंग पर लेट जाते थे तथा अपनी छड़ी को कमरे के कोने में खड़ी करके रख देते थे। एक शाम जब वह घूमकर लौटे तो छड़ी को पलंग पर लिटा दिया और वे स्वयं कमरे के कोने में, जहां पर छड़ी टिकाकर रखी जाती थी, वहां पर खड़े हो गए। थोड़ी देर बाद जब श्रीमती डार्विन उस कमरे में आईं तो यह दृश्य देखा और वे हंस पड़ीं। इसी तरह न्यूटन, जो एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक थे, उनके भी कई किस्से हैं। एक दिन न्यूटन ने अपनी पत्नी से चाय बनाने को कहा। पत्नी ने चाय बनाना शुरू किया। स्टोव पर बरतन में पानी उबलने लगा और श्रीमती न्यूटन ने समय का अंदाज लगाने के लिए हाथ में एक कलाई घड़ी भी रख ली थी। उसी समय बाहर के दरवाजे से किसी ने आवाज लगाई और श्रीमती न्यूटन को जाना पड़ा। जाने के पहले श्रीमती न्यूटन ने अपने हाथ की घड़ी को न्यूटन को देते हुए कहा कि समय हो जाने पर चाय-दूध आदि डाल देना। और ऐसा कहकर वे चली गईं। कुछ ही देर बाद जब श्रीमती न्यूटन लौटकर आईं तो देखा कि घड़ी खौलते पानी में पड़ी है और न्यूटन आराम से खड़े हैं। इसी तरह प्रसिद्ध वैज्ञानिक आर्कीमिडिस जिसने 'आर्कीमिडिस सिद्धांत' की खोज की, वे नहाने के टब के पानी में डूबे हुए नहा रहे थे। जैसे ही उन्हें टब के पानी के अंदर यह महसूस हुआ कि उनका शरीर हल्का हो गया है, वे मारे खुशी के नंगे बदन ही टब से बाहर निकलकर जोर से चिल्लाने लगे—पा लिया, पा लिया। ऐसी घटनाओं से निष्कर्ष यह निकलता है कि ये महान् प्रतिभाशाली व्यक्ति पागल तो नहीं कहे जा सकते पर वे किस क्षण अपना मानसिक संतुलन खो बैठें, यह कहना मुश्किल है। इन घटनाओं को दूसरे नजरिए से भी देखा जा सकता है कि शायद वे अपने विचारों में कितने तल्लीन थे कि उन्हें अपने आसपास का कोई ख्याल नहीं रहा। लेकिन आखिर ऐसा व्यवहार सामान्य नहीं माना जा सकता।

मनुष्य सारे परेशान हैं, केवल परेशानी की मात्रा में फर्क है। आत्मज्ञान न हो तो मनुष्य का जीवन दुःखों और निराशाओं से भर जाता है। इस ज्ञान से शून्य होकर दो भिन्न वैज्ञानिकों ने अपने-अपने स्वार्थ से अंधे होकर एक-दूसरे को गोली मार दी। एक चिकित्सक धूम्रपान की सारी खराबियों को जानते हुए भी उसे छोड़ नहीं सकता। यदि हमारे भीतर दुर्बलता आ गई है तो हम उसे पहचानें, उससे सजग रहें लेकिन होता इसका उलटा है। दुर्बलताओं को छिपाने के लिए असंतुलित होकर हम अन्य दुर्गुण पालने लगते हैं। कोई मार्मिक दुर्घटना या हृदय-विदारक समय आ पड़ने पर हम अपना विवेक-धैर्य खो बैठते हैं और अवांछनीय व्यवहार कर बैठते हैं। कबीर कहा करते थे कि या तो धन कमा लो या राम नाम कमा लो। जिस मनुष्य को न तो माया मिलती है और न राम ही मिलते हैं उसकी मानसिक अवस्था सोचनीय हो जाती है। एक अत्यंत महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति जब

अपनी इच्छाओं की पूर्ति नहीं कर पाता तो उसे निराशा होती है। उसका मनोबल टूटने लगता है। उस बिखरी मन:स्थिति में वह अपने आपे से बाहर हो जाता है। सनकी जैसा होकर जीवन व्यतीत करता है। ऐसे लोगों के लिए ही कहा जाता है कि उनका कोई भरोसा नहीं कि वे किस समय क्या कर बैठें।

आज के सत्ताधारी लोग, धन-संपत्ति के वैभव से उन्मत्त लोग प्राय: यह कहते सुने जाते हैं कि—

"अपने भयानक रूप से लोगों को डराना,
मुझे खूब अच्छा लग रहा है।"

लेकिन जिस दिन उनकी कुर्सी छीन ली जाती है, वे अपदस्थ कर दिए जाते हैं, उन्हें अपने स्वयं का रूप भयावह दिखने लगता है। वे असंतुलित होकर कुछ भी करने को तैयार हो जाते हैं। समाज में आए दिन इस तरह के व्यक्तियों की जीवनी हम देखते हैं या पढ़ते हैं। युवावर्ग में असंतुलन तो एक मामूली बात हो गई है। बेरोजगारी, दिशा-विहीनता और भ्रष्ट वातावरण के कारण वे केवल आक्रोश में जीते हैं। अग्नि की चिनगारी की तरह यह युवा समूह चाहे जब भड़क उठता है। विस्फोट कर बैठता है और समाज कहता है कि आज हमारे देश के युवक बहक गए हैं। कोई भी व्यक्ति पूरी सचाई के साथ यह नहीं जानना चाहता कि इन सब निराशाओं के पीछे कौन से तत्त्व क्रियाशील हैं। सबको अपनी-अपनी पड़ी है। यही तो सबसे बड़ी बीमारी है।

बड़े-बड़े मानसिक अस्पतालों में जाकर देखें तो ऐसा मालूम होता है कि ये जितने प्रकार के मरीज यहां आते हैं ये सब शुरू-शुरू में मानसिक असंतुलन के लक्षण दिखाते हैं। कारण जो भी हो, उन सब कारणों पर विवेचना संभव नहीं है। ऐसे ही व्यक्ति धीरे-धीरे अर्धविक्षिप्त अवस्था में पहुंच जाते हैं। सबसे दु:खद तथ्य यह है कि मानसिक व्याधि से पीड़ित इनसान यह कभी नहीं सोचता कि वह बहक गया है। उसे इलाज की जरूरत है। वह दूसरों को ही बहका हुआ समझता है। वे मरीज किसी भी श्रेणी के हों, मानसिक व्याधि किस प्रकार की रहती है, यह सब एक बहुत बड़ा अध्याय है। मैं यह जरूर लिखना चाहूंगा कि आज के इनसान के पास न तो स्वस्थ शरीर है और न ही स्वस्थ दिमाग ही है। उसके आसपास स्वस्थ वातावरण भी नहीं है। समाज स्वस्थ रहते हुए भी अस्वस्थ जैसा व्यवहार कर रहा है। इसी विडंबना के कारण अस्वस्थ वातावरण का नजारा है। अस्वस्थता पैदा की जा रही है और इसके लिए दोषी हम-आप सब हैं।

अधपके विचारोंवाले, ढुलमुल नीतिवाले, डांवाडोल हो रही राज्यसत्ता इन सबने मिलकर ऐसी खिचड़ी पकाना शुरू कर दिया है कि उन्हें सुनकर आदमी बिना असंतुलित हुए रह ही नहीं सकता। उनका कहना है कि वास्तविक मुक्ति के लिए आपको पाप करना पड़ेगा और जहां तक हो सके पश्चात्ताप करना होगा।

औरतों और नारी वर्ग को यह बताया जाता है कि उन्हें भी इस आंदोलन में शरीक होना पड़ेगा। उच्च वर्ग की औरतें महिला स्वतंत्रता आंदोलन के नाम से निर्भीक हो गई हैं। महिलाएं क्या कर रही हैं और आगे भविष्य में क्या करेंगी, यह केवल धीरज रखकर चुप्पी साधने की बात है, अन्यथा वास्तविक मुक्ति किसी को भी नहीं मिल पाएगी। हमारे देश की राजनीति में महिलाओं की आवाज और वाणी की कद्र धीरे-धीरे बढ़ रही है। रूस के एक पागल भिक्षुक रास्पुटिन ने सन् १९०५ के आसपास अलेक्जेंड्रा (एक नारी का नाम) के माध्यम से उनकी राजशाही की जड़ों को उखाड़ा था, यह एक दिलचस्प साहित्य है। उस पागल का राजशाही पर जो दुष्प्रभाव पड़ा और उसके जीवन के ढंग से लोगों के मन में जो नफरत पैदा हुई वह उस देश में क्रांति लाने के कारणों में से एक थी। हमारे देश में भी आगे-पीछे कोई सनकी ही क्रांति ला सकता है। हो सकता है कि उसका माध्यम भी कोई महिला ही हो। मैं पूर्व में ही कह चुका हूं कि एक सनकी और प्रतिभावान व्यक्ति में अति सूक्ष्म अंतर रहता है। आशंकाओं व आशाओं के बीच झूलता हुआ मानव अस्थिर रहता है। यदि इसी बीच निराशा भी आ जाए तो वह टूट जाता है। मस्तिष्क में विकार पैदा करनेवाले तत्त्व आ जाते हैं।

धर्म का जीवन मनुष्य को बड़ा बल देता है। नीच जीवन परलोक में भी हैरान करता है। जीवन के प्रति बेहोशी को जिस ढंग से चित्रित किया जाए, ताकि मालूम हो सके कि असंतुलित, अर्धविक्षिप्त अवस्था कैसे उत्पन्न होती है। आज का शिकवा-शिकायत कुछ इस तरह का होता है—

यह दीवानों का मसकन है यह परवानों की बस्ती है,
यहां मौत भी आकर दबे पांव गुजरती है।

मनुष्य जब अपनी अयोग्यताओं, खामियों और कमजोरियों से परिचित हो जाता है तो उसका मानसिक संतुलन बिगड़ने लगता है। उन कमजोरियों से निकलने के लिए वे सब तिकड़म लगाते हैं और केवल निराशा हाथ लगती है। अर्ध-विक्षिप्त अर्थात् अपने ऊपर से विश्वास का उठ जाना, सभी आसपास की चीजों को शंका की दृष्टि से देखने लगना तथा किसी भी आदमी पर विश्वास न करना, सदैव भय और आशंका का जीवन बिताना। उच्च और पुनीत विचारों को वह समझता ही नहीं। रात-दिन अपने-आपमें केंद्रित होकर केवल अपने बारे में ही सोचते रहना, किसी भी चीज को जल्दी भूल जाना, एक ही विषय को लेकर बार-बार प्रश्न करना। एक बार जो सोच लिया उसे ही ठीक समझना; ये सब ऐसे लक्षण हैं कि आदमी को सतर्क हो जाना चाहिए। रात को सोते समय पलंग पर लेट जाने के बाद स्मरण आया कि शायद दरवाजों की सिटकनी नहीं लगी है। उठकर वह बंद करने के लिए जाता है और ठीक-ठीक देखकर लौट आता है।

थोड़ी ही देर बाद फिर खयाल करता है कि शायद सिटकनी न लगी है। फौरन उठता है और जाकर दरवाजों को पुनः देखता है। यदि यही प्रक्रिया बार-बार होती रहे तो यह समझना चाहिए कि वह शीघ्र ही पटरी से उतर रहा है। पागलपन का जो मजा है वह एक पागल ही जान सकता है—ऐसे वाक्यों के बारे में वह सोचता है तथा उस पर चर्चा भी करता है। आत्मीयता के साथ, लगाव के साथ, एकाग्रता के साथ वह न तो किसी से मिलता है और न ही किसी के दिए हुए काम को करता है। प्रतिक्षण भिन्न-भिन्न विचारों का आना तथा ऐसी चीजों की कल्पना करना जो संभव नहीं हैं, अव्यावहारिक हैं, उसके लिए साधारण हैं। झुंझलाहट, खिन्नता, व्यग्रता तथा आक्रोश के तत्त्व इनके व्यक्तित्व में प्रमुखता से पाए जाते हैं। साधारण आदमी भी इन वेदनाओं का शिकार होता है पर असंतुलित व्यक्तियों में इन तत्त्वों की अधिकता होने के कारण वे असामान्य हो जाते हैं। विवेक, तर्क और बुद्धि होते हुए भी इन गुणों का ठीक-ठीक लाभ नहीं उठा पाते।

आज जबकि मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताओं को जुटाने के लिए कठोर परिश्रम करना पड़ रहा है आम आदमी ने अपने समय और धन को बचाने के लिए अन्य तरीके सोच रखे हैं। और उन अन्य अमानवीय तरीकों को अपना-कर ही वह असंतुलित होता है तथा उसकी मानसिक अवस्था बिगड़ जाती है। आदमी का विवेक और अंतरात्मा तो सदैव उसके साथ रहती है। अतएव आंतरिक संघर्ष के कारण वह सोच नहीं पाता कि क्या सही है और क्या गलत है। आज किसी भी क्षेत्र में मनुष्य यथार्थवादी नहीं है। अंधविश्वास, रूढ़िवाद के प्रति मानव को नहीं बदल सका है।

महात्मा गांधी का रामराज्य, ग्रामराज्य आदि की सारी कल्पनाएं धूल-धूसरित हो गई हैं। सर्वत्र भागदौड़ मची है। कहीं भी व्यक्ति-निर्माण, चरित्र-निर्माण की रचनात्मक गतिविधियों की चर्चा नहीं की जाती। आज कहा जा रहा है कि साहित्य में सत्य से अधिक कल्पना जरूरी है। दार्शनिक प्लेटो कहा करता था कि लोकतंत्रीय देश में शिक्षा निःशुल्क दी जानी चाहिए। बेरोजगारी नहीं होनी चाहिए और जो बेरोजगार हैं उन्हें छात्रवृत्ति देनी चाहिए। किसी के भी बीच कोई भेदभाव नहीं रहना चाहिए। निःशुल्क चिकित्सा-व्यवस्था होनी चाहिए। व्यक्तित्व की गरिमा सर्वोपरि होनी चाहिए। पर हमारे देश में इन बिंदुओं पर सुखद स्थिति नहीं है। सर्वत्र 'उलटा चोर कोतवाल को डांटे' की स्थिति है। सारे मुद्दों पर विकास नहीं हुआ है। और इसीलिए जनता का भ्रम दूर हो रहा है और उसका धैर्य भी टूट रहा है। वे समझते हैं कि जनतांत्रिक सरकार हमारे लिए कुछ नहीं कर सकी है। जिसे देखिए वही देश से लेना चाहता है लेकिन देश को देना कुछ नहीं चाहता। इसी संघर्ष में सब भाग रहे हैं, सब

चिल्ला रहे हैं तथा सब संस्कारविहीन हो रहे हैं। अभ्युदय अर्थात् सबका उदय नहीं हो पा रहा है। जो तिरस्कृत हैं, पिछड़े हुए हैं, उन सबमें असंतोष है लेकिन जो धनिक वर्ग है, उनमें भी आतंक का भय छाया हुआ है। मध्यम वर्ग की हालत सब जानते हैं।

आर्थिक विपन्नताओं तथा सामाजिक परेशानियों से त्रस्त स्वस्थ आदमी भी अपनी जीविका के लिए आंख बेच रहा है। धनिक वर्ग तथा चिकित्सक वर्ग धोखा देकर गरीबों से स्वस्थ अंग खरीद लेते हैं। समझ में नहीं आता कि इनसानियत किधर जा रही है। कोई आदमी अपना गुर्दा बेच रहा है, कोई अपना दिल दे रहा है। इस माहौल में संतुलन किसी भी क्षेत्र में रह सकता है क्या ? वर्तमान समय में आदमी न तो दीन का है और न ही दुनिया का है। एक संतुलित व्यक्ति में ही मस्तिष्क का संतुलन, दृष्टिकोण की भव्यता तथा अभि-रुचियों की उदारता रहती है।

१९

सामूहिक अंतर्राष्ट्रीय आवाज

उत्तम यातायात के साधनों के कारण, अनूठे वैज्ञानिक अनुसंधानों के कारण मानव ने जीवन के हर क्षेत्र में अभूतपूर्व सफलता पाई है। डॉ० राधाकृष्णन् कहा करते थे कि मानव चांद पर जा चुका है परंतु पृथ्वी पर चलना नहीं सीखा है। तृतीय विश्वयुद्ध के बादल मंडरा रहे हैं। पूरा विश्व सर्वनाश की आशंका से ग्रसित है। फिर भी सामूहिक अंतर्राष्ट्रीय आवाज इसके विरुद्ध इतनी प्रभावशाली बन रही है कि आशा की किरणें निकल रही हैं। अभी तक इतिहास जातियों और देशों के बीच में संघर्ष का इतिहास रहा है। इस इतिहास ने यह बताया है कि कैसे सामाजिक संगठन टूटे और कैसे आपस में लोगों में विभेद हुआ। हम लोगों ने जीवन एक बंटे हुए व्यक्तित्व, नागरिक वर्ग और समुदाय के रूप में जिया। अब प्रश्न यह है कि कैसे हम अपनी बौद्धिकता, आध्यात्मिकता को मिलाएं और मिलकर एक ऐसे संसार का निर्माण करें जिसमें हमें जीवन के उत्तम मूल्यों की प्राप्ति हो सके तथा मानवता का विनाश न होने पाए।

धर्म की प्रवृत्ति से युक्त राष्ट्रवाद से ही विश्व का कल्याण होगा। आज पूर्व-पश्चिम का परंपरागत विभाजन समाप्त हो चुका है। अपने-अपने स्वार्थ-साधन के लिए राजनीतिक तथा सैन्य गुट निर्मित हो रहे हैं। निर्गुट देशों के भी सम्मेलन होते रहते हैं। रूडियार्ड किपलिंग ने अपने कई लेखों में देशों की एकता के बारे में लिखा है। अब जमाना यह नहीं है कि पूर्व और पश्चिम को अलग-अलग माना जाए। परिवर्तन की लहर इतनी तेज है, सब कुछ एक हो गया है। हम लोग चाहे किसी भी देश के वासी हों लेकिन सबसे पहले हम लोग इस धरती के प्राणी हैं। इस धरती की तमाम सांस्कृतिक विरासत भी सबकी अपनी है।

भारतीय महान् प्रतिभाओं में महात्मा गांधी, रवींद्रनाथ टैगोर, अरविंद आदि के नाम गिनाए जा सकते हैं जो कि पश्चिम और पूरब की सभ्यता का मिश्रण थे। विश्व में अभी तक न जाने कितनी राजनीतिक, आर्थिक एवं सामा-

जिक क्रांतियां हुई हैं। लेकिन इन सबने केवल विक्षोभ तथा भयंकर विपदाओं को ही पैदा किया। उस सबके कारण सत्ता एक हाथ से निकलकर दूसरे के पास चली गई। इन क्रांतियों से विश्व में जो अशांति तथा संघर्ष चल रहा है, स्पर्धा बढ़ रही है, उसे रोका नहीं जा सका। लेकिन अब विश्व के लोगों ने महसूस किया है कि एक ऐसी भी क्रांति संभव है जिससे मानव के दिल और दिमाग में परिवर्तन लाया जा सकता है। संयुक्त राष्ट्रसंघ की जो चिंतन-शैली है तथा उसकी जो विभिन्न शाखाएं हैं उन्हीं के माध्यम से मानवता को एक करने का प्रयास चल रहा है। छोटी-मोटी बाधाओं को तोड़कर जीवन को एक बड़े पैमाने पर समझ सकना और सारी दुनिया को एक रूप में देखना होगा। उसी हालत में विश्व की सारी विपदाएं दूर हो सकेंगी।

हजारों मनुष्यों में से एक व्यक्ति जो मानव-धर्म के स्रोतों से अनुप्राणित होता है वह मानवता की भलाई के लिए आवाज उठाता है। धीरे-धीरे सम विचारवाले व्यक्ति एकत्रित होते हैं और ऐसे लोगों के समूह बन जाने पर संयुक्त राष्ट्रसंघ जैसी संस्था का जन्म होता है। वर्तमान समय में व्यक्तिगत आवाज तथा वाणी का उतना मूल्य नहीं है जितना सामूहिक अंतर्राष्ट्रीय आवाज का मूल्य है। बच्चों के अंतर्राष्ट्रीय बाल संगठन, महिलाओं के अंतर्राष्ट्रीय महिला संगठन ने विश्व के कर्णधारों पर जादू का असर किया है। विश्व-भर के बालक-बालिकाओं तथा महिलाओं का परमाणु युद्ध के विरुद्ध नारों ने आश्चर्यजनक परिणाम दिए हैं। अमेरिकन प्रेसिडेंट रीगन तथा गोर्बाचोव को नाभिकीय युद्ध के शस्त्रों को नष्ट करने के लिए बाध्य किया है। वह संधि इस दशक की सबसे बड़ी उपलब्धि है। विश्व में प्रेम, शांति तथा सुखद वातावरण का निर्माण करने में सं० रा० संघ की जो भिन्न-भिन्न शाखाएं हैं उनका सहयोग तथा उनकी भूमिका अतुलनीय है। उन संस्थाओं की संख्या करीब २० के आसपास है। विश्व में मानवता नाम की चीज को पहचाना जा रहा है। सं० रा० संघ का अटलांटिक चार्टर पूरे विश्व की भलाई के लिए है। सं० रा० संघ में दूरदर्शिता है, किसी भी समस्या को सही रूप से विश्लेषण करने की शक्ति है और इसीलिए उसके कार्यकलापों को एक के बाद एक सफलता मिल रही है। विश्व में मानव-नवजागरण और नव-स्फूर्ति की चमक देखी जा सकती है।

आम आदमी को, दुनिया के जनसमुदाय को क्या चाहिए? शांति, सुव्यवस्था तथा रोटी। लेकिन इन तीन बुनियादी आवश्यकताओं को छोड़कर युद्ध, हिंसा और प्रतिदिन मारकाट ही सामान्य हो गई है। पूरी मानवता दुःखी है। लेकिन न केवल हमारे देश में परंतु पूरी दुनिया में हाहाकार मचा हुआ है। हमारा देश विदेशी ऋण से दबा जा रहा है। दस वर्ष पहले हमारा ८,६८४ करोड़ रुपए का विदेशी कर्ज था जो १६८८-८६ तक बढ़ते-बढ़ते २,२४,००० करोड़ रुपए का हो

गया। इसमें से १४,००० करोड़ रुपए तो मात्र ब्याज के रूप में चुकाना होगा। इस आर्थिक संकट को भी अंतर्राष्ट्रीय मानीटरी फंड सुलझाने का प्रयत्न कर रहा है। दुनिया में ईरान, इराक की लड़ाई, पेलेस्टीन, इजराइल की लड़ाई, लिबनान तथा गाजा क्षेत्र में मारकाट, अफगानिस्तान का गोरिल्ला युद्ध, शिया तथा सुन्नी जमातों की लड़ाई, मुसलमान तथा ईसाई देशों में टकराव, अफ्रीका में अश्वेत-श्वेत की लड़ाई—सर्वत्र युद्ध और मारकाट, इन सबसे इंसानियत की कोई भलाई नहीं हो रही है। आम लोगों का सर्वनाश हो रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी अदृश्य शक्ति की प्रेरणा से ये सब हो रहे हैं। तबाही, नर-संहार और आपस में कटुता और विद्वेष ऐसा फैल रहा है मानो इसका कोई अंत ही नहीं है। बड़े-बड़े राष्ट्रों के कर्णधार हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं और एक अजीब लाचारी के शिकार हैं। दुःख तो इस बात का है कि शांति-स्थापना के लिए जो अगुवाई की जाती है उसमें भी स्वार्थवश कुछ देश रोड़े अटका देते हैं। मेरी राय में अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएं ही कुछ ठोस कदम उठा सकती हैं। एक युग था जब गौतम बुद्ध ने करुणा का, जीसस क्राइस्ट ने सेवा का तथा महात्मा गांधी ने अहिंसा का बोलबाला शुरू किया था। मानवता को राहत मिली थी पर अब मानव धर्म के स्रोत ही सूख रहे हैं। अब सचाई, सद्‌गुण, सेवा का स्थान अधम स्वार्थपरता ने ले लिया है। और वही सारे विनाश की जड़ है। इनसान तो खुदगर्ज हो ही गया है, लेकिन देश, बड़े-बड़े राष्ट्र भी सिवाय अपने देश की सोचने के दूसरों की भलाई कतई नहीं सोच रहे हैं।

सन् १९१८ में स्थापित लीग ऑफ नेशंस ने अपने २७ वर्ष की अवधि समाप्त कर सन् १९४५ में अपने रूप को बदल दिया। संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना १९४५ में हुई। उसकी भिन्न-भिन्न २० शाखाएं सारे विश्व में कार्यरत हैं। अपने ४३ वर्षों के अस्तित्व में इस संस्था ने सशस्त्र संघर्ष को रोकने के लिए जो शांति-प्रयास किए हैं उसके ठोस परिणाम अब दृष्टिगोचर हो रहे हैं। सं० रा० संघ में विश्व के १५५ देश सदस्य के रूप में सम्मिलित हैं। यह संस्था अपने-आप में शक्तिशाली है तथा मानवीय अधिकारों व प्रत्येक देश की समस्याओं की सुरक्षा के लिए सदैव तत्पर रहती है। निजी स्वार्थ के टकराव के कारण जो पांच महान् शक्तियां हैं—रूस, अमेरिका, चीन, फ्रांस तथा ग्रेट ब्रिटेन—कभी-कभी वीटो का प्रयोग कर महत्त्वपूर्ण से महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव को अमान्य कर देती हैं। लेकिन अब इस व्यवधान को दूर करने की बात सोची जा रही है।

सन् १९६८ में विश्व के सारे लोग अंतर्राष्ट्रीय कल्याण की भावना से जाग उठे थे। उन दिनों अमेरिका द्वारा वियतनाम का युद्ध, फ्रांस में मई, १९६८ की जन जागृति, प्रेग स्प्रिंग—इन तीनों अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं में विश्व के सभी लोगों ने दिलचस्पी दिखाई तथा अपने-अपने तरीके से इन उलझनों का समाधान

ढूंढ़ना चाहा। सबने विश्व-एकत्व की भावना को अपनाना चाहा। सब लोग आशावादी हो गए थे; लेकिन आज १९६८ की आशावादिता कुछ कम हो रही है। निराशा ने उसका स्थान ले लिया है। आज सब यही महसूस करते हैं कि प्रयास करने का कोई अर्थ नहीं है। लेकिन बीच-बीच में संयुक्त राष्ट्रसंघ के ऐसे प्रयास हो जाते हैं कि सब लोग पुनः आशावान हो उठते हैं। अफगानिस्तान, पश्चिम एशिया और दक्षिणी-पश्चिमी अमेरिका में लगातार तीसरी बार शांति स्थापना के प्रयासों की सफलता अपने-आप में उल्लेखनीय है। अफगानिस्तान में पिछले आठ साल से जमी सोवियत सेनाओं की क्रमबद्ध वापसी जिनेवा वार्ता की एक सफल कहानी है। इससे पूरे विश्व में तनाव कम हुआ है। कम-से-कम आधा दर्जन बार संयुक्त राष्ट्र महासचिव के दूत ने सहमति वार्ता के दौर चलाए और सफलता मिली।

२० अगस्त, सन् १९८८ को पहली बार ईरान-इराक युद्ध में तोपों का गर्जन बंद हुआ। इस युद्ध से अंतहीन पीड़ा, दुःख, आर्थिक जो नुकसान हुए उसका कहना ही क्या है। एक लाख से अधिक लोग मारे गए। पश्चिम एशिया की यह सबसे भयंकर और खून-खराबेवाली लड़ाई थी। भूमि पर, समुद्र में और हवा में लड़ाई बंद करने के संयुक्त राष्ट्रसंघ के सुझाव को दोनों देशों ने मान लिया है।

इसी तरह से विश्व के अन्य स्थानों में जो युद्ध की चिनगारियां निकलती रहती हैं उन्हें यह संस्था बुझाती है। दिसंबर, १९८७ में जो अमेरिकी राष्ट्रपति रोनेल्ड रीगन तथा सोवियत संघ के नेता श्री गोर्बाचोव के बीच संधि हुई है वह ऐतिहासिक है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के इतिहास में वर्ष १९८८ ने अपना विशेष स्थान बना लिया है। मिखाइल गोर्बाचोव के साथ रीगन की जो संधि हुई है वह एक महान् उपलब्धि है। इसके तहत दोनों देश ५,६०० किलोमीटर से अधिक दूरी तक मार करनेवाले अंतर महाद्वीपीय प्रेक्षापास्त्रों में ५० प्रतिशत की कटौती करेंगे। मोटे तौर पर यह सहमति है कि दोनों पक्षों के पास ६,००० से अधिक नाभिकीय अस्त्र और १,०६,००० से अधिक इन्हें ले जानेवाले वाहन नहीं रहेंगे। इस शताब्दी के अंत तक समस्त नाभिकीय अस्त्रों का उन्मूलन हो सकता है।

गोर्बाचोव ने १९९९ के अंत तक पृथ्वी को नाभिकीय अस्त्रों के आतंक से मुक्त करने की एक बृहद रूपरेखा बनाई है। तीन चरणों में इस लक्ष्य को प्राप्त करना है। समय के तकाजे ने सोवियत प्रस्ताव की सार्थकता को रेखांकित किया है। दोनों शक्तियां मान गई हैं कि नाभिकीय श्रेष्ठता प्राप्त करने का प्रयास किसी को नहीं करना चाहिए। अमेरिका की आशंका है कि गारंटीशुदा निगरानी के अभाव में धोखाधड़ी की गुंजाइश रहेगी। दोनों देशों के विशेषज्ञों को एक-दूसरे के स्थलों पर जाने का अधिकार दे दिया गया है। अब किसी की आंख में कोई दूसरा धूल नहीं झोंक सकता। इस सबके बावजूद विश्व के कुछ राजनीतिज्ञ इस

संधि की सफलता के बारे में आशान्वित नहीं हैं। 'वारसा', 'नाटो' तथा अन्य युद्ध-संधियों से जुड़े राष्ट्र विरोध की आवाज उठाने लगे हैं, जो दुखद है, अगले दस वर्षों में किस रास्ते पर चलना मुनासिब होगा, यह मानवता को तय करना है। मानव अस्तित्व की रक्षा का सहज बोध यही आवाज देता है कि इस शताब्दी के अंत तक नाभिकीय खतरे को समूल दूर किया जाए। अंतरिक्ष युद्ध योजना में न तो किसी का भला है और न इससे अमेरिकी दावे के अनुसार सुरक्षा ही बढ़ेगी। लोग ऐसे विश्व में रहना चाहते हैं जहां नाभिकीय महाविनाश का आतंक न हो। दोनों देश संयुक्त अभियान के तहत मिलें तथा इस आतंक को जड़ से समाप्त करें। मुनाफे की ताकतों पर पलनेवाली ताकतों की ओर से समस्या पैदा होती है। वे हथियारों की होड़ के लिए चिंतित रहते हैं। दिसंबर, १९८७ की शिखर बैठक के बाद इन ताकतों ने कहना शुरू किया कि फलां-फलां शर्तें नहीं मानी गई हैं, इसलिए संधि की पुष्टि नहीं होनी चाहिए। पर २८ व २९ मई, १९८८ की संधि ने ये सब शंकाएं दूर कर दी हैं। इस संधि की आवाज दिन-ब-दिन बुलंद हो रही है। इच्छा-शक्ति होने पर बड़ी-से बड़ी समस्या हल की जा सकती है, अविश्वास की मोटी-से-मोटी दीवार भेदी जा सकती है। रासायनिक अस्त्रों को प्रतिबंधित करने और परंपरागत सैन्य बलों में व्यापक कटौती के मामले में भी प्रगति मुश्किल नहीं है। मुनाफे की ताकतों पर जानेवाले देश अब अधिक शोर नहीं मचा सकते। अंतर्राष्ट्रीय तीव्र आवाज के सामने उनकी आवाज फीकी पड़ जाएगी। तर्कहीन आवाज वजनहीन होती है। स्वार्थ से प्रेरित आवाज मिमियाती है तथा उसमें नैतिक शक्ति नहीं रहती।

सारी मानव-जाति के कुछ ऐसे भी मूल्य हैं जो हम सबको एकजुट करते हैं। ये हैं मातृत्व का सुख, घर-परिवार और अपने प्रियजन की हित-चिंता। हम सब अपनी इस अभिलाषा की दृष्टि से भी एक हैं। किंतु हम एक निरापद संसार में जीना और काम करना चाहते हैं। ऐसे संसार में जिसमें युद्ध की विभीषिका का कोई खतरा न हो। आज के हमारे तूफानी अशांत युग में बड़ी-बड़ी आशाओं और बड़ी-बड़ी चिंताओं के युग में इन मूल्यों का महत्त्व अतुलनीय हो गया है। आज अलग-अलग लोग या जनगण ही नहीं, पूरी मानव जाति ही हेमलेट की द्विविधा 'जिंदगी या मौत' में पड़ी हुई है। इस चयन की पीड़ा को अपने हृदय से हम जितनी तीव्रता से अनुभव करेंगे उतनी ही प्रखरता से हम रचनात्मक कार्यों की ओर अधिक ध्यान देंगे। मानव-कल्याण की भावनाओं पर जोर दिया जाएगा। अर्थ-व्यवस्था में बुनियादी परिवर्तन, हमारे जीवन का निरंतर बढ़ता जनवादीकरण तथा बच्चों की शिक्षा और लालन-पालन के काम में आमूल सुधार ये सब सामूहिक अंतर्राष्ट्रीय आवाज को बुलंद करने से ही संभव है। हमारे हृदय में सदा जीवन का हर्ष और आशा का प्रकाश बना रहे। हमें अपनी संतानों के प्रति

प्रेम तथा पारस्परिक समझ की भावना को उच्च स्थान देना पड़ेगा। समान विचारवाले लोगों का कर्मीवृन्द बनाने में हम सफल हो जाएंगे। राष्ट्र-निर्माण की दिशा में हर देश प्रयास कर रहा है। लेकिन उन्हें मानवता के नाम पर एकजुट होकर अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं को सहयोग देना होगा। खतरे का सामना होने पर मनुष्य अपनी सारी शक्ति बटोरता है। आज मानव जाति यह समझ गई है कि एकता में ही उसे शक्ति मिलेगी जिससे वह नाभिकीय युद्ध के दावानल में भस्म होने से बचा सकती है। भयंकर रोगों पर विजय पा सकती है तथा भावी पीढ़ियों के लिए धरती, वायु और जल को साफ बनाए रख सकती है। इसीलिए आज भिन्न-भिन्न अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएं एकजुट होकर मानव-कल्याण के लिए समर्पित हैं। आज संसार के सैकड़ों महिला संगठनों के परस्पर संबंधों में हम ऐसे विवेक-संगत सहयोग की चेष्टा को ही प्रमुख पाते हैं जो गौण बातों में स्वाभाविक मत-भेदों पर पर्दा नहीं डालता परंतु विश्वव्यापी समस्याओं के हल में विजय की संभावना देता है। यही परस्पर समझ और विश्वास का सबसे सही और छोटा रास्ता है। टकरावों में फंसने के बजाय महिला आंदोलन में भी अब इन चार या उन समस्याओं के हल के प्रति परस्पर स्वीकार्य रुख तथा विभिन्न सामाजिक समूहों के साझे हित ढूंढ़ने की अभिलाषा पाई जाती है।

१९८८ के साल के अंत तक अंतर्राष्ट्रीय महिला आंदोलन के संयोजकों ने दूसरे देशों के संगठनों के साथ मिलकर कई द्विपक्षीय और बहुपक्षीय संगोष्ठियां एवं सम्मेलन करने की योजना बनाई। इनमें विचार-विमर्श के जो विषय थे। उनमें सारी दुनिया की नारियों की दिलचस्पी है। इनमें प्रमुखता ऐसे विषयों को दी गई जैसे शांति की रक्षा, समाज में स्त्री की स्थिति, बच्चों का लालन-पालन, कामकाजी कैरियर और व्यावसायिक उन्नति के लिए अनुकूल परिस्थितियां तथा ऐसे अन्य अनेक प्रश्न। विचारों के खुले आदान-प्रदान, गरमागरम बहसों और रचनात्मक वार्तालापों के मंच बने। सच कहा जाता है कि बहसों में ही सचाई जन्म लेती है। ऐसी परिस्थितियों में परस्पर समझ, आदर और विश्वास की भावना पनपती है।

सं० रा० संघ के अटलांटिक चार्टर में हर पहलू से पूर्णता होते हुए भी उसमें कई खामियां रह गई हैं। उन्हीं छिद्रों का उपयोग करके भिन्न-भिन्न देश युद्ध की स्थिति उत्पन्न कर देते हैं। जैसे आर्टिकल २, पैरा १, आर्टिकल ५१, ४२ एवं २७ में जो त्रुटियां रह गई हैं उनका निराकरण आवश्यक है। मैं उन सबकी चर्चा न करके केवल इतना कहूंगा कि अंतर्राष्ट्रीय परिवार में जो फूट, संदेह व अविश्वास की कमी दृष्टिगोचर होती है, वे सब दूर किए जा सकते हैं। जिस तरह से मनुष्य को आत्मरक्षा का पूर्ण अधिकार है वैसे ही हर राष्ट्र को अपनी रक्षा का अधिकार है। लेकिन जो देश उपद्रव करना चाहता है वह इस तत्त्व की

आड़ में गलत स्थिति पैदा कर देता है। आर्टिकल २७ जिसमें वीटो का समावेश किया गया है, उसका भी दुरुपयोग किया जाता है। वर्तमान समय में पूंजीवादी अमेरिका तथा साम्यवादी रूस एक-दूसरे के प्रति सहिष्णुता नहीं दिखाते। इसके पीछे वर्चस्व की भावना काम करती है और इसीलिए इतनी गहन खतरनाक सैन्य शक्ति बढ़ाई जाती है। इस बीमारी का एकमात्र इलाज है सकारात्मक, रचनात्मक एवं एक-दूसरे की समस्याओं को समझना तथा आत्मसात् करना। जिसमें देने की भावना अधिक हो बजाय लेने के तथा यह भावना सचाई पर आधारित हो। राष्ट्रों की मनोवृत्ति रातोंरात नहीं बदली जा सकती। परंतु समस्या को देखने का नजरिया जरूर बदला जा सकता है। 'आत्मवत् सर्व-भूतेषु' की भावना को जाग्रत् किया जा सकता है। मानव ने सभी क्षेत्रों में चमत्कारिक अभूतपूर्व प्रगति कर ली है लेकिन आपस में एक-दूसरे को शंका तथा संदेह की निगाह से देखते हैं। इसी कारण इतनी प्रगति हो जाने पर भी हर एक व्यक्ति डरा हुआ है। न जाने कब क्या हो जाए ? बड़े-से-बड़ा शक्तिशाली देश चौकन्ना रहता है। उसे डर है कि कोई दूसरा देश उसपर धावा न बोल दे।

कहा जाता है कि न्यूयार्क में एक सौ हवाई जहाज २४ घंटे आकाश में मंडराते रहते हैं। इस मद पर प्रतिदिन कितनी रकम खर्च होती होगी, इसका अंदाज लगाया जा सकता है। मानवीय शक्ति का कितना अपव्यय होता होगा यह कहना मुश्किल है। यह सब केवल डर तथा देश की सुरक्षा के नाम पर किया जाता है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के अटलांटिक चार्टर के तहत धर्म शब्द का उपयोग कहीं नहीं किया गया है। यह निश्चित है कि उसकी जो विभिन्न अठारह अंतर्राष्ट्रीय शाखाएं हैं वे सब केवल मानवता की सेवा के लिए कार्यरत हैं। इनसानियत के तकाजे को सार्थक कर रही हैं। मानवता को तृतीय विश्वयुद्ध की विभीषिका से बचाने के लिए ही करुणा, अहिंसा, भाईचारा, विवेक एवं सेवा की अनुभूति से अनुप्राणित होकर दो महाशक्तियों ने १९८८ में नाभिकीय शस्त्रों के विनाश के लिए आई-एन-एफ-(ट्रीटी) संधि की है।

राजनीतिक क्षेत्र में 'मेरा देश सही या गलत' का जो सिद्धांत मानते हैं वह विवेकपूर्ण नहीं है। देशभक्ति का अर्थ संकीर्णता नहीं होना चाहिए। संकीर्ण देशभक्ति के कारण मनुष्य अपना विवेक खो बैठता है। कूपमंडूक हो जाता है। लेकिन अब धीरे-धीरे अमेरिका और सोवियत संघ दोनों देशों ने अपना रुख बदला है। दोनों देशों में मानवता का सार्वभौमिक रूप देखा जा रहा है। विभिन्न धर्मों तथा अन्य देशों के लोगों का हाथ खोलकर स्वागत अमेरिका के लोग करते हैं तथा सबको अपना लेते हैं। आज से कुछ दशक पूर्व ग्रेट ब्रिटेन में भी यही तरीका था। लेकिन अब उनकी नीति बदल रही है। जाति, धर्म, रंग, भौगोलिक सीमा के अंतर को नजरअंदाज कर केवल गुण पर ध्यान करना तथा उसका

सम्मान करना होगा। उसी हालत में मानवता आगे बढ़ेगी। इसी दिशा में सं० रा० संघ अपनी भूमिका काफी हद तक निभा रहा है और विश्व के लिए महान् कल्याणकारी कार्य कर रहा है।

गुटनिरपेक्ष आंदोलन के माध्यम से संयुक्त राष्ट्रसंघ की आवाज को और अधिक बल मिला है। गुटनिरपेक्ष आंदोलन विश्व के नागरिकों के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। एक सौ एक राष्ट्रों की सदस्यतावाले गुटनिरपेक्ष आंदोलन के सामने इस समय दो प्रमुख समस्याएं हैं—पहली यह कि नए अंतर्राष्ट्रीय वातावरण में जब पूंजीवादी तथा समाजवादी खेमों के बीच तनाव घट रहा है और आपस में लड़ने वाले देश समझौतों की तलाश कर रहे हैं तब इस आंदोलन की क्या भूमिका होनी चाहिए। यदि इस आंदोलन को प्रभावशाली बनाना है तो राजनीतिक मध्यस्थता की भूमिका, आर्थिक विकास, परस्पर व्यापार तथा तकनीकी सहयोग जैसे मुद्दों पर ये अगुवाई कर सकते हैं। संयुक्त राष्ट्र महासचिव जेवियर पेरेज द कुइयार के प्रतिभाशाली व्यक्तित्व ने इस दिशा में काफी कार्य किया है। दूसरी समस्या यह है कि अगला गुटनिरपेक्ष सम्मेलन कहां रखा जाए। अर्थात् अगले तीन वर्षों के लिए इस गुट का नेता कौन बने ?

फिलिस्तीनी मुक्ति संगठन के राजनीतिक विभाग के प्रमुख फारुख खादौती ने इसराइल अधिकृत क्षेत्रों की मौजूदा स्थिति के बारे में एक विस्तृत रिपोर्ट दे दी है। इस बीच फिलिस्तीन राष्ट्रीय परिषद् की बैठक ट्यूनीशिया में हुई। फिलिस्तीन मुक्ति मोर्चा तथा उसके नेता यासर अराफात का वर्षों का संघर्ष सफल हो गया है। फिलिस्तीनी जनता को उसका राष्ट्र मिल गया। इस नए राष्ट्र को भारत तथा कई देशों ने मान्यता दे दी है। उसे और सुदृढ़ बनाने के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ में भी प्रयत्न करेगा। गुटनिरपेक्ष आंदोलन के नेताओं ने अंतर्राष्ट्रीय समुदाय का आह्वान किया है कि दक्षिण अफ्रीका के आतंकवादी कदमों के विरुद्ध ठोस उपाय किए जाएं। अंगोला और दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका, जिसे नामीबिया कहते हैं, के बीच चला आ रहा संघर्ष रोकने के लिए युद्धविराम के लिए सहमत हो जाना एक शुभ लक्षण है। एक ओर जहां इस प्रकार के शांति प्रयासों में संयुक्त राष्ट्रसंघ लगा हुआ है, वहीं दूसरी तरफ अमेरिकी प्रशासन ने ऐसे मौके पर विश्व संस्था को दिया जानेवाला १९८७ का योगदान, जो करीब ४४० लाख डालर होता है, रोक लेने का फैसला किया था। लेकिन यह हर्ष की बात है कि अंततः रीगन प्रशासन ने अपना योगदान उस संस्था को दे दिया। रीगन प्रशासन ने संयुक्त राष्ट्रसंघ की उपलब्धियों से संतुष्ट होकर आठ करोड़ डालर उस समय स्वीकृत कर दिया। केवल ६ करोड़ डालर को कुछ कारणों से रोक दिया। साथ ही १९८९ के लिए १४ करोड़ डालर की स्वीकृति भी दे दी।

संयुक्त राष्ट्रसंघ का एक बड़ा संकट यह है कि न केवल इनके शत्रुओं ने

इनके काम करने का समय नहीं दिया, इसकी उपयोगिता पर शक किया गया। इसे कुछ कर दिखाने का मौका यदि दिया जाए तो यह सचमुच मानव-जगत् की भलाई करने में सफल होगा। इसके जो घोर समर्थक हैं वे भी अपना धैर्य खो बैठते हैं।

मेरी यह मान्यता है कि इस सामूहिक अंतर्राष्ट्रीय आवाज को दिन-प्रतिदिन बुलंद किया जाए ताकि विश्व का भला हो सके।

अमेरिका के पूर्व विदेशमंत्री हेनरी किसिंजर ने कहा है कि भविष्य में अगले दशक में भारत का अमेरिका की तरह रुतबा बढ़ जाएगा। भारत की अंतर्राष्ट्रीय भूमिका बढ़ती जाएगी। सुरक्षा संबंधी मामलों में भारत का महत्त्व वढ़ जाएगा। आनेवाले वर्षों में भारत, चीन, जापान, मेक्सिको, ब्राजील तथा अर्जेंटाइना इतने महत्त्वपूर्ण देश बन जाएंगे कि उन्हें नई अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था के प्रयासों में शामिल करना ही पड़ेगा। भारत एक उभरता हुआ प्रगतिशील देश है। यदि हम लोगों ने अपने देश की आवाज और वाणी को ओजस्वी बना लिया तथा अपनी कथनी और करनी में सामंजस्य स्थापित कर लिया तो निश्चय ही हमारा भविष्य उज्ज्वल है।

हमें केवल यह देखना है कि राजनीति के कुटिल जाल में फंसकर भिन्न-भिन्न देश इस मानवता की भावना को न भूल जाएं। राष्ट्रों के बीच परस्पर स्नेह और मैत्री का आह्वान फीका न पड़े। इसलिए जरूरी है कि सभी राष्ट्र इस संस्था को सचाई के साथ पूरा-पूरा सहयोग देते रहें।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमेरिका व सोवियत संघ महाशक्तियों के रूप में उभरे। एक पूंजीवादी, दूसरा साम्यवादी। इन दो खेमों में शीतयुद्ध की भी स्थिति बनी रहती है। शीतयुद्ध एक ऐसी स्थिति है कि जिस महायुद्ध की लपटें कभी भी पैदा हो सकती हैं, मगर संयुक्त राष्ट्रसंघ ने स्वेज, कांगो, कोरिया, क्यूबा, बर्लिन, लेबनान, वियतनाम आदि संकटों को युद्ध में परिणत होने से रोका और मानव-समाज को भीषण तबाही से बचा लिया। रंग-भेद और जाति-भेद मिटाने में इस संस्था की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। एशिया, अफ्रीका और लातीनी अमेरिका के गुलाम देशों को विदेशी औपनिवेशिक शासन से मुक्त कराने में भी उनका जबरदस्त सहयोग रहा। संयुक्त राष्ट्रसंघ पहले राजनीतिक कार्यों पर अधिक जोर देता था किंतु अब उसकी ८० प्रतिशत गतिविधियां सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी से संबंधित हैं।

अब दो महाशक्तियों में शीतयुद्ध करीब-करीब नहीं के बराबर है। अब तो विकसित और विकासशील देशों के बीच संघर्ष की स्थिति आ गई है। अंकटाड व समुद्री कानून सम्मेलन इसके प्रमुख उदाहरण हैं। लेकिन सबको विश्वास है कि समस्याएं सुलझ जाएंगी।

सं०रा० महासचिव पेरेज द कुइयान ने कहा है कि विश्व की सुरक्षा के लिए खतरा बढ़ा है। हथियारों की जारी होड़, क्षेत्रीय विवादों और मानव-अधिकार-उल्लंघन की घटनाओं के कारण ही यह सब हो रहा है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में सुधार, दुनिया के अनेक भागों में गरीबी उन्मूलन के लिए व्यापक कार्यक्रमों एवं ठोस नीतियों की आवश्यकता है। कोई भी युद्ध ऐसा नहीं होता जो स्थायी विजय दिलाए। सार्वभौम मानव-अधिकार की रक्षा सबको करनी पड़ेगी। संयुक्त राष्ट्र-संघ को मजबूत बनाना अत्यधिक जरूरी है। इसके लिए कई सुझाव दिए गए हैं जिनमें सदस्यता प्रावधान, वीटो अधिकार, स्वतंत्र वित्त-व्यवस्था तथा उसके छः भागों में संगठनात्मक परिवर्तन अर्थात् सुधार आवश्यक है। अभी कई ऐसे मसले हैं जिन पर ठोस कार्यवाही नहीं हो सकी है। पर यदि दो महाशक्तियों के बीच तनाव कम होता रहा तो सारी समस्याएं सुलझ जाएंगी।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के निम्नलिखित उद्देश्य हैं—

(१) अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा एवं शांति बनाए रखना, (२) राष्ट्रों के बीच उनके समान अधिकार और आत्मनिर्णय के आधार पर मैत्रीपूर्ण संबंधों का विकास करना, (३) आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और मानव हितवादी अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाना, मानवीय अधिकारों तथा सबके लिए मौलिक स्वाधीनता के प्रति समान भावना तथा सहयोग प्राप्त करना, (४) समान उद्देश्यों की सिद्धि के लिए राज्य द्वारा किए जानेवाले कार्यों को सामंजस्य का केन्द्र बनाना।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के तहत 'यूनाइटेड नेशंस सिस्टम्स' एक ऐसी पद्धति है जिसकी कई शाखाएं मानव-कल्याण के लिए कार्य कर रही हैं। ये विश्वव्यापी कार्यक्रम मानव-जीवन के हर क्षेत्र में चल रहे हैं। जैसे—(१) विश्व स्वास्थ्य संगठन, (२) खाद्य और कृषि संगठन (एफ०ए०ओ०), (३) अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आई० एल० ओ०), (४) शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति संबंधी संगठन, (५) पुनर्निर्माण और विकास के लिए अंतर्राष्ट्रीय बैंक, विश्व बैंक, भारत सहायता क्लब, (६) अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, (७) अंतर्राष्ट्रीय वित्त निगम, (८) अंतर-राष्ट्रीय दूरसंचार संघ, (९) अंतर्राष्ट्रीय दूरसंचार उड्डयन संगठन, (१०) विश्व अंतरिक्ष विज्ञान संघ, (११) अंतर्राष्ट्रीय बाल संकट कोष, (१२) समुद्र परामर्श संगठन, (१३) अणुशक्ति अभीकरण, (१४) विश्व डाक संघ, (१५) शरणार्थी उच्चायुक्त संगठन आदि।

विश्व स्वास्थ्य संगठन

आज से कुछ वर्ष पूर्व डॉक्टर कोटनिस तथा उनके साथियों ने चीन के स्वतंत्रता अभियान के समय वहां जो मानवीय सेवा की थी, वह आज भी याद की जाती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने पूरी दुनिया से बड़ी माता जैसा भयंकर

बीमारी को जड़ से नष्ट कर दिया है। अब एक नई बीमारी एड्स (ए०आई०डी० एस०) निकली है। यह छूत से लगा व्याधि समूह है जो रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति कम कर देता है। शारीरिक सुरक्षा प्रणाली इस बीमारी से क्षतिग्रस्त हो जाती है तथा इस बीमारी का शिकार व्यक्ति चंद दिनों में ही चल बसता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के आंकड़ों के मुताबिक इसके ९४,००० रोगी हैं। कहा जाता है कि इससे दोगुने रोगी एड्स की चपेट में हैं। करीब एक करोड़ लोगों में इसके विषाणु पल रहे हैं। इसीलिए अब अंतर्राष्ट्रीय जगत् में एकजुट होकर एड्स का इलाज ढूंढ़ने का आह्वान किया गया है।

स्टॉकहोम में जून, १९८८ में एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में दुनिया-भर के चिकित्सक, वैज्ञानिक इकट्ठे हुए। अन्य देशों के ७,००० प्रतिनिधि एक मंच पर जुटे। समाज के सभी प्रमुख वर्गों के विशेषज्ञ भी थे। इनमें गणितज्ञ, सांख्यिकीयविद्, अर्थशास्त्री, पत्रकार, समाजशास्त्री, प्राणिविज्ञान विशेषज्ञ, अपराध विज्ञानी, मनोवैज्ञानिक, न्यायविद् और इतिहासकार भी शामिल थे। सबका एक ही स्वर था कि इस भयंकर बीमारी को कैसे रोका जाए ? इसका निराकरण कैसे किया जाए, इसे कैसे तोड़ा जाए ? अब तक एड्स का प्रमुख कारण समलैंगिक संबंध बताया गया है। संभवत: इसीलिए सम्मेलन में समलैंगिक आजादी और नारियों के अधिकार के पेशेकार तथा वेश्याओं के प्रतिनिधि भी थे। यह सम्मेलन समाज-सेवा-संगठनों तथा स्वीडन के चिकित्सा विभाग एवं विश्व स्वास्थ्य संगठन के मिले-जुले प्रयास से संभव हुआ। सबने कहा कि इस बीमारी पर रोक कैसे लगाई जाए। एड्स की रोकथाम के उपायों, उसके बचाव की प्रवृत्ति और व्यवहार पर अर्थपूर्ण, सार्थक बहस हुई। सबने कहा कि बीमारी के कारणों और खतरों के खिलाफ जनता को जागरूक और शिक्षित करके ही इसकी असरदार रोकथाम की जा सकती है।

स्वीडन के श्री जार्ज क्लेन ने इस उपाय पर ज्यादा जोर देने को अर्थहीन बताया। उन्होंने बताया कि जनशिक्षण के माध्यम सीमित हैं। उन्होंने उदाहरण दिया कि धूम्रपान के खिलाफ पिछले बीस साल से जनशिक्षण तथा जनजागरण अभियान चलाया जा रहा है लेकिन नतीजा नहीं के बराबर है। उन्होंने कहा कि आणविक जीव-विज्ञान ही इसका इलाज ढूंढ़ने में सफल हो सकती है। विश्व के १३६ देश इस बीमारी से पीड़ित हैं।

नशीले पदार्थों की खपत बढ़ने के कारण एड्स के फैलने का खतरा भी तेजी से बढ़ रहा है। अमेरिका तथा अन्य देशों में कोकीन के नशेड़ियों तथा अफीमचियों के बीच यह रोग शीघ्रता से बढ़ता जा रहा है। पूरे विश्व के लिए उत्तम स्तर की दवाइयां, गोलियां, सुइयां बनाई जा रही हैं ताकि मरीजों को सही दवाई भयंकर बीमारियों के लिए मिल सके। उन दवाइयों की सूची बनाकर पूरे विश्व में वित-

व मनन करे। उसी हालत में वह 'वाणी' के महत्त्व और प्रभाव को समझ पाएगा।

सत्य और संयम—ये दो बातें मनुष्य जीवन की प्रतिष्ठा के लिए अत्यंत आवश्यक हैं। संयम केवल विषय-वासना के बारे में ही नहीं अपितु संयम वाणी का भी होना चाहिए। सब तरह के जीवन व्यवहार में संयम के बिना सर्वांगीण विकास हो ही नहीं सकता। असंयमित वाणी या कठोर वचन से जो घाव पैदा होते हैं वे जीवन-भर नहीं भरते। साधारण घाव तो समय बीतने पर ठीक हो भी जाता है। महायान बौद्ध संप्रदाय में एक वचन है—"अपने चित्त को काबू में रखने के एक व्रत को छोड़कर दूसरे अनेक व्रतों से मेरा क्या मतलब ?" अर्थात् चित्त को काबू में रखने का एक ही व्रत मनुष्य के लिए काफी है। इसमें गफलत हुई तो अन्य व्रत कोई मदद नहीं करते।

किस अवसर पर बोलना, किस अवसर पर कम बोलना और किस अवसर पर न बोलना; यह सीख लेना बहुत बड़ी शिक्षा है। जहां बोलना आवश्यक है वहां तो चुप हो गए और जहां नहीं बोलना है वहां बोल गए। इसका असर उल्टा हो जाता है। कई बार देखा गया है कि बोलने के बजाय न बोलना अधिक श्रेयस्कर होता है। वह अधिक प्रभावशाली भी होता है। कई लोग चुप रहते हैं पर ऐसा आभास होता है कि वे बोल रहे हैं। ऐसे आदमियों की आत्मिक शक्ति प्रबल होती है। संकट के क्षणों में या महत्त्वपूर्ण क्षणों में हाजिरजवाबी तथा प्रत्युत्पन्न बुद्धि एक अस्त्र का काम करती है। शब्दों के प्रयोग में हमें विशेष ध्यान रखना चाहिए। यदि हम स्वयं सभ्य और शिष्ट श्रेणी के हैं तो हमारा व्यवहार, हमारे शब्द स्वयं ही हमारी श्रेणी अभिव्यक्त करेंगे।

वाणी और आवाज पर ही विश्व टिका है। शब्दों में परमाणु बम से भी अधिक शक्ति होती है। बिना सोचे, बिना विचारे, बिना समय और स्थान का विचार किए जो बोलते हैं वे आफत में पड़ जाते हैं। जो वाणी निकल गई वह फिर लौटती नहीं। इस तथ्य को बहुत कम लोग स्मरण रखते हैं। सच बोलने, सच कहने और सच लिखने से सत्य की प्रतिष्ठा बढ़ती है। प्रेमपूर्वक बोलना ही अतिथि-सत्कार है। जहां कहने से कुछ लाभ हो वहीं बोलो। कटु बोलनेवाले को मित्र न बनाएं। वेद-वाणियों द्वारा अज्ञान को पार करें। डरपोक प्राणियों में सत्य भी गूंगा हो जाता है। यदि वाणी के अग्र भाग में मिठास हो, तो जीवन मधुर हो जाता है। मुंह में राम, बगल में छुरी मत रखो। हे भगवान्—वाणियों के पालक, आप हमारी वाणी को मधुर बनाएं, यही संकल्प होना चाहिए।

४

भौतिक शास्त्र में ध्वनि

यदि तालाब के शांत और स्थिर जल में पत्थर गिरा दिया जाए तो पत्थर गिरने के स्थान पर तालाब के किनारे तक वृत्ताकार लहरें उठती हुई प्रतीत होती हैं—इन्हें तरंग कहते हैं। इसी प्रकार एक रस्सी लेकर उसका एक सिरा बांधकर दूसरे सिरे को ऊपर-नीचे हिलाने में रस्सी में तरंगें उत्पन्न होती हैं। यदि हम पानी में उत्पन्न तरंगों पर कागज की नाव रख दें तो परिलक्षित होता है कि नाव अपनी जगह पर स्थिर है, केवल वह तरंग के साथ ऊपर-नीचे उठ रही है। हम जानते हैं कि जब कंपन पैदा होता है तो ध्वनि उत्पन्न होती है। जैसे स्कूल की घंटी की ध्वनि का उत्पन्न होना, या फिर रेलवे स्टेशन के घंटे की ध्वनि। इन स्थानों पर होता यह है कि जब घंटी को पीटा जाता है तो उसमें कंपन पैदा होता है। ये कंपन वायु के माध्यम से हमारे कान तक पहुंचते हैं तथा वहां संवेदन उत्पन्न करते हैं जिसमे ध्वनि सुनाई देती है। ये तरंगें उसी प्रकार की होती हैं जैसी पानी में पत्थर फेंकने पर उठती हैं। अत: ध्वनि के लिए आवश्यक माध्यम स्वयं गतिशील नहीं होता।

सभी आवृत्ति (फ्रीक्वेंसी) वालें कंपन मानव नहीं सुन सकता। जब कंपन की आवृत्ति एक निश्चित परास में हो तभी ध्वनि सुनाई देती है। इस परास को 'श्रव्यता परास' (आडिबलरेंज) कहते हैं। यदि उत्पन्न कंपन की आवृत्ति २० हट्र्ज़-से कम हो तो उसे मानव नहीं सुन सकता है। उसी प्रकार यदि आवृत्ति २०,००० हट्र्ज़ से अधिक है तो भी उस ध्वनि को नहीं सुना जा सकता है। अतएव मनुष्य के लिए श्रव्यता परास २० हट्र्ज़ की आवृत्ति से २०,००० हट्र्ज़ की आवृत्ति तक होती है। यदि उत्पन्न हुए कंपन की आवृत्ति २० हट्र्ज़ से कम है तो उसे अवश्रव्य कंपन (इंप्रासॉनिक) कहते हैं। इसी प्रकार २०,००० हट्र्ज़ से अधिक आवृत्ति के कंपन पराश्रव्य कंपन (अल्ट्रासॉनिक) कहलाते हैं। शोर प्रदूषण के अध्याय में इन तथ्यों की विस्तृत चर्चा की गई है।

प्रकाश-किरणों के परावर्तन के संबंध में हम जानते हैं कि जब ये किरणें किसी चमकदार तथा चिकनी सतह पर टकराती हैं तो जिस माध्यम से आती हैं उसी में पुनः लौट जाती हैं। इसी प्रकार तरंगों में भी परावर्तन होता है। यदि हम एक गहरे कुएं के मुंह पर ध्वनि उत्पन्न करें तो कुछ समय पश्चात् वही ध्वनि हमें पुनः सुनाई पड़ती है। इसे प्रतिध्वनि कहते हैं। इसी प्रकार पहाड़ के सम्मुख या बड़े कमरे की दीवार के सम्मुख कुछ शब्द जोर से बोले जाएं तो वे ही शब्द पुनः सुनाई पड़ते हैं। किसी अवरोध से परावर्तन के कारण ध्वनि की पुनरावृत्ति प्रतिध्वनि कहलाती है। मानव अपनी स्वयं की आवाज की प्रतिध्वनि सुनता रहता है, वशर्ते उसकी आवाज उसी के मर्मस्थल से टकराकर वापस लौटे। यह प्रतिध्वनि चमत्कारिक हो सकती है। किसी भी व्यक्ति की जीवन-प्रणाली उससे बदल सकती है।

कुछ गोल इमारतों, विशेषकर लंदन में सेंटपाल के गिरजाघर, में ऐसी वृत्तीय गैलरियां हैं जिनकी एक दीवार के पास यदि ध्वनि उत्पन्न की जाए तो लगातार परावर्तन के कारण यह गैलरी में आगे बढ़ती है। यदि एक व्यक्ति दीवार के पास अपना कान लगाए तो वह ध्वनि को स्पष्ट रूप से सुन सकता है। परंतु दीवार से दूर के स्थानों पर वह नहीं सुन सकेगा। ऐसे स्थानों पर ध्वनि की तीव्रता अपने-आप कम हो जाती है।

ध्वनि का प्रभाव हमारे मस्तिष्क पर लगभग १/१० सेकंड तक रहता है। इसीलिए यदि ध्वनि १/१० सेकंड तक के अंतर से उत्पन्न होती रहे तो हमें आभास होता है कि ध्वनि लगातार आ रही है। यदि कान पर पहुंचनेवाली ध्वनियों के बीच १/१० सेकंड से अधिक का अंतर है तो ध्वनियां पृथक्-पृथक् सुनाई देंगी। इस प्रकार यदि कोई ध्वनि हमें सुनाई दे तथा परावर्तन सतह से टकराकर परावर्तित ध्वनि १/१० सेकंड के पश्चात् सुनाई दे तो मूल ध्वनि तथा प्रतिध्वनि पृथक्-पृथक् स्पष्टतः सुनाई देंगी। चूंकि ध्वनि का वेग ३३० मीटर प्रति सेकंड के लगभग होता है, अतः स्पष्ट प्रतिध्वनि सुनने के लिए परावर्तक सतह की उत्पादक दूरी से न्यूनतम दूरी १/२ × ३३०/१० मी० = १६.५ मी० होनी चाहिए।

सिनेमा हॉल या किसी बड़े सभा-भवन पर जाने में हम देखेंगे कि वहां दरवाजे और खिड़कियों पर मोटे कपड़ों के पर्दे टंगे रहते हैं। फर्श पर गलीचा बिछा होता है। छत पर विशेष प्रकार की सीमेंट की चादरें लगी रहती हैं। यह सब व्यवस्था भवन की सजावट के साथ-साथ ध्वनि के परावर्तन को रोकती है जिससे कि प्रतिध्वनि उत्पन्न न हो सके तथा हॉल में बैठे व्यक्तियों को स्पष्ट सुनने में कठिनाई का अनुभव न हो। इस प्रकार भवनों में ध्वनि के परावर्तन अथवा उनका अवशोषण करवाकर प्रतिध्वनि से बचने की प्रक्रिया 'भवन ध्वनिकी'

कहलाती है। अच्छे सभा-भवनों का निर्माण इस प्रकार किया जाता है कि उनमें प्रतिध्वनि काल (रिवरबरेशन टाइम) उपयुक्त हो। उपयुक्त प्रतिध्वनि काल भवन के आयतन, ध्वनि को परावर्तित करनेवाली सतहों के क्षेत्रफल एवं उनकी प्रकृति पर निर्भर करता है। उपयुक्त प्रतिध्वनि काल न होने से भवन में ध्वनि या तो कम होती है या खो जाती है या प्रतिध्वनि होने लगती है। ऐसे हॉल में संगीत तथा नृत्य आदि सुनने तथा देखने का दूसरा ही आनंद रहता है। आवाज की विविधता, उसका फैलाव तथा प्रभाव हम ऐसे स्थानों पर अधिक मुखरता से महसूस करते हैं। अफवाहों की उपज का अंतहीन सिलसिला देश के वातावरण में इसलिए चलता रहता है कि जो व्यक्ति बोलते हैं वे ही लोग उसे तोड़-फोड़कर अफवाहें बनाते हैं। उन शब्दों का बार-बार उपयोग होता रहता है। वे सब शब्द कई बार बोले जाते हैं।

ध्वनि कंपनों से उत्पन्न होती है। जब एक कंपित वस्तु के कंपन कानों तक पहुंचते हैं तो ध्वनि सुनाई देती है। यदि यह कंपन कानों तक न पहुंचें तो ध्वनि सुनाई नहीं दे सकती, यद्यपि ध्वनि उत्पन्न हो रही होती है। कारण यह है कि कंपन वायु में गमन करते हैं और कान के परदे पर पड़ते हैं। मानव के कान में ये कंपन दो तरीकों से पहुंचते हैं—वायु के द्वारा तथा कान के पास जो हड्डियां रहती हैं उनके द्वारा। बहरेपन में इन दोनों में से एक माध्यम में खराबी आ जाती है (इसका बृहद् वर्णन बहरेपन के अध्याय में किया गया है)। ये कंपन मस्तिष्क पर एक प्रकार का प्रभाव छोड़ते हैं जो ध्वनि का आभास कराता है। अतः ध्वनि-संचरण के लिए किसी माध्यम का होना आवश्यक है।

कुछ बड़े सभा-भवनों में वक्ता के स्टेज के पीछे परवल या कार ध्वनि परावर्तक लगे होते हैं। वक्ता इसके फोकस के पास खड़ा होकर बोलता है और उसकी ध्वनि-तरंगें परावर्तित होकर समानांतर चली जाती हैं। इस प्रकार पूरे हॉल में सुनाई पड़ जाती हैं। गूंज वक्ता के शब्दों की पुनरावृत्ति ही है। उसे ही गूंज कहते हैं जो किसी दूर के तल से ध्वनि-तरंगों के परावर्तन के कारण होती है। दूर खड़ी पेड़ों की पंक्ति, इमारतें या अन्य किसी तल से टकराकर ध्वनि-तरंगें उसी ओर वापस आती हैं और वक्ता को ही सुनाई देती हैं। यह एक रोमांचक अनुभव होता है। सूने घने जंगलों में, सरोवर या झील के किनारे प्रेमी और प्रेयसी इन्ही ध्वनि-तरंगों का आनंद लेते रहते हैं।

सांगीतिक ध्वनि में कंपन नियमित, आवर्ती और क्रमशः होते हैं। यह ध्वनि सुनने में अच्छी लगती है, जैसे हारमोनियम, सितार की ध्वनि, वायलिन, गिटार आदि की ध्वनि। संगीतकार जो अभ्यास (रियाज) करते हैं उसके पीछे भी यही सिद्धांत है। अपनी आवाज के कंपन तथा उससे उठती तरंगों पर काबू पा लेने का प्रयास संगीतकार करता है। जो अपने अभ्यास में सफल हो जाते हैं उनकी

साधना पूर्ण होती है और वे प्रसिद्ध गायक बन जाते हैं। सांगीतिक ध्वनि एक-दूसरे से निम्नांकित गुणों के कारण पहचानी जाती है—

(१) तीव्रता
(२) तारत्व (पिच)
(३) रूप (क्वालिटी)
(४) द्वि स्वर ग्राम (डायटॉनिक स्केल)

वर्षाकाल में बादलों में बिजली का प्रकाश (चमक) पहले दिखता है और ध्वनि बाद में सुनाई देती है। इसका कारण यह है कि प्रकाश का वेग अधिक होने के कारण यह पृथ्वी पर जल्दी पहुंचता है और ध्वनि देर में पहुंचती है। भौतिक शास्त्र में ध्वनि का पूरा-पूरा ज्ञान हो जाने के कारण अब अन्य आविष्कार हो गए हैं। वैज्ञानिकों ने भौतिक शास्त्र की सहायता से ध्वनि संबंधित कई उपयोगी यंत्र बनाए हैं, जैसे—रेडियो, टी० वी०, वायरलेस आदि। इनका उपयोग हम पिछले कई वर्षों से देख रहे हैं।

सैटेलाइट के माध्यम से अभी हाल में 'स्पेस साउंड' सिगनल का चमत्कारिक आविष्कार हुआ है। इस नई पद्धति के द्वारा एक सेकंड के १/१००वें हिस्से का भी ज्ञान हो जाएगा तथा इसके द्वारा नाभिकीय संकट के समय, युद्ध के समय या ज्वारभाटा आदि के समय मानव को अपनी सुरक्षा के लिए बड़ी सहायता मिलेगी।

कुछ वर्षों से टेलेक्स, फैक्स के आविष्कार से पत्रकारिता जगत् में बड़ी प्रगति हुई है। टेलेक्स मशीन पर जो खबरें टाइप की जाती हैं वे उसी समय दूसरे छोर पर पहुंच जाती है। भले ही वह दूसरा छोर सैकड़ों किलोमीटर की दूरी पर क्यों न हो। उसी तरह फैक्स एक ऐसा यंत्र है जिसके द्वारा कई दस्तावेज तथा उनकी सही प्रतिलिपि दूसरे छोर पर पहुंच जाती है।

टेलीफोन अब केवल बातचीत का जरिया ही नहीं रह जाएगा बल्कि आवाज के साथ-ही-साथ हम अपने मित्र की तसवीर भी उसी अंदाज से देख सकेंगे जिस अंदाज में वह हमसे बात कर रहा है। वह भी हमारे अंदाजेबयां को देख-सुन सकेगा। अभी यह सुविधा दो-चार विकसित देशों में ही उपलब्ध है, लेकिन आशा है कि कुछ समय पश्चात् तसवीर वाले फोन की सुविधा हमारे देश में भी एक-दो शहरों में शुरू हो जाएगी।

इस उपकरण में टेलीफोन के साथ ही टी० वी० और कैमरे की जरूरत भी होगी। ये दोनों टेलीफोन उपकरण से जुड़े रहेंगे। नंबर डायल करने के लिए रिसीवर उठाते ही कैमरे का स्विच भी अपने-आप ऑन हो जाता है और नंबर डायल करते ही आपकी तसवीर खिंच जाती है और दूसरे टेलीफोन की टी० वी० स्क्रीन पर दिखाई देने लगती है। अभी तक हमारे यहां लंबी दूरी के टेलीफोन

ही उपग्रह द्वारा जुड़े हुए हैं। कम दूरीवाले या स्थानीय टेलीफोन केबल्स के माध्यम से ही आवाज पहुंचाते हैं। टेलीफोन के टी० वी० स्क्रीन पर तसवीर तो केवल उपग्रह के जरिए ही संप्रेषित हो सकती है। अभी जो प्रक्रिया दूरदर्शन में अपनाई जाती है उसी सिद्धांत पर ये टेलीफोन कार्य करेंगे। भारत का तीसरा राष्ट्रीय उपग्रह 'इंसेट-एक-सी' अंतरिक्ष से सूचना भेजने का काम शुरू कर देगा। इस नए उपकरण को निर्मित होने में साल या दो साल लग सकते हैं। तकनीकी भाषा में 'वीडियो-कानफ्रेंस' के नाम से परिचित इस नई तसवीर-टेलीफोन प्रणाली में दो और अधिक व्यक्ति भी अलग-अलग स्थानों पर रहकर टेलीफोन के जरिए संवाद कर सकेंगे। तसवीरवाले फोन के साथ ही 'वीडियो टैक्स', 'टेलीफैक्स' और 'रेडियो पेंगिग' जैसी कई अन्य महत्त्वाकांक्षी योजनाएं भी भारत के संचार मंत्रालय के विचाराधीन हैं।

आवाज और विज्ञान की दूसरी करामात यह है कि कभी-कभी जन्म से ही या दिमाग में चोट लग जाने के कारण हमारे कुछ नन्हे साथी पढ़ न पाने की बीमारी से ग्रस्त हो जाते हैं। इस बीमारी का एकदम सही और सीधा इलाज अभी चिकित्सा जगत् में नहीं है। पर पश्चिमी जर्मनी के एक कल्याणकारी संगठन ने ऐसे कमजोर मस्तिष्कवाले बच्चों के लिए एक छोटा-सा केंद्र खोला है जहां विभिन्न वैज्ञानिक उपकरणों की सहायता से ऐसे बच्चे पढ़ना और लिखना सीखते हैं। इस उपकरण द्वारा बच्चे को धीरे-धीरे पर साफ तरीके से सुनाई पड़ता है। साथ ही, जो शब्द बच्चा सुनता है, ठीक बड़े आकार में टेलीविजन के पर्दे पर उभरता रहता है। इस प्रकार पहले बच्चे को पढ़ना और उसके बाद लिखना सिखाया जाता है। हमारे देश में भी इस तरह के प्रयोग चल रहे हैं।

एक नया आविष्कार हुआ है 'जाम प्रतिरोधी' रेडियो प्रणाली। ग्रेट ब्रिटेन की जगुआर रेडियो कंपनी ने पांच वर्ष पूर्व एक ऐसी रेडियो प्रणाली विकसित की थी जिसे युद्ध के समय काम में लाया जा सकता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस प्रणाली को जाम नहीं किया जा सकता है। उस देश ने अब तक इस प्रणाली की एक करोड़ पौंड की बिक्री की है। जगुआर का नामकरण 'जैंगिंग गार्डेड रेडियो' के आद्याक्षरों को लेकर किया गया है। इसकी बिक्री अब तक तीस देशों में हुई है। इस प्रणाली की विशेषता यह है कि यह जमीन, हवा और समुद्र में समान रूप से कार्य करने में सक्षम है। और यह ए० एच० एफ० और बी० एच० एफ० बैंड में प्राप्त है।

अब रैलस टेलीकॉम ने एक हल्की और हाथ में रखी जा सकने लायक ट्रासीवर (ट्रांसमीटर और रिसीवर दोनों) का विकास किया है। इसे कराकोल का नाम दिया गया है। इसका अन्य कराकोल इकाइयों और जगुआर प्रणाली के साथ उपयोग किया जा सकता है। जगुआर और कराकोल रेडियो सक्षम

संचार के लिए उपयुक्त हैं और इन्हें जाम करना एक मुश्किल काम है। क्योंकि प्रति सेकंड कई बार ये अपनी ट्रांसमीशन फ्रीक्वेंसी बदल सकते हैं। इसमें ऐसी भी व्यवस्था है कि स्विच दबाकर इसकी सारी मेमोरी एक साथ खत्म की जा सकती है। ऐसा ट्रांसमीटर दुश्मनों के हाथ में जाने से पहले नष्ट किया जा सकता है। इस जाम-प्रतिरोधी रेडियो प्रणाली में कई संशोधन भी किए गए हैं। ध्वनि और आवाज के करिश्मे इन सब आविष्कारों में मौजूद हैं।

भौतिक सिद्धांतों पर आधारित पहले की दीवार घड़ियां लुप्त होती जा रही हैं। वे घड़ियां आज भी आदमी के दिल की धड़कन की याद दिलाती हैं।

कुछ वर्ष पूर्व दीवार घड़ी की टिक्-टिक् की आवाज हमें सदैव यह स्मरण दिलाती रहती थी कि समय बीत रहा है। समय भाग रहा है। समय और ज्वार-भाटा किसी के लिए भी नहीं रुकते। अतएव जो कुछ करना है समय पर कर लिया जाए, अन्यथा पछतावे के अतिरिक्त हाथ कुछ नहीं आएगा। अब न तो दीवार घड़ियां दिखती हैं और न ही वे आवाजें सुनाई पड़ती हैं। वर्तमान समय में इलेक्ट्रॉनिक घड़ियां हैं जो केवल कलाइयों में बंधी रहती हैं, या दीवार पर टंगी रहती हैं। उनमें टिक्-टिक् की आवाज नहीं आती। उनमें चाबी देने की भी आवश्यकता नहीं है। वे यांत्रिकी तौर पर समय तो बताती हैं लेकिन सतत रूप से टिक्-टिक् की आवाज नहीं निकालतीं। लोग घड़ी बांधे हुए भी समय की परवाह नहीं करते। जागते हुए भी सोए-से रहते हैं। उनके दिल की धड़कन चलती रहती है। कुछ वर्ष पूर्व रात को सोते समय दीवार घड़ी की टिक्-टिक् हमें यह सोचने के लिए बाध्य करती थी कि पता नहीं हम सबेरे उठ भी पाएंगे या नहीं, सबेरे घड़ी की टिक्-टिक् सुन भी पाएंगे या नहीं। इसी चेतना के कारण हम चैतन्य रहते थे। कभी-कभी दीवार घड़ी की टिक्-टिक् बिना चाबी दिए बंद हो जाती थी। दोपहर में बारह बजे उस बंद घड़ी को देखकर ऐसा महसूस होता था मानो जीवन भी रुक-सा गया है। उसमें स्थिरता आ गई है। लेकिन जब घड़ी में चाबी भरते थे, वह पुन: चलने लगती थी। ऐसा मालूम होता था मानो जीवन लौट आया है। आज का जीवन तो किसी तरह धकता ही रहता है। स्थिर हुआ तो चाबी भरना मुश्किल है। मैले शीशे में देखने से मुंह मैला दिखाई देगा। अत: सदैव अंत:करण की आवाज सुनो।

५

प्राचीन और वर्तमान दिनचर्या की आवाज

चेक उपन्यासकार मिलान कुंडेरा ने डूबचेक के समय पर टिप्पणी की थी कि तुलनाएं अराजक होती हैं। हम उनसे निष्कर्षों पर नहीं पहुंचते, सिर्फ सांत्वनाओं तक पहुंचते हैं कि वह 'ठीक ऐसा था' या 'वह ठीक वैसा नहीं था'। और यदि तुलनाएं दो भिन्न समयावधियों या महान् व्यक्तियों की हों तो हम दोनों के साथ ही अन्याय करते हैं। बहरहाल, प्राचीन और वर्तमान जीवन की दिनचर्या में भी यही तथ्य समाहित है।

समय की बदलती धारा ने अपने साथ कितने ही नए परिवर्तनों को जन्म दिया है। जीवन का कोई भी क्षेत्र अपने-आप को इस बदलाव से अलग नहीं रख पाया है। समय के साथ परिवर्तित राजनीति ने मानवीय धरोहर का लगातार अवमूल्यन किया है। आदमी आज बिना किसी संबल के जी रहा है। उसकी दिनचर्या अस्त-व्यस्त है। 'शब्द', भाषा के साथ राजनीति द्वारा किया गया व्यवहार किसी बौद्धिक हत्या से कम नहीं है। आज आदमी की आवाज बंद करने के नए-नए बहाने ढूंढ़े जा रहे हैं। ऐसे अंधकारमय वातावरण में शब्दों, वाणियों तथा भाषा की पुनर्प्रतिष्ठा तथा उसे गरिमा प्रदान करने का प्रयास श्रेयस्कर होगा। मानव की दिनचर्या में परिवर्तन लाना होगा।

बिना राष्ट्रभाषा के देश अपने को बिखरा हुआ समझता है। एक राष्ट्रभाषा हो जाने से नवजागरण आ सकता है। उसके बाद मनोवैज्ञानिक तौर पर हम सब एक हो सकते हैं। ऐसा महसूस कर लेने पर राष्ट्र की प्रगति अवश्य होगी। अपनी वर्तमान दिनचर्या में हम देखते हैं कि चारों तरफ असीम भौतिक प्रगति हुई है, पर अंदर से हम खोखले हो गए हैं। हमारे समस्त नैतिक मूल्य धरे रह गए हैं। समाज के बदलते परिवेश में वैचारिक क्रांति का भार लोगों के कंधों पर ही आता है। इसे कैसे लाया जाए, यही सोचना है। प्रत्येक विभाग में अर्थ-व्यवस्था के

शोषणस्वरूप मानव अपने को निस्सहाय तथा कमजोर महसूस करता है। इसी मानसिक अवस्था में वह कुछ भी करने को तैयार रहता है।

समाज में व्याप्त असमानताओं को दूर करने में सरकार असमर्थ रही है। प्रत्येक आदमी के जीवन में कटुता पनप रही है। अधिकांश व्यक्तियों को जीवन का लक्ष्य ही नहीं मालूम है। येन-केन-प्रकारेण धनोपार्जन ही जीवन का मुख्य उद्देश्य है। मैं तो यह स्पष्ट करना चाहता हूं कि प्राचीन समय में धार्मिक भावनाओं, संस्कारों तथा सभ्यता का प्रभाव आदमी पर बहुत रहता था। वह हमारी प्राचीन संस्कृति की देन थी। काल की धूप में चहलकदमी करना बड़ा शिक्षाप्रद है। वर्तमान समय में मनुष्य बहिर्मुखी हो जाने के कारण अपने पूर्व संस्कारों को भूल रहा है। दोनों युगों की अच्छाइयों को आत्मसात कर यदि हम अपनी जीवन-शैली सुधारें तो हमारा और समाज का अधिक कल्याण हो सकता है। प्राचीन दिनचर्या के प्रति अब और अधिक उदासीन नहीं रहा जा सकता। पुराने भारतीय चिंतन को मुक्ति का चिंतन बताया गया है, जिसके अनुसार मानव का सबसे बड़ा कार्य था, जन्म और मृत्यु के बंधन से मुक्ति पा लेना। पश्चिम के लोग भौतिकवाद से घबराकर अध्यात्मवाद के लिए पूर्व की तरफ मुड़ रहे हैं। हमें चाहिए कि आत्म-विश्वास और आत्म-संयम को आगे लाएं। इस आत्म-संयम और आत्म-विश्वास को भारतीय भाषा में तप और योग कहते हैं, जो शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक आत्म-संयमों का एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

आज मानव में जो अंतर्विरोध हैं वे उसके निजी नहीं हैं, बल्कि समाज और समय के हैं जिसमें वह जी रहा है। आज का आदमी अनिर्णय के गहरे अवसाद से भर गया है। वह ऐसे भंवर में डूबा हुआ है कि उसकी समझ में ही नहीं आ रहा कि वह क्या करे और क्या न करे। इसी अवस्था को संक्रमणकाल कहा जा सकता है। आज हमारे दुःख में धीरज देनेवाला, निराशा में आशा देनेवाला और दुर्बलता के क्षणों में साहस प्रदान करनेवाला कोई नहीं है। मिथ्या स्वप्नवादिता से ग्रस्त, पूर्वाग्रह से बंधे और स्वल्प प्रयत्न में ही निस्तेज हो जानेवाला जन-समाज का संस्कार क्षण में बदल देना संभव नहीं है।

प्राचीन समय में प्रातःकालीन मंत्र, संध्या (ब्रह्म यज्ञ) सामान्य नित्य यज्ञ-पद्धति, विशेष यज्ञ के लिए स्वस्ति-वाचन, शांति-प्रकरण तथा राष्ट्रीय प्रार्थना एवं भजन-कीर्तन की दिनचर्या रहती थी। समूचा वातावरण शुद्ध और निर्मल रहता था। उषःकालीन अरुणिमा में उठकर लोग सरोवरों या सरिताओं के तट पर जाकर स्नान आदि करते थे। स्नान के समय तथा बाद में मंत्रों का उच्चारण कर पूजा-पाठ में लग जाते थे। मैं प्रार्थना करता हूं कि "मैं जान-बूझकर अपने ज्ञान, कर्म, इंद्रियों से अर्थात् वाक्, प्राण, चक्षु, स्त्रोत, हृदय, कंठ, सिर, बाहु, करतल और करपृष्ठ आदि से कदापि पाप न करूं, ऐसी कृपा करो। हे प्रभो ! हम सर्वत्र

मन, वाणी, कर्म से सत्य को ग्रहण करें।"

एक स्वर से सब यही प्रार्थना करते थे। सामान्यतः यही आवाज गुंजित होती थी। मंदिरों में शंखों की ध्वनि से चारों तरफ का वातावरण शुद्ध हो जाता था। वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि शंख से निकलनेवाली आवाज अत्यंत लाभकारी होती है। बर्लिन यूनिवर्सिटी ने शंख-ध्वनि का अनुसंधान किया है। शंख-ध्वनि की शब्द लहरें कीटाणुओं को नष्ट करने के लिए उत्तम और सस्ती ओषधि है। यह प्रति सेकंड सत्ताईस घन फुट वायु शक्ति के जोर से बजाया हुआ शंख १,२०० सौ फुट दूरी के कीटाणुओं को नष्ट कर डालता है। २,६०० फुट दूरी के जंतु उस ध्वनि से मूर्छित हो जाते हैं। अन्य बीमारियों के कीटाणुओं पर भी निःसंदेह इनका असर पड़ता है। शंख-ध्वनि का रोगनाशक प्रभाव सिद्ध हो चुका है।

शिकागो के डॉ० डी० ब्राइन ने करीब चौदह सौ रोगियों को शंख-ध्वनि के माध्यम से ठीक किया है। अफ्रीका देश के निवासी जहरीले सर्प के काटे हुए मनुष्य को घंटा बजाकर ठीक कर लेते हैं। तपेदिक रोग भी शंख-ध्वनि से ठीक हो जाता है। प्रमुख वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि शंख-ध्वनि स्वास्थ्य-वर्धक होती है। शंख बजाने से फेफड़ों को जो लाभ मिलता है, वह अनुपम है।

सब का भला करो भगवान्, सब पर दया करो भगवान्,
सब पर कृपा करो भगवान्, सबका सब विधि हो कल्याण।

तदनुसार अपनी दिनचर्या भी बनाते थे। गायत्री मंत्र का उच्चारण स्फूर्ति देनेवाला होता था—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वेरेण्यम भर्गो देवस्य
धीमहि धियो योनः प्रचोदयात् ॥

हे परम, सर्वशक्तिमान् सर्वोपरि, सर्वव्यापक भगवान् ! तुम्हारे प्रकाश-पुंज मे हम भी प्रकाशित होंगे। भारतीय धर्म के अनुसार हममें आत्म-विश्वास, कर्म-योग की भावना, स्थिरता, जीवन विज्ञान, शक्ति संचय, सबकी श्रेष्ठता को हम समझें। दिव्य दृष्टि की निर्मलता, विवेक और संयम, सद्गुण तथा सेवा की भावना से हम ओत-प्रोत हों। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करे।

प्रातःकालीन प्रार्थना अधिक समुन्नत होती है। जीवात्मा अधिक ऊपर उठ सकती है। हिमालय में रहनेवाले ऋषिगण की आवाज के साथ प्रातःकालीन बेला में सर्वत्र पूरे सौरमंडल में यह गायत्री मंत्र गुंजित हुआ करता था। प्रार्थना धर्म का प्राण और द्वार है। प्रार्थना नम्रता की पुकार है। प्रार्थना वाणी से नहीं, हृदय से करने की चीज है। प्रातःकालीन प्रार्थना मनुष्य को पवित्र बनाकर परोपकारी भावनाओं से भर देती है। प्रार्थना प्रातःकाल का आरंभ और संध्या का अंत है। प्रार्थना इसलिए जरूरी है ताकि हम लालच में न पड़ जाएं, अपने को

सतर्क रखें। मंत्रों का जप करनेवाले महान् आत्मबल के धनी हो जाते हैं। पहले इस मंत्र के मर्म को समझकर इसका जप किया जाता था।

आज मंत्रों का भी व्यापारीकरण हो गया है। पहले माताएं अपने बच्चों को प्रभाती के द्वारा जगाया करती थीं; जैसे—"जागिए रघुनाथ कुंवर, पंछी बन बोलय।" पहले प्रातःकाल के समय बच्चे अपने माता-पिता के पैर छूते थे। चारों तरफ शांतिमय वातावरण हुआ करता था और उस समय की दिनचर्या सदैव सुखद वातावरण में व्यतीत होती थी। दिन-भर स्वधर्म का पालन करते हुए सायंकाल को वे पूर्ण संतोष के साथ घर वापस लौटते थे। न कोई चिंता, न कोई आक्रोश, न कोई घबराहट। घर में आकर आरती-वंदना सुनकर भोजन करते थे तथा सोने से पूर्व भगवान् का गुणगान करते हुए सो जाते थे। 'नवकंज लोचन, कंज मुख कर कंज पद कंजारुणम्' की ध्वनि से उनका कमरा गूंजता रहता था। परंतु आज लोग एलार्म घड़ी की आवाज से या मिलों के भोंपू या सायरन की आवाज से या ट्रक या मोटरों की तीखी आवाज से या जोर-जोर से चिल्लाकर सामान बेचने वालों की आवाज से उठते हैं। अधिकांश लोग उषःकालीन सौंदर्य की दिव्यता से वंचित रहते हैं। जब तक वे सोकर उठते हैं तब तक ८ या ९ बज गए होते हैं। घबराहट, अकुलाहट में जल्दी से तैयार होकर अपने काम के लिए दौड़ जाते हैं। उनका सबेरा शुरू होता है, चिंता तथा व्यग्रता में—

"दिन चढ़ आया खुली नींद जब, पीने लगे 'बेड-टी' लेट।
हाथों में अखबार आ गया, मुंह में सुलग रही सिगरेट।
नामित कोई काम नहीं है, खुद ही बना रहे निज बाल।
पाखाने के बाथरूम में नहा-नहा हो रहे निहाल।"

समाज के चार वर्गों में से सबसे अधिक परेशान धनिक तथा व्यापारी वर्ग रहता है। उन लोगों को न सबेरे की और न ही शाम की कुछ चिंता रहती है। चौबीस घंटे वे धनोपार्जन के उद्देश्य में मस्त रहते हैं। राजनैतिक महानुभावों की तो बिलकुल निराली दिनचर्या रहती है। कोई भी व्यक्ति अपने धंधे से संतुष्ट नहीं रहता। समाज में जिधर देखिए उधर संघर्ष, चुनौतियां तथा हड़बड़ाहट ही दृष्टिगोचर होती है। वर्तमान समय के भौतिक जीवन के आकर्षण ने जीवन को और अधिक दूभर तथा विपदापूर्ण बना दिया है। कुछ वर्ष पूर्व मजदूर तथा गरीब जनता शांतिमय जीवन बिताती थी लेकिन आज उस वर्ग में भी पैसा बटोरने की होड़ शुरू हो गई है।

हमारे यहां हत्या, डकैती, चोरी, अपहरण, गबन, जालसाजी, बलात्कार आदि सभी मामलों के लिए 'रेडीमेड' प्रत्यक्षदर्शी गवाह किराए पर मिलते हैं। पुलिस विभाग को इसकी जानकारी रहती है, पर संबंधित गिरोह के सदस्य पकड़े नहीं जाते। प्रश्न यह उठता है कि वह कौन-सी जमात है जो इस तरह के 'रेडी-

मेड' चश्मदीद गवाह तैयार रखती है तथा वे कौन लोग हैं जो इस गवाही देने वाले समुदाय में शामिल होते हैं तथा वे कैसे लोग हैं जो ऐसे झूठे गवाहों को किराए पर लेकर अपने अनुचित कार्यों की पूर्ति करते हैं।

विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि समाज में आज इन तीनों वर्गों के लोगों को परोक्ष रूप से मान्यता दे दी गई है। इसी कारण ये तत्त्व फल-फूल रहे हैं। समाज का प्रबुद्ध वर्ग भी ऐसी बातें सुनकर कान में तेल डालकर बैठ जाता है। हर तबके का आदमी कमोबेश किसी-न-किसी अवांछनीय गतिविधि से जुड़ा हुआ है। उसे जब ऐसे तत्त्वों की आवश्यकता होती है, उचित दाम देने पर वे उपलब्ध हो जाते हैं। आज का धनिक वर्ग, राजनीतिक वर्ग इसी तरह जी रहा है तथा अपने अस्तित्व को बनाए हुए है। यह अत्यंत भयावह दुष्चक्र है। माफिया तथा जघन्य अपराध करने के लिए किराए पर मिलनेवाले लोग समाज में न केवल प्रश्रय पा रहे हैं बल्कि उन्हें परोक्ष रूप से संरक्षण भी दिया जाता है। वर्तमान जीवन की दिनचर्या में ये लोग एक विशेष भूमिका निभा रहे हैं। आज के मनुष्य का जीवन न तो आकर्षक है, न स्वाभाविक। केवल कौतूहल तथा संदेहों से पूर्ण है। उसके जीवन में विसंगतियां, शंका, संदेह से लिप्त परिस्थितियां और रहस्यमय चिंतन-शैली ही दृष्टिगोचर होती है।

अनिश्चितता

अविश्वसनीयता के कारण मानव एक-दूसरे से डर रहा है। पंजाब का आतंकवाद, पश्चिमी बंगाल का नक्सलाइट मूवमेंट तथा अन्य स्थानों में सांप्रदायिक दंगे एवं जातिवाद के नारों से समाज का वातावरण भयावह हो गया है। सारे प्रश्न, समस्याएं मधुमक्खी की तरह उसके जहन में मंडराते रहते हैं। वह घन्न-घन्न की हमिंग आवाज से सदैव विचलित रहता है। कवि जंगबहादुर सिंह की निम्नलिखित पंक्तियां इन भावों को उजागर करती हैं—

"मौत जैसी गहरी धुंध ने शहर के सभी घर घेर रखे हैं।
स्वाभिमान का तापमान माइनस में जा चुका है।
लोग अंदर घुसे, अनिश्चितता की अंगीठी सेंकते हुए समय काटते हैं।
खुद को समेटते, लपेटते यदि बाहर भी निकलते हैं तो एक-दूसरे पर
संदेह करते परछाईं से भी डरते हैं।
अफवाह सुनते ही झट अंदर घुसकर दरवाजे-खिड़कियां बंद करके सांस
गिनने लगते हैं।
संगीनें सड़कों पर उग आई हैं।
सड़कों-चौराहों पर स्टेनगनों के पहरे लगे हैं।"

आज एक राजनीतिक परिदृश्य का वर्णन किया जा सकता है पर किसी विशेष

राजनीतिक सिद्धांत को लेकर कुछ भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि राजनीतिक दांव-पेच जटिल एवं स्वार्थपरक हो गए हैं। दिन-प्रतिदिन मनुष्य को अपनी जान की पड़ी है, रोजी-रोटी की पड़ी है।

शहरीकरण और आधुनिकीकरण के कारण जो सामाजिक परिवर्तन आए हैं उनसे समाज में बच्चों और वृद्धों की देखभाल की समस्या उत्पन्न हो गई है। सबेरा होते ही पति-पत्नी अपनी-अपनी नौकरी पर जाने के लिए तैयारी करने लगते हैं। परिवार के बच्चों को देखने के लिए या तो नौकरानी रहती है या उन्हीं बच्चों में से जो बड़ा होता है वह छोटों की देखभाल करता है। यदि बच्चे बुरी संगति में पड़ गए हैं तो मां-बाप के बाहर चले जाने के बाद उन्हें पूर्ण आजादी मिल जाती है। फिर न तो वे स्कूल जाते हैं और न ही कुछ संस्कारपूर्ण काम करते हैं। वे गुमराह होकर दिन बिताते हैं। पश्चिमी देशों में बच्चों और बूढ़ों के लिए विशेष रूप से कार्यक्रम बनाए गए हैं।

हमारे देश में संस्थागत प्रयास किसी भी समस्या को लेकर नहीं होते। छुट-पुट रूप में यहां-वहां कुछ होता रहता है। हम लोगों की दिनचर्या की विशेषता यही है कि जो चीज सामने आती है उसी में किसी तरह लग जाते हैं, ले-देकर काम निबटा देते हैं।

वृद्धावस्था की समस्याएं अपने-आप में गंभीर हैं। प्राचीन काल में संयुक्त परिवार के कारण वृद्धों का न केवल सम्मान होता था बल्कि उनकी देख-रेख में परिवार के सारे कार्यों का संचालन होता था। अब परिवार में बड़े-बूढ़े यदि हैं भी तो उनकी कोई सुनता नहीं। परिवार में बच्चों की देखभाल की जिम्मेदारी अब माता-पिता नहीं समझ रहे हैं। उपभोक्तावादी, भोगी प्रवृत्ति विस्तृत होने के कारण परिवार का स्वरूप बदल रहा है।

इसीलिए दिनचर्या भी दूषित हो गई है। परिस्थितिगत आवश्यकताओं और चुनौतियों को स्वीकार कर महिलाएं आज पुरुषों के समान अर्थोपार्जन तो कर रही हैं, लेकिन इस आर्थिक स्वावलंबन ने उनकी जिंदगी में संघर्ष की स्थिति पैदा कर दी है जिसके कारण घर की सुख-शांति नष्ट होती जा रही है। महिलाओं को केवल समता मिली है, उन्हें प्रत्येक कार्य में पुरुषों का सहयोग और सहभागिता नहीं मिल पाई है। दिन-ब-दिन आपस की खींचातानी से उनकी दिनचर्या समस्यापूर्ण रहती है। जल्दी-जल्दी में सबेरे ऑफिस जाती हैं; जाते समय अपने बच्चों को चाकलेट देकर खुश करती हैं। इस बीच आया बच्चे को सब कुछ बताती रहती है, बंदर की, हनुमान की, रावण की, लक्ष्मण की तथा सीता की कहानी सुनाती है। जब मम्मी शाम को थकी हुई लौटती है तो बच्चा पूछता है कि रावण सीता को क्यों उठा ले गया। मां कहती है कि अभी वह थकी हुई है। रविवार के दिन वह उसे इस बारे में बताएगी।

इस तरह की दिनचर्या से बच्चों में कैसे संस्कार पनप रहे हैं, यह सोचने की बात है। इस संघर्ष को समाप्त करने के लिए हमें प्रचलित जीवन-दर्शन और पुराने मूल्यों को समझना होगा। उसी से वास्तविक क्षमता लाई जा सकती है। अनुभव बताता है कि समता की भावना के कारण ही आज नारी उद्दंड हो रही है। अपनी शालीनता खो रही है। नए मूल्यों को स्वीकारने में मानसिक हिचक बराबर बनी हुई है।

पुरुष अपनी पुरानी रूढ़िवादी मानसिकता को नहीं बदल पा रहा है। पत्नी-पीड़ित पतियों का संगठन अवश्य बन रहा है पर इससे समस्या सुलझ नहीं रही है; उलझनें अधिक पैदा हो गई हैं। जीवन में परिवार के संस्कार बदल रहे हैं। महिलाएं स्वतंत्र हो रही हैं। उस हालत में परिवार बिखरेगा नहीं तो और क्या होगा! तथाकथित सभ्य समाज में महिलाएं दहेज के कारण जबरन जलाई जा रही हैं। देह का व्यापार जोरों पर है। उसे सरकार का कानून न तो रोक पाया है और न ही इस तरह के तत्त्वों के विरुद्ध कार्यवाही कर पाया है। एक विशेष तरह की नियमावली बना देने से ऐसे दुष्कर्म नहीं रोके जा सकते। मामूली पाबंदी लगाने से समस्या का निराकरण नहीं हो सकेगा।

शाम होती है, क्लांत तथा थके हुए लोग घर लौटते हैं। दिन-भर की भाग-दौड़ का असर मानस पर पड़ता ही है। किसी तरह टी० वी० आदि देखकर भोजन करते हैं और नींद की गोलियां खाकर सोने जाते हैं। वर्तमान जीवन में स्वाभाविक, आध्यात्मिक जीवन का अंश नाममात्र भी नहीं है। इसीलिए सारी कोशिकाएं शिथिल हो जाती हैं। दुनिया-भर की बीमारियों से मानव पीड़ित है। एक अनुभवी चिकित्सक ने ठीक ही कहा है कि आज का मानव गोली खा-खाकर जीता है। भूख के लिए गोली, हजम करने के लिए गोली, स्फूर्ति पैदा करने के लिए गोली, परिवार नियोजन के लिए गोली, चिंता दूर करने के लिए गोली, नींद लाने के लिए गोली तथा यौवन बनाए रखने के लिए गोली। आश्चर्य है कि आज के मनुष्य की दिनचर्या कितनी कृत्रिम हो गई है—

"उलटी हुई दिशाएं मानव सुख सपनों में खोया,
अंधकार में भटक रहा, अज्ञान निशा में सोया।
मां मदालसे जागो तुम बिन बच्चे भटक रहे हैं,
उठो पद्मिनी आज शील से खिलजी उटक रहे हैं।"

बच्चे कानवेंट में शिक्षा पा-पाकर विदेशी हो रहे हैं। महिलाएं नारी स्वातंत्र्य को लेकर गुमराह हो रही हैं।

हमारे पूर्वजों ने चार युगों की कल्पना की थी—सत्युग, त्रेता, द्वापर एवं कलियुग। तुलसीदासजी ने 'रामचरितमानस' के उत्तरकांड में धर्म के चार आधार बताए हैं—पूजा, यज्ञ, योग, हरिनाम। धर्म की परिभाषा इन चार प्रक्रियाओं में

समाहित है। श्रीमद्भागवत के अनुसार—सत्य, तप, यज्ञ, हरिपूजा—ये धर्म के आधार निर्मित किए गए थे। त्रेता युग में धर्म के इन चार पांवों में से एक पांव अर्थात् सत्य क्षीण हो गया। द्वापर युग में दो पांव अर्थात् सत्य एवं तप अति क्षीण हो गए। कलियुग में सत्य, तप, योग—तीनों का विलोप हो गया; केवल हरि-नाम बच गया है। इतिहासकारों का भी मत है कि विशेष काल-चक्र के कारण उन्नति एवं पतन स्वाभाविक रूप से होते रहते हैं। हमारी संस्कृति में कुछ ऐसी विशेषता है कि वह इतने घात-प्रतिघातों के बावजूद अपना अस्तित्व बनाए हुए है।

पहले सब अच्छा-ही-अच्छा था और वर्तमान में सब निकृष्ट-ही-निकृष्ट है, इस विचारधारा को मैं नहीं मानता। क्योंकि वर्तमान समय में भी विज्ञान ने, टैक्नोक्राफ्ट ने आदि भौतिक ज्ञान के प्रवाह में सर्वांगीण उन्नति की है। मानव ने प्रकृति पर विजय पाई है लेकिन इस विजय में केवल बाह्य संसार की ही उपलब्धियां हैं। मनुष्य ने अपने अंदर की शक्ति को अर्थात् अध्यात्म को भुला दिया है। आचरण पर संयम एवं नियंत्रण समाप्त हो गया है। भौतिकवाद के प्रवाह में हम बह गए हैं। सत्-असत् की विवेकशीलता भौतिकवाद के प्रवाह में बह गई। फलस्वरूप साध्य की सिद्धि ही सर्वोपरि हो गई और साधन उपेक्षित हो गया। इसलिए जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अनाचार, भ्रष्टाचार पनपने लगे। येन-केन-प्रकारेण साध्य को पा लेने के लिए ऐसी प्रवृत्ति हो गई कि सब कुछ भुला दिया गया। जीवन के हर क्षेत्र में साधन की इतनी उपेक्षा हो गई कि एक छात्र सर्वोच्च श्रेणी में पास होना चाहता है पर उसके अनुरूप परिश्रम नहीं करता। उचित-अनुचित साधनों का सहारा लेकर वह अपना लक्ष्य पा लेता है। सर्वत्र इसी मनोवृत्ति की पुकार आकाश में गूंज रही है। इस वातावरण के लिए पूरा शिक्षा-जगत् उत्तरदायी है। वह समझ नहीं पा रहा है कि यह सब क्यों और कैसे संभव है। यद्यपि उस जगत् के कई तत्त्व इस व्यापार में स्वयं शामिल हैं।

वर्तमान दिनचर्या की यही तो सबसे बड़ी विडंबना है! यही हाल व्यापारियों का है। किसी भी तरह वे अपने उद्देश्य में सफल हो जाते हैं। राजनीतिक वर्ग ने इस प्रवृत्ति को सबसे पहले अपनाया था। प्रशासन तंत्र ने भी भांप लिया है कि साधन कैसा भी हो, साध्य की प्राप्ति होनी चाहिए। इसी आपस के तालमेल के कारण पूरा वातावरण दूषित हुआ है। हमें समय रहते इसे सुधारना होगा।

आज नई प्राइवेट तकनीकी संस्थाएं खुल रही हैं; जैसे मेडिकल कॉलेज या इंजीनियरिंग कॉलेज। वहां विद्यार्थियों के प्रवेश का आधार उनकी योग्यता नहीं है, एकमात्र मापदंड है 'केपीटेशन फीस'। भर्ती होने के लिए अधिक-से-अधिक रकम जो दे सकेगा वही भर्ती होगा भले ही विद्यार्थी द्वितीय श्रेणी का हो या तृतीय श्रेणी का। इसका परिणाम क्या हो रहा है, यह सबको विदित है।

चोर दरवाजे से जो बड़े-बड़े काम करा लिए जाते हैं उसका तो और भी बुरा हाल है। राजसत्ता में पहुंच हो तथा मनमाना पैसा हो फिर तो कुछ भी किया जा सकता है। जघन्य हत्याएं होती हैं, घोर अन्याय होता है पर सब बेबस होकर तमाशा देखते रहते हैं।

ईमानदारी से संघर्षरत होकर आज बहुत कम लोग जीवन निर्वाह करते हैं। सब छोटे-मोटे रास्ते से या पीछे के रास्ते से जीवन की अन्य सुविधाओं को पा लेना चाहते हैं। इसी मनोवृत्ति के कारण सारे दोष समाज में उत्पन्न हुए हैं। दोष संचेतन की परवाह आज कोई नहीं कर रहा है। हर युग में धर्म और अधर्म दोनों रहे हैं परंतु वर्तमान में अधर्म, अन्याय, असत्य का ही बोलबाला है।

'जड़चेतन गुण दोषमय, विश्व कीन्ह करतार।'

अच्छे-बुरे लोग सदैव रहे हैं। वर्तमान में बुरे अर्थात् स्वार्थी, सत्तालोलुप तथा धन-संपत्ति के पीछे भागनेवाले लोग अधिक हो गए हैं। पहले जो बुरे थे उनको दंडित करने के अच्छे साधन थे। चोरों का हाथ काट दिया जाता था; डकैतों के हाथों को उबलते तेल में डाल दिया जाता था। रस्सी में बांधकर पेड़ पर उलटा लटकाकर कोड़े मारे जाते थे; परंतु आज दंड देने की प्रक्रिया जटिल हो गई है। वल्कि दंड से बचने की प्रक्रिया आसान हो गई है। इसी कारण दिन-चर्या में भी महान् अंतर आ गया है।

प्रारंभ में लोगों का विवेक प्रखर होता था, वे अंतरात्मा की आवाज सुनते थे, धर्म की ओर उनका रुझान था। जो बुरे होते थे वे भी प्रायश्चित्त करके हृदय-परिवर्तन में विश्वास रखते थे। सत्ता के लिए मोह आदमी की ताकत के कारण नहीं होता, वह उसकी कमजोरी के कारण होता है। अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए वह सब तरह की स्पर्धाओं में लिप्त रहता है। उसका अहम् उसे अहंकारी बना देता है। विनम्रता चली जाती है। वर्तमान में औद्योगीकरण से संपन्नता आई है लेकिन धन समाज वितरित नहीं हुआ। धनी और अधिक धनी हो गए, गरीब और अधिक गरीब हो गए। यदि संपत्ति का सम वितरण हुआ होता तो गरीब गलत विचारधाराओं में न बहते। वे नीति तथा न्याय को न छोड़ते। तिकड़म, चोर दरवाजा, पाखंड, धूर्तता, कुटिल राजनीति पर लाचारी के कारण वह विश्वास कर रहा है। वैसा ही अपना जीवन व्यतीत कर रहा है। वर्तमान जीवन की दिनचर्या में इन्हीं तत्त्वों की आवाज गूंज रही है। आवाज इतनी प्रखर हो गई है कि लोग कान बंद करके घरों में बैठे रहते हैं। हमारे दिनचर्या के आयाम इतने बृहद् हैं कि उन सब पर चर्चा करना संभव नहीं है। लेकिन शिक्षा, सिनेमा, दूरदर्शन आदि के कारण जो आदमी की दिनचर्या पर असर पड़ता है वह बताना जरूरी है।

दूरदर्शन की सभ्यता की झलक आए दिन सुनने को मिलती है। यह कहना

कि आलोचनाएं केवल उन्हीं के द्वारा होती हैं जिन्हें दूरदर्शन के कार्यक्रमों में मजा नहीं आता, गलत है। ये आलोचनाएं अपनी जगह पर सत्य हैं। हर विवेकशील व्यक्ति चिंतित है। दूरदर्शन को चलानेवाले नौकरशाह एवं उन्हें बनानेवाली वह व्यवस्था दोषी है जो इस माध्यम द्वारा प्रभु-वर्ग का हित-साधन कर रही है। दूरदर्शन की विज्ञापन नीति का विरोध सर्वत्र किया जा रहा है। इतने उपयोगी माध्यम का यह आंशिक व्यापारीकरण है। दूरदर्शन की दृष्टि में सुंदर नारी की चंचल दृष्टि दिखाकर ही उसे यथार्थ दर्शनीय कहना सर्वथा अनुचित है। दूरदर्शन के सौजन्य से अब देर रात गए फीचर फिल्में दिखाई जाती हैं। उन लोगों की दिनचर्या में क्या असर पड़ेगा जो रात्रि में एक वजे तक फिल्म देखकर सोएंगे।

नकलची शहरी तबके को ही पूरा हिंदुस्तान मान लेना बिलकुल गलत है। दूरदर्शन के कारण गांवों में आम जादमी की दिनचर्या भी दूषित हो रही है। दूरदर्शन 'फैशन सीरियल' के तथा सिनेमा के गीत सुनाने के अलावा क्या कर रहा है? राजनीतिक दांव-पेच को समझाया जाता है। सारी मानवीय कमजोरियों को उभारकर उसका प्रदर्शन किया जाता है। दक्षिण गंगोत्री पर भारतीय वैज्ञानिकों को प्रयोग करते दिखाना शिक्षाप्रद है। डॉ० चंद्रशेखर को नोबल पुरस्कार ग्रहण करते दिखाना प्रेरणास्पद है। कैप्टेन राकेश शर्मा को अंतरिक्ष यान में तैरते देखना उत्साहवर्धक है। ह्वेल के साथ चिपकी पायलेट मछलियों की कारगुजारियों को देखना मनोरंजक है। 'सारे जहां से अच्छा' की धुन को सुनकर देश-प्रेम की भावना उभरती है। लेकिन वैसे उत्साहवर्धक दृश्य, उन फूहड़ पोंगापंथी दृश्यों के सामने वहुत कम रहते हैं जो आमतौर पर दिखाए जाते हैं। चित्रहार में जो फिल्मी गाने दिखाए तथा सुनाए जाते हैं वे केवल सस्ता मनोरंजन करते हैं। युवा पीढ़ी को रोमांचक दृष्टिकोण प्रदान करते हैं। राजनीतिक हथकंडे तथा सामाजिक षड्यंत्रों को समझाया जाता है जिसे देखकर लोग बजाय कुछ समझने के दिग्भ्रमित होते रहते हैं।

हर व्यक्ति अपनी चिंतनशैली के अनुसार अपनी दिनचर्या बनाता है। उसका चिंतन यदि व्यावहारिक नहीं हो पाता तो वह लाचार हो जाता है। समाज में पांच प्रकार के चिंतक पाए जाते हैं—आदर्शवादी, समन्वयवादी, उदारवादी, विश्लेषणवादी तथा यथार्थवादी। इन सब लोगों में से यथार्थवादी चिंतक ही सफल होते हैं और उनकी दिनचर्या का रूप ठोस होता है। शेष का चिंतन केवल चिंतन-मात्र रह जाता है और उनमें व्यावहारिकता की कमी रहती है इसलिए वे अधिक सफल नहीं हो पाते।

पूरे समाज में, या यों कहें कि जितनी भी संस्थाएं होती हैं उनमें तीन तरह के लोग नजर आते हैं—निर्भीक, स्वतंत्र, उद्दंड। प्रवृत्तिवाले वे लोग जो सबको नुकसान पहुंचाने का ठेका लिए होते हैं हर क्षण मनमानी करते हैं। न तो उन्हें

समाज से मतलब है और न ही समाज के रीति-रिवाजों से। वे केवल अपनी झूठी शान लिए सबको परेशान करते घूमते रहते हैं। समाज में आज ऐसे तत्त्वों को संरक्षण मिल रहा है। उनके खिलाफ कोई भी आवाज नहीं उठाता।

दूसरी तरह के लोग वैसे होते हैं जो मानसिक रूप से नपुंसक होते हैं। उनका कोई अपना सिद्धांत नहीं होता, कोई आदर्श नहीं होता। किराए के टट्टू जैसे उनका उपयोग कोई भी कर सकता है।

तीसरी श्रेणी के वे लोग हैं जो किसी से भी तालमेल बैठा देते हैं। वे स्वार्थी होते हैं। उन्हें केवल उनकी स्वार्थसिद्धि से मतलब रहता है। सामान्यत: ऐसे लोग पहचाने जाते हैं और वे तिरस्कृत जीवन बिताते हैं। उनकी दिनचर्या लुकी-छिपी रहती है।

एक श्रेणी और है चौथी। चौथी श्रेणी के वे लोग हैं जो संन्यासी का रूप धारण कर चेहरे पर मुखौटा लगाए हुए अपनी दिनचर्या बिताते हैं। आज संन्यासी शब्द की परिभाषा बदल चुकी है। वर्तमान समय में अधिकांश संन्यासी इसी वर्ग के अंतर्गत आते हैं। परिष्कृत तरीकों से धोखाधड़ी करना एवं दलाली करने में ही ये लोग अपने जीवन का उद्देश्य पूरा हुआ समझते हैं। तुलसीदासजी ने कहा था कि 'मूड़ मुड़ाय भए संन्यासी'।

वर्तमान बुद्धिवादी युग में तर्क, तथ्य, प्रत्यक्ष प्रमाण एवं विज्ञान को प्रामाणिकता मिली है और शास्त्र, श्रद्धा एवं आप्त वचनों को अमान्य किया जाता है। इस मन:स्थिति में पनपनेवाले नास्तिकवाद एवं स्वेच्छाचार को निरस्त करने के लिए कुछ-न-कुछ तो करना ही होगा। विचारशील वर्ग का यह पुनीत कर्त्तव्य है कि वे कुछ प्रेरणा दें। मानव कितना भी धनी, वैभवशाली क्यों न हो, एक-न-एक दिन उसके जीवन में एक ऐसा क्षण आ जाता है कि वह अपने-आप से पूछता है—'जो कुछ मैं कर रहा हूं, जिस तरीके से जी रहा हूं, यही सबकुछ यथार्थ है क्या ?' जो सांसारिक सुख-भोग, दैहिक सुखों में लिप्त रहते हैं वे भी स्वयं से पूछते हैं—'क्या यही यथार्थ जीवन है ?' कहने का तात्पर्य यह है कि मानव अपने-आप को जानने-पहचानने की जिज्ञासा रखता ही है।

आज भारत को अपनी आंखें अपनी सच्ची आत्मा के प्रति खोलनी पड़ेंगी। राजनीति का अध्यात्मीकरण करना पड़ेगा। यदि अभी तक हम अंधे थे तो अब देखने की क्षमता उत्पन्न करनी पड़ेगी। समाज को करवट बदलनी पड़ेगी। दूसरों का डाला अंकुश गिरानेवाला है और अपना अंकुश उत्थानकारी है। आज प्राय: आदमी अपने ऊपर अंकुश नहीं लगाता। स्वच्छंद जौर अनियंत्रित जीवन ही उसे पसंद है इसीलिए दिनचर्या में उच्छृङ्खलता एवं रसहीनता आ गई है।

पाश्चात्य आदि भौतिक शास्त्रों का प्रवाह अंग्रेजी के साथ हमारे देश में इतने प्रबल रूप से आया कि हमारा प्रबुद्ध वर्ग उससे प्रभावित हुआ और आज की हमारी

विषाक्त दिनचर्या भी उसी के कारण है। आज की उलझनों से भरी दिनचर्या में कुछ लोग आंख बंद करके शांति पाना चाहते हैं। यदि वे आंखें खोलकर देखें कि उनके पास कौन है, कौन गरीबी और बेबसी की हालत में पड़ा है, किस रोगी और अपाहिज को सहायता की जरूरत है, तो ऐसे लोगों को अपनी शक्ति-भर सहायता देने से उन्हें असीम शांति मिलेगी। उन्हें महसूस होगा कि यही ईश्वर की सच्ची सेवा है। नर सेवा ही नारायण सेवा है।

सारी स्थापित संस्थाओं, संस्कारों एवं नियमों को तोड़ा जा रहा है। हम बिखर रहे हैं। कोई भी गतिशील नहीं है। सब गतिशून्य हैं। गतिशून्यता की कोई अवस्था नहीं है। या तो हम ऊपर उठकर आगे बढ़ते हैं या फिर पीछे जाकर मृत हो जाते हैं। जीवन का एकमात्र चिह्न है बाहर की ओर सामने जाना और फैलना। सिकुड़ना मृत्यु है। हम दूसरों का भला क्या करेंगे जबकि यथार्थ में जीवन का मुख्य उद्देश्य दूसरों का भला करना ही होना चाहिए। वही जीवन का लक्षण है। उसी मानसिक स्थिति में हम अपनी क्षुद्र सीमा से बाहर निकलते हैं, फैलते हैं, जीते हैं और बढ़ते हैं। सारी संकीर्णता, सारे विरोध, सारी स्वार्थपरता केवल धीमी आत्महत्या ही तो है जिसे आज हम कर रहे हैं। इस तरह से मनुष्य अपने को सिकोड़ने की तथा इस प्रकार समस्त विकास और जीवन पर जड़ से प्रहार करने की मर्मांतक भूल कर रहा है। वह दिशा-विहीन तो है ही, पर समाज भी दिग्भ्रमित है। ऐसी अवस्था में उसकी मृत्यु अवश्यंभावी है। आनंद, पवित्रता और पुण्य की प्रभा से प्रकाशित मुखमंडल आज कहीं देखने को नहीं मिलता। प्राय: लोगों का चेहरा अवसाद, अनैतिकता तथा पाप की रेखाओं से घिरा हुआ नजर आता है।

जीवन के सत्य के आदर्शों को हमारे पूर्वजों ने दो भागों में बांटा था—'श्रुति एवं स्मृति'। 'श्रुति' अर्थात् शाश्वत सत्य का दिग्दर्शन तथा प्रतिपादन। मनुष्य की आतमा और परमात्मा का संबंध।

'स्मृति' में जीवन-संबंधी अन्य प्रश्नों का विवेचन किया गया है; जैसे याज्ञवल्क्य मुनि की रचनाओं में जीवन के विविध रूपों का विवेचन है। मनु, जो हमारे पितामह थे, की 'मनुस्मृति' आज भी एक अमर ग्रंथ है। स्मृतिकाल में ही अवतार आदि हुए तथा जीवन-दर्शन की व्याख्या की गई। पुराण तथा तंत्र आदि में इन सबका समावेश है। आज कोई भी व्यक्ति श्रुति का स्मरण नहीं करता। उसे जानना भी नहीं चाहता। स्मृति का किसी पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। सब कुछ विस्मृत कर हम वर्तमान में केवल जी रहे हैं।

तुम ही अपने सबसे बड़े शत्रु हो और तुम ही अपने सबसे बड़े मित्र हो। जो इस तत्त्व को समझ लेगा वही अपनी दिनचर्या सार्थक बना सकेगा।

यह सोचने की बात है कि आखिर पुरातनकालीन मनुष्य था कैसा? क्या

मनुष्य का वह रूप उसी काल में था ? क्या आज का मनुष्य भी लगभग वैसा ही नहीं है ?

पहले जैसी, महाभारत में शकुनि की कुटिलता, कर्ण की सरलता, आहतभाव, महिलाओं के साथ अन्याय क्या आज दृष्टिगोचर नहीं होते ?

सामान्य मनुष्य कभी भी अलौकिक नहीं हुए हैं। उनके जीवन में पौराणिक, दैवीय, अस्वाभाविक, तर्कहीन, अपौरुषेय कुछ भी नहीं है—ये गढ़ दिए जाते हैं। वे सब उतने ही हाड़-मांस के आदमी हैं जितने हम-आप हैं—फर्क केवल आवाज सुनने का है। उनके अंतस्थल के स्तर का है। मनुष्य की सच्चाई तथा नैतिकता के अनुपात से ही उसकी आवाज में वजन आता है। उसकी वाणी, भाषा प्रांजल हो उठती है तथा वह महानता की ओर अग्रसर होता है।

६

ध्वनि प्रदूषण

ध्वनि प्रदूषण स्वास्थ्य-संबंधी एक विकट समस्या है। इस प्रदूषण के कारण भिन्न-भिन्न मानसिक तथा शारीरिक बीमारियां हो सकती हैं।

किसी माध्यम द्वारा तेज, अनियमित और कानों को बुरे लगनेवाले कंपनों के कारण उत्पन्न ध्वनि शोर कहलाती है। हथौड़े की ध्वनि, फर्श पर मेज खींचने की ध्वनि, ट्रक आदि में लगा तेज हॉर्न, ध्वनि-विस्तारक यंत्र की तेज आवाज, आटा-चक्की की सतत चीं-चीं की आवाज, कारखानों में मशीनों की गड़गड़ाहट—ये सब शोर में शामिल हैं। इस तरह की आवाजें मानव-शरीर के लिए हानिकारक हैं।

ध्वनि तेजी से भागती है। यात्रा करती है। अमेरिका में एक राक्षसरूपी बोइंग (हवाई जहाज) की उड़ान के बारे में जिन्होंने पढ़ा होगा, उन्हें मालूम होगा कि इस हवाई जहाज की आवाज से मनुष्यों को कितनी परेशानी उठानी पड़ती है। ध्वनि की गति से तीन गुना अधिक गति से यह हवाई जहाज उड़ता है। अब एक नया जहाज और बना है जिसे 'सुपर कानकार्ड' कहते हैं। इसके द्वारा जो शोर उत्पन्न होता है वह अति हानिकारक है। इसे रोकने के लिए लोगों ने न्यायालय में शिकायत की है तथा मुकदमे चल रहे हैं। विदेशों में शोर को रोकने के लिए कई तरीके अपनाए गए हैं। लेकिन हमारे देश में यह बहुत जटिल समस्या बन गई है और हमारी सरकार इसके प्रति उदासीन है।

'देखिए, जोर से न बोलिए, सिर भन्ना रहा है।' 'पता नहीं यह तेज आवाज कहां से आ रही है।' 'मन मचल रहा है। एकाग्रता नहीं हो पा रही है।' इस तरह की शिकायतें आप चाहे जहां कहीं भी सुन सकते हैं। लेकिन उसके निराकरण के लिए कोई भी नहीं सोचता।

इस युग में विज्ञान और तकनीकी विकास तो हुए हैं पर उसके साथ-ही-साथ जो अन्य हानिकारक परिणाम हुए हैं, उनपर सोचना आवश्यक है।

मन:स्थिति में पनपनेवाले नास्तिकवाद एवं स्वेच्छाचार को निरस्त करने के लिए कुछ-न-कुछ तो सोचना ही पड़ेगा।

यंत्रीकरण के कारण आज जन-जीवन में शोर का जो दबाव पड़ रहा है उसकी वियना विश्वविद्यालय, इटली के इंस्टीट्यूट ऑफ हाइजिन के प्रोफेसर टिजानो ने विस्तृत व्याख्या की है। शोर के प्राणिशास्त्रीय प्रभाव का उन्होंने बहुत अच्छा विवेचन किया है। लोगों को सावधान किया है कि यदि आज के यांत्रिक मनुष्य ने एकांत, शांति की व्यवस्था न की तो उसका भावी प्रजा पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। चिड़चिड़ी, क्रोधी, अशिष्ट, फूहड़ और दुराचारी आत्माएं जन्म लेने लगेंगी। इस दुष्प्रभाव के कारण आनेवाली पीढ़ी में दुर्गुणों का स्वयमेव विकास होता जाएगा।

यही नहीं कि शोर केवल श्रवण-यंत्रों को खराब करते हैं, वरन् मस्तिष्क, जिससे सारे शरीर का क्रिया-व्यापार चलता है, भी इससे प्रभावित होता है। रेलगाड़ी की लंबी यात्रा के बाद जब आप घर लौटते हैं तो एकदम सूना-सूना-सा लगता है। सारा शरीर शिथिल हो जाता है। उस यात्रा के समय शोर के कारण मस्तिष्क के स्नायु-तंतुओं में मंथन-सा हो जाता है। उसका ही परिणाम है कि लोगों की कार्य-क्षमता तेजी से घट रही है। स्नायविक तनाव और रक्तचाप बढ़ रहा है। दिल की धड़कनों में खराबी आ जाती है। अनिद्रा, नैराश्य, अर्धविक्षिप्त अवस्था, विशेषकर कारखानों में कार्यरत लोगों को, जो लगातार जोरों की आवाज सुनते रहते हैं, मांसपेशियों की कई तरह की तकलीफें हो जाती हैं।

शोर कई तरह का होता है। बीच-बीच में रुककर तेज-तीखी आवाज से मानव का मानसिक संतुलन टूट जाता है। वे विचलित होकर मानसिक रोगों से ग्रस्त हो सकते हैं। ऐसा शोर जो दर्द पैदा करनेवाला हो या खीभ पैदा करने वाला हो, तो बहरापन तक दे सकता है। कभी-कभी कान से सुनने की क्षमता ही पूर्णरूपेण चली जाती है। अर्ध-विक्षिप्त मानव चाहे जहां देखे जा सकते हैं। उनके कानों में एक अजीब सनसनाहट गुंजित होती रहती है। वह खोया-सा तथा बौखलाया-सा रहता है।

पृथ्वी पर व्याप्त पर्यावरण प्रदूषण की तरह शोर भी पर्यावरण प्रदूषण में सम्मिलित हो गया है; शोर भी इनसे कम घातक नहीं। इससे कानों के परदे पर असर तो पड़ता ही है, तेज शोर से धमनियां भी सिकुड़ने लगती हैं। रक्तचाप बढ़ जाता है। श्वसन-क्रिया अनियमित हो जाती है। पाचन-क्रिया गड़बड़ा जाती है। आंतों पर असर पड़ता है। मानव-शरीर के पिट्यूटरी ग्रंथि, एड्रिनिल कार्टेक्स, थाइराइड ग्रंथि और जनन-ग्रंथियों पर भी इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

अधिक तेज शोर से आंखों की ज्योति मंद पड़ती है। रात में देखने में कठिनाई होने लगती है। रंगों का भेद कर पाना मुश्किल हो जाता है और दूरी

का तथा धरातल के ऊंचे-नीचे होने का अनुमान सही-सही लगा पाना कठिन हो जाता है। सिर में चक्कर-सा महसूस होने लगता है। सारी चीजें हिलती-सी या सरकती-सी प्रतीत होती हैं। थकान, उदासी और ऊब पैदा होती है। विचारों की शृंखला टूटती है। मस्तिष्क की विद्युत् तरंगों में गड़बड़ी होने लगती है। इससे हिंसा की भावना बल पकड़ सकती है। उत्तेजनापूर्ण जीवन को ओर झुकाव बढ़ जाता है।

मंद-से-मंद ध्वनि, जो मनुष्य के कानों से सुनी जा सकती है, को शून्य 'डेसीबल' इकाई माना गया है। कानाफूसी की खुसफुस प्राय: १० से २० डेसीबल तक ही होती है। १४० डेसीबल की ध्वनि मनुष्य के कान के परदे फाड़ सकती है और उसे बहरा कर सकती है। एक सौ पचास पर तो शरीर में भारी विक्षोभ उत्पन्न हो सकता है। मृत्यु तक हो सकती है। यों तो ७० डेसीबल को ही असह्य मानकर उसके विरुद्ध शरीर विरोध करने लगता है। तेज शोर के बीच रहनेवाले लोगों की शारीरिक एवं मानसिक स्थिति मंद या तीव्र रोगों की ओर अग्रसर होती है।

यदि १०० फुट दूरी से हवाई जहाज की आवाज सुनी जाए तो उसका शोर इतना तीव्र होता है कि सिर चकराने लगता है। हवाई जहाजों के भीतर बैठे चालकों और यात्रियों को यह शोर हानिकारक न हो, इसलिए उनके भीतर ध्वनि-अवरोधक यंत्र लगे रहते हैं। तीव्र गति से हवाई जहाजों आदि की उड़ान पर रोक लगाने के लिए सर्वत्र कार्यवाही की जा रही है। इस ध्वनि का प्राणियों पर क्या प्रभाव पड़ता है, यह देखने के लिए गिनीपिग चूहों को जेट इंजन के शोर में रखा गया। कुछ ही मिनट में वे झुलसकर मर गए। तेज ध्वनियों के मानव-शरीर पर पड़नेवाले व्यापक असर के बारे में शोध किए जा रहे हैं। इतनी तीव्र ध्वनियों का आविष्कार कर लिया गया है कि उनके शोर मात्र से बारूद या पेट्रोल की तरह देखते-देखते भयंकर अग्नि-कांड हो सकता है।

आस्ट्रेलिया निवासी डॉ० ग्रिफिथ ने बताया है कि कोलाहल में रहनेवाले अपेक्षाकृत अधिक बूढ़े होते हैं। एक विशेष तरह के शोर से न्यूरोसिस, सनक आदि मानसिक बीमारियां हो जाती हैं। रेलवे कर्मचारियों, छापाखानों में काम करने-वाले लोग ऐसी बीमारियों के शिकार होते हैं। इन लोगों के सुनने की क्षमता बहुत कम हो जाती है। कई ऐतिहासिक गुफाओं में सुपर बोइंग लड़ाकू विमानों ने अपनी दहलानेवाली आवाज से दरारें पैदा कर दी हैं। लंदन के सेंटपाल गिरजाघर को 'कनकार्ड' जेट तथा कई सुपर कनकार्डों की उड़ान से खतरा पैदा हो गया है। इसकी गति, ध्वनि की गति से चार गुनी अधिक होती है। कहा तो यह जाता है कि लंदन के पार्लियामेंट भवन को भी इन हवाई जहाजों के शोर से खतरा है। उस क्षेत्र के आसपास १४० मील तक जो हृदय रोगी रहते हैं, उन्हें उस आवाज से भयंकर खतरा है। डॉक्टरों ने मिल-जुलकर एक ऐसी अपील

निकाली है कि वे हवाई जहाज उस क्षेत्र में न उड़ें।

मानव के कान २५-३० डेसीबल तक की आवाज को सहन कर सकते हैं। इससे अधिक कोलाहल जहां कहीं भी होगा वहां कान के माध्यम से मस्तिष्क में अवांछनीय असर पड़ेगा और फिर वह उत्तेजना शरीर के विभिन्न अवयवों पर अपना प्रभाव दिखाएगी तथा साइक्रोन्यूराटिक बीमारियां जन्म लेंगी। सेन फ्रेंसिसको के मेडिकल कॉलेज के शोधकर्ताओं ने ध्वनि-प्रवाह के विभिन्न परिणामों का अध्ययन किया है। निष्कर्ष यह निकाला कि विषैली जलवायु की तरह ही कोलाहलयुक्त वातावरण भी स्वास्थ्य पर घातक प्रभाव डालता रहता है।

अनभ्यस्त शोर का प्रभाव पशुओं पर क्या पड़ता है, १९६८ के आसपास एशिया के एक नगर में इसकी जांच की गई। वे पशु इन कर्कश ध्वनियों को सुनने के कारण अपनी सामान्य दिनचर्या छोड़ बैठते हैं और अनमने ढंग से विचलित होकर जीने लगते हैं। वे व्याकुल दिखते हैं। उनमें बीमारी के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगते हैं और उनकी जिंदगी में एक उथल-पुथल देखी जा सकती है। पालतू पक्षी भी इस शोर प्रदूषण से प्रभावित होते हैं। जो पक्षी पालतू नहीं होते वे कोलाहल-क्षेत्र को छोड़कर अन्यत्र अपने घोंसले बनाने लगते हैं।

अमेरिका के टेक्सास के एक शोध संस्थान 'केलियर हियरिंग एंड स्पीच सेंटर' ने बताया है कि ध्वनि-प्रतिक्रिया का इतना गहरा असर होता है कि कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों में से आधे से अधिक लोग बहरेपन के शिकार हो जाते हैं। बधिर होने के कारण उनके कार्य करने की क्षमता में कमी आती है। डॉ० ग्लोरिंग नामक वैज्ञानिक ने तो यहां तक कह दिया है कि इस शोर प्रदूषण को रोकने के लिए कारखानों के नियमों में परिवर्तन किया जाए तथा ध्वनि-प्रतिबंधक यंत्र लगाया जाए। जापान में सड़कों पर ध्वनि-प्रतिबंधक यंत्र लगाए गए हैं। कोई भी वाहन २० या २५ डेसीबल से अधिक तेजी से भागता है तो उसका चालान किया जाता है। चेकोस्लोवाकिया में कई ऐसे कारखाने हैं जहां शोररहित व्यवस्था की गई है। पाया गया है कि इन कारखानों की उत्पादन-शक्ति बढ़ गई है। शांत वातावरण में शारीरिक और मानसिक श्रम कहीं अधिक मात्रा में संभव है।

मनुष्य की जीवन-शक्ति को नष्ट करने और उसे अकालमृत्यु का ग्रास बनने के लिए बाध्य करने में शोर का बहुत बड़ा हाथ है। हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर बेरोल विलियम्स ने दीर्घकालीन पर्यवेक्षण करके बहुत उपयोगी जानकारी दी है। बड़े शहरों में सड़क के किनारे बने हुए घरों में जो लोग रहते हैं, दौड़ती हुई मोटरों की, ट्रकों की आवाज उनके दिल और दिमाग को त्रस्त कर देती है। इसीलिए वे अनिद्रा, घबराहट, आंशिक बधिरता, धड़कन, अपच तथा रक्तचाप जैसी बीमारियों से ग्रसित हो जाते हैं। चूहे जब कोलाहलपूर्ण वातावरण में रखे

जाते हैं तो वे प्रतिदिन दुबले होते जाते हैं। उनके गर्भ में जो बच्चे रहते हैं, वे किसी-न-किसी बीमारी से पीड़ित हो जाते हैं या अविकसित अंग लेकर पैदा होते हैं। यही हाल मानव का भी है। गर्भवती महिलाएं, जो शोरग्रस्त वातावरण में रहती हैं, दुर्बल होती हैं तथा रुग्ण संतान पैदा करती हैं। इन्हीं सब तथ्यों को जानते-समझते हुए आज से कुछ दशक पूर्व शिक्षण संस्थाएं, शोध संस्थान, चिकित्सा केंद्र तथा अन्य साधना-स्थल शहर की आबादी से दूर स्थापित किए जाते थे। वर्तमान समय में बढ़ती आबादी के कारण ये सुविधाएं नहीं मिल पा रही हैं।

'केलियर हियरिंग एंड स्पीच सेंटर' ने कई शोध की हैं। उसने सिद्ध किया है कि अधिक शोर से आदमी की कार्य-क्षमता एवं सहनशीलता घट जाती है। बुलडोजरों से जब ऊबड़-खाबड़ जमीन समतल बनाई जाती है तो आसपास के लोग इसकी आवाज से कांप उठते हैं। आसपास यदि मुर्गी फार्म हो तो उन मुर्गियों पर उसका हानिकारक प्रभाव पड़ता है। पक्षियों के पंख तक झड़ जाते हैं। उनकी शक्ल तक बदल जाती है।

शरीर के कोमलतम तंतुओं पर शोर का तीक्ष्ण प्रभाव पड़ता है। ध्वनि के उत्तेजत्व (डेसीवल) के अनुपात के मुताबिक मस्तिष्क पर विभ्रांत तथा अशांत करनेवाला कुप्रभाव है। यदि यह उत्तेजत्व बराबर सतत रूप से बना रहे तो आदमी बधिर भी हो सकता है। शोर के कारण शरीर पर दूषित तत्त्व सक्रिय हो उठते हैं। चिंतनधारा स्पष्ट नहीं रह पाती। शंका और संदेह से आदमी घिर जाता है।

विदेशों में लोगों ने रात्रि में जेट, बोइंग हवाई जहाज आदि के भयंकर दुष्प-रिणामों को समझा है। उनका कहना है कि कुछ लोगों की सुविधा के लिए लाखों आदमियों की नींद क्यों बिगाड़ी जाती है। उस शोर को रोकने के लिए उपाय ढूंढ़े जा रहे हैं।

वातावरण में शोर की न्यूनाधिकता के कारण वृद्धजनों के कानों पर बहुत बुरा असर पड़ता है। परमाणु बम से हम फौरन मर जाते हैं। पर शोररूपी बम हमें रगड़-रगड़कर समाप्त करता है। वातावरण में शोर जिस मात्रा में मौजूद है उससे यह कहा जा रहा है कि आगे-पीछे संक्रामक रोग उत्पन्न हो सकते हैं। विषाक्त वायु की ही तरह शोर भी मनुष्य के जीवन को विषाक्त कर रहा है। एक वैज्ञा-निक जेम्स फ्लूगार्ड की भविष्यवाणी है कि शोर की वर्तमान अभिवृद्धि अगले कुछ वर्षों में बधिरों की ऐसी पीढ़ी पैदा करेगी जो तीस वर्ष के होते-होते अपनी आधी श्रवण-शक्ति खो बैठेगी।

कैलीफोर्निया की जीवन अनुसंधान संस्था द्वारा शार्क मछलियों पर शोर का प्रभाव आजमाया गया। पानी में तेज ध्वनि पैदा की गई। कई ध्वनि विस्तारक यंत्र एक साथ चला दिए गए। मछलियां उन्हें सुनकर व्याकुल होकर इधर-उधर

भागने लगीं। वे एक-दूसरे पर हमला करने लगीं। जब वह शोर असह्य हो गया तो चट्टानों से सिर पटक-पटककर अपनी जान गंवा बैठीं। फ्रांस में भी ऐसे कई प्रयोग किए गए हैं। समाज में जो आज हृदयरोग के इतने अधिक मरीज पाए जाते हैं उसका एक कारण कोलाहल भी है। आम आदमी जो सनकी हो रहा है उसके पीछे भी यही कारण है कि वह निरतर किसी न किसी शोर से संतप्त है। जब मनुष्य अधिक व्यग्र हो उठता है तो वह अपराध-वृत्ति का भी शिकार हो जाता है। आत्म-शांति के लिए वह कुछ भी करने को तत्पर रहता है। ध्वनि-तरंगें, विशेषकर संगीत की, इतनी मधुर लगती हैं लेकिन वे ही तरंगें जब-जब शोर का रूप ले लेती हैं तो भयानक हो जाती हैं।

हमारे पूर्वजों ने वर्ष में एक बार किसी तीर्थस्थान पर जाकर शांति पाने की व्यवस्था बना रखी थी। उसके पीछे यह भी रहस्य छिपा हुआ है कि कम-से-कम उन दिनों में कोलाहल से वे दूर रहें। देश के प्रायः सभी तीर्थस्थान सुरम्य पर्वतों पर स्थित हैं तथा मनोहर दृश्यों से परिपूर्ण हैं। प्रति वर्ष क्या अब तो हम मरते दम तक तीर्थस्थान जाने की बात ही नहीं सोच सकते। उन तीर्थस्थानों की सबसे बड़ी खासियत तो यह है कि वहां जमाने से ऋषियों-मुनियों की आत्माओं की आवाज, उनके विचारों की तरंगें वातावरण में गूंज रही हैं। उन स्थानों पर जाते ही परोक्ष रूप से उन सबका प्रभाव अपने ऊपर दिखने लगता है।

इस ध्वनि प्रदूषण की समस्या से सरकारें परिचित हैं। राज्यस्तरीय ध्वनि प्रदूषण रोकथाम कमेटियों की स्थापना कई राज्यों में हुई है। पर अभी वे निष्क्रिय हैं। सरकार पर वैसा ही दबाव डाला जाए जैसे बुरे-से-बुरे संकट के निवारण के लिए दबाव डाला जाता है तब शायद कुछ परिणाम निकले। अन्यथा वही हालत होगी जो अन्य समस्याओं की हो रही है। सर्वत्र अणु-युद्ध की तैयारी चल रही है। अणु-परीक्षण से रेडियो सक्रिय तत्त्व जो निकलते हैं वे विषैले होते हैं। उन परीक्षणों को करते समय जो शोर होता है वह अपने किस्म का एक ही है। उस क्षेत्र के निवासी भय से कांप जाते हैं। हवा, पानी और वनस्पतियों के सहारे ये रेडियो तत्त्व शरीर में प्रवेश करते हैं। उच्च रक्तचाप, कैंसर जैसे भयानक रोग उत्पन्न होते हैं।

डॉ० रेल्फ कॉक ने कहा है कि मनुष्य में रेडियो सक्रियता सहने की जितनी शक्ति है उसका उल्लंघन परीक्षण की वर्तमान श्रृंखला करती चली जा रही है। यदि यह सिलसिला न रुका तो इस परीक्षण-युद्ध के विनाश-गर्त में हम गिरकर ही रहेंगे। प्रत्येक अणु-परीक्षण करीब ५० हजार मनुष्यों की अकालमृत्यु का कारण बनता जा रहा है। रेडियो के विषैले प्रभावों से जो खामियां उत्पन्न होती हैं वे पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलेंगी। वैज्ञानिक इस तथ्य से परिचित हैं फिर भी आपस की स्पर्धा के कारण वे इस दृष्टिकोण से सोचना ही नहीं चाहते। पूरे मानव-समाज

को सामूहिक अंतर्राष्ट्रीय आवाज के उठने से ही राहत मिलेगी। जैसे कि एड्स की बीमारी की रोकथाम के लिए विश्व के सारे संपन्न देश एकजुट होकर उसके निवारण का तरीका ढूंढ़ रहे हैं।

ध्वनि प्रदूषण हमारी वर्तमान सभ्यता की देन है। चारों तरफ यातायात इतना बढ़ गया है कि इस ध्वनि प्रदूषण को अब हम रोक ही नहीं सकते। सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह है कि मधुमक्खी के छत्ते की तरह आबादी बिलबिला रही है और उसकी आवाज तथा यातायात की आवाज मिल-जुलकर जीवन को मुश्किल बना रही है।

७

मौन की आवाज

हमारे मनीषियों ने पराशक्ति के अस्तित्व एवं रहस्य को जाना था। विज्ञान भी अब पराशक्तियों के अस्तित्व को मानने लगा है।

कभी-कभी ऐसा क्यों होता है कि बेटे की कार दुर्घटनाग्रस्त होते ही हजारों किलोमीटर दूर बैठी मां का हृदय अकुला जाता है। लोगों को स्वप्न में आने वाली घटनाओं का अग्रिम ज्ञान हो जाता है। किसी शुभ या अशुभ घटना का पूर्वाभास शरीर के दाएं या बाएं भाग के फड़कने से हो जाता है। अध्यात्मवादी अपनी अलौकिक शक्तियों के अनायास प्रदर्शन से संसार को अचंभे में डाल देता है। इसीलिए ऐसी घटनाओं एवं अनुभवों को पारलौकिक पराशक्ति, अतिमानवीय की संज्ञा दी जाती है।

वैज्ञानिक ग्रेटे ने चेतावनी दी थी कि वैज्ञानिक अध्ययन की विधि ऐसी होनी चाहिए जो किसी भी वस्तु में और कहीं भी प्रकृति को उसकी समग्रता में स्पष्ट करे, खंड-खंड रूप में नहीं। प्रकृति में प्रदर्शित व्यापक अनेकता के पीछे छिपी मूल एकता को समझने का प्रयत्न अब जारी है। ऊपर लिखी घटनाओं की तरह स्वतंत्र लगते हुए भी एक-दूसरे से जुड़ी लगने वाली कई घटनाएं होती रहती हैं।

वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुंचने लगे हैं कि प्रकृति को समझने के लिए उसके अनेकानेक रूपों के पीछे छिपी एक ही स्रोत शक्ति को पहचाना जाए। वैज्ञानिक यह मानते हैं कि प्रकृति के सभी क्रिया-कलापों के लिए चार आधारभूत बल उत्तरदायी होते हैं—गुरुत्व बल, विद्युत् बल, चुंबकीय बल, दुर्बल न्यूक्लीय बल तथा प्रबल न्यूक्लीय बल। सर्वप्रथम महान् वैज्ञानिक मनीषी आइंस्टाइन ने एक संभावना व्यक्त की कि ये चारों आधारभूत बल संभवतः एक ही बल के चार रूप मात्र हैं, जिसे महान् एकीकरण सिद्धांत कहा जाता है। यदि सिद्ध हो गया कि चारों आधारभूत बल वस्तुतः एकीकृत हैं और एक ही बल के चार रूप हैं तो विज्ञान के क्षेत्र में क्रांतिकारी संभावनाएं प्रकाश में आएंगी। इसका नतीजा यह

होगा कि एक सीधी निष्पत्ति होगी कि इस विश्व में एक अद्भुत सममिति (सुपर सिमेट्री) विद्यमान है। यह सममिति बहुआयामी भी होगी। संभवतः ग्यारह आयामों वाली, जबकि अभी तक हमारा ज्ञान केवल तीन आयामों तक सीमित है।

यदि ऐसा होता है तो मनुष्य को ऐसी संजय दृष्टि प्रदान हो जाएगी जो अंततः उसे अलौकिक कही जानेवाली घटनाओं एवं पराशक्ति की सीधी-सरल वैज्ञानिक व्याख्या देने में सक्षम हो जाएगी। नकारात्मक शब्द की कोई कीमत ही नहीं रहेगी। सकारात्मक शब्द व वाणी का सही रूप जाना जा सकेगा।

दो-तीन दशक पूर्व ही प्रोटोन को क्षयशील कहने का साहस किसी में नहीं था। लेकिन आज सब मानने लगे हैं। उसी तरह ग्यारह आयामी संभावना भी आगे-पीछे सिद्ध हो जाएगी तथा सकारात्मक शब्द का सही रूप जाना जा सकेगा। पराशक्ति के अस्तित्व को ठीक-ठीक समझा जा सकेगा।

कवियों का निजी सौंदर्य-बोध होता है। उनके अंदर मौन की टकराहट या आहट से सौंदर्य की एक नई अनुभूति उभरती है। रघुपति सहाय यानी फिराक गोरखपुरी की शायरी को लोगों ने आहटों की शायरी कहा है। कहीं महबूब की आहट है, कहीं विश्व की और कहीं उनकी मनःस्थितियों की। फिराक साहब ने अपनी रचना-प्रक्रिया के बारे में स्वयं कहा था, "अकसर मैं मौन और आवाज के संबंधों की उधेड़-बुन में पड़ा रहता हूं। सन्नाटे की आवाज खोजता हुआ या शोर-गुल का सन्नाटा पकड़ता हुआ।"

प्रत्येक सतर्क और चेतनशील कवि मौन की आवाज में सारी आवाजें सुनने का प्रयास करता रहता है। जब दुनिया सोती रहती है तब ऐसे कवि जागकर जिंदगी के रहस्यों के बारे में सोचते रहते हैं। रातें उनके लिए काफी रहस्यमय और अर्थपूर्ण होती हैं। कवि का दर्द कोई नहीं जानता। कवि जीवनपर्यंत दर्द से उलझते, अपने दर्द को पहचानने और शब्द देने की कोशिश में लगा रहता है। फिराक गोरखपुरी जो हमारे समय के दर्द के सबसे बड़े शायर थे, को मैंने कई बार महफिलों में सुना है। उनकी हसीन शायरी डबडबाई आंख लिए लेकिन फिर भी मुस्कराती हुई, मौन रहते हुए भी अत्यंत मुखर होती थी, सीने के आर-पार हो जाती थी।

मौन की आवाज सुनकर ही अंदर का इनसान जागता है। ऐसी आवाज जब मानव को सुनाई पड़ने लगती है, तब वह अपने जीवन की बुराइयों को दूर करने की सोचता है। मानव-जीवन की सचाइयों को समझना चाहता है। आत्मा का सही रूप जानना चाहता है। यह ज्ञान उसे अंदर से ही प्राप्त होता है। जीवन की बुराइयों तथा वीभत्स स्वरूपों को उस प्रकाश से देखना चाहता है जो मौन की आवाज से निकलते हैं। निकृष्ट प्यार तथा निकृष्ट संबंधों से छुटकारा पाना

चाहता है और उस क्षण उसकी आत्मिक शक्ति उसकी सहायता करती है। वह उन प्रलोभनों से छुटकारा पाना चाहता है।

तात्पर्य यह है कि मनुष्य जिस ओर, जहां भी सत्य, शिव और सुंदरम् के साथ सद्गुणों का दर्शन करता है, उसकी आत्मा में वैसा बनने की प्यास जाग उठती है। उसे उन दृश्यों, उन गुणों और उन महानताओं से तादात्म्य अनुभव होने लगता है। उसकी वह कामना, जिज्ञासा अथवा इच्छा उसकी आत्मीयता की ही द्योतक होती है। वास्तविकता यह है कि वह आकर्षण, वह आत्मीयता उस दृश्य की नहीं होती जिसे वह बाहर देखता है। उसकी सारी सौंदर्यानुभूति उसकी अपनी अंतरात्मा की होती है जो दृश्य का अवलंबन पाकर स्फुरित हो उठती है। और जिसे वह अज्ञानवश बाह्य उपकरणों में मानता है उसी आंतरिक सौंदर्य और आनंदानुभूति को बिना किसी उपादान अथवा आनंद के देखना और पाना आत्म-साक्षात्कार है।

जब आदमी पर कोई महान् संकट आ जाता है या कोई धर्मसंकट आ जाता है या ऐसी कोई समस्या आ जाती है जिसका कोई निवारण नहीं सूझता, उस समय मानव की आंतरिक शक्ति उसकी सहायता करती है। बशर्ते मानव यह समझे और जाने कि आंतरिक शक्ति क्या होती है। मनुष्य के जीवन की तीन परिधियां हैं—आत्मिक, बौद्धिक तथा दैहिक। आत्मिक शक्ति बड़ी प्रबल होती है। हमारे शास्त्रों में इसके उदाहरणों की कमी नहीं है। जब रणभूमि में राम और लक्ष्मण नागपाश में फंस गए, त्रिजटा ने सीताजी को अशोकवाटिका में बताया कि राम के प्राण संकट में हैं तो सीताजी ने अपनी आत्मिक शक्ति की ओर निहारा तथा मां जगदंबा की प्रार्थना शुरू कर दी और धीरे-धीरे राम और लक्ष्मण पर आया संकट दूर हो गया।

दसवीं शताब्दी के आसपास योगमत बहुत सफल हो गया था। उन दिनों के जैन, बौद्ध, शाक्त, शैव आदि विभिन्न संप्रदाय साधकों की भाषा में एक ही प्रकार के विचार घूम-फिरकर आ जाते हैं। दुराचार का विरोध करना, चित्त-शुद्धि पर ध्यान देना, शरीर को समस्त साधनाओं का आधार समझना और समरस भाव प्राप्त करके स्वसंवेदन आनंद के उपभोग को ही चरम लक्ष्य बताया जाता था। उदाहरण के लिए, जैन साधक जोइंदु कहते हैं कि देवता न तो देवालय में है न शिला में है, न चंदन प्रभृति लेप्य पदार्थों में है; वह अक्षय निरंजन ज्ञानमय शिव तो समचित्त में (समरसीभूत चित्त) वर्तमान है। उसकी उपलब्धि मौन की आवाज से ही संभव है। मौन सत्य शोधक के लिए बड़ा सहायक होता है। मौन की आवाज अर्थात् परावाणी अर्थात् अनहदनाद वैखरी शब्द का स्थूल रूप है।

वाणी के चार भेद हैं—परा, पश्यंती, मध्यमा और वैखरी। सृष्टिक्रम में शब्द परावाणी से वैखरी की ओर चलता है। साधन क्रम में शब्द की धारा उलट

जाती है। उसकी गति क्रमशः वैखरी से मध्यमा और पश्यंती के भीतर होती हुई परावाणी की ओर जाती है। उस अवस्था में वागेंद्रिय के द्वारा उसका उच्चारण होता है और श्रोत्रेंद्रिय के द्वारा वह सुना जाता है। यह कार्य साधक के संकल्प और प्रयत्न द्वारा होता है। धीरे-धीरे जब यह अंशु और मानस जप का रूप धारण कर लेता है, तब एक ऐसी अवस्था आती है जबकि बिना उच्चारण किए हुए मंत्र आप-से-आप भीतर-ही-भीतर स्फुरित होता रहता है। यही साधक का अजपा जप है। इसमें न तो संकल्प है और न ही प्रयत्न है।

हर एक व्यक्ति के लिए यह संभव नहीं कि वह मौन की आवाज सुन सके। इसके लिए साधना तथा आत्म-शुद्धि की आवश्यकता है। अंतस्थल की आवाज मौन की आवाज है। यह भयंकर पैनी और प्रबल होती है। जो भी इस आवाज को सुन लेता है उसका व्यक्तित्व महान् हुए बिना नहीं रह सकता। आज का आदमी इस मौन की आवाज को सुनकर अनसुनी कर रहा है। यही इस युग की जटिल समस्या है। इस कथन में विरोधाभास स्पष्ट है। जब कोई चुप है, शांत है, तब ध्वनि निकलने का प्रश्न ही नहीं उठता।

यह भी सच है कि मौन आवाज कान के परदों से नहीं बल्कि हृदय व मस्तिष्क से सुनी जाती है। यह एक चरम आध्यात्मिक अवस्था है। परंतु प्रतिक्षण मनुष्य में यह आवाज स्वाभाविक रूप से आती रहती है जिसे अंतरात्मा की आवाज कहते हैं। साधु-संतों ने, हमारे ऋषि-मुनियों ने यह आवाज सुनी थी और इसीलिए अपने आलोकित मन से उन्होंने महान् रचनाएं लिखी हैं। धार्मिक अराजकता के आज के युग में सर्वसाधारण के हृदय में सत्य एवं सदाचार का भाव जाग्रत् कर सच्ची शांति लाना कठिन समस्या है। कबीर ने बहुत सोच-विचारकर ऐसे प्रश्नों की तह तक जाने का प्रयत्न किया था। उन्होंने सबके लिए एक नित्य एवं शाश्वत सत्य के अस्तित्व का प्रतिपादन किया था!

कबीर ने कहा है कि—

"कथता बकता सुरता सोई, आप विचारै सो ज्ञानी होई।"

तात्पर्य यह है कि जीवन के प्रत्येक क्षण में मौन की आवाज पथ-प्रदर्शन का काम करती है। ज्ञानी व्यक्ति वही हो सकता है जो स्वयं विचार करे और अंतरात्मा की आवाज को सुने। एकमात्र एवं निरपेक्ष परम तत्त्व के अस्तित्व में विश्वास करना ही जीवन को सही दिशा देना है।

सुरम्य वातावरण तथा सूची-भेद्य शांति किसे नहीं भाती। उन्हीं क्षणों में मनुष्य अपनी ओर झांकता है। यदि उसका विवेक और योग-बुद्धि दोनों जाग्रत् हैं तो वह उद्वेलित हो जाता है। ऊहापोह के भंवर में वह गुनगुना उठता है। एकांत में बैठकर शांत चित्त से विचारमग्न हो जाता है। उसके अंदर कई कामनाएं जागती हैं और वह चुपके-चुपके सुनता है—

"क्या बताएं कामनाएं एक आएं एक जाएं।
एक कहती कामिनी हो कामिनी भी दामिनी हो।
मान करना जानती हो, मानिनी हो हम मनाएं।

आदमी का मन कितना अधीर रहता है। वह कैसी आवाजें सुनता रहता है। ध्यान तथा मौन धारण करके आत्म-संयम को तीव्र बनाया जा सकता है। बिना आत्म-संयम के न तो आदमी की प्रगति संभव है और न ही समाज की। वह सदैव अनिश्चितता के वातावरण में रहता है।

मौन की आवाज एक तरह से आध्यात्मिक शक्तियों को जन्म देती है। महात्मा गांधी का मौन व्रत कितना विलक्षण परिणाम देता था, यह सबको मालूम है। वे भोग में जीवन की सार्थकता नहीं देखते थे। सेवा-धर्म ही उनके लिए महान् था। वह ईश्वर-प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन सेवा में ही देखते थे। ऐसा सब मानते हैं कि अभी भी ऐसी आत्माएं हमारे समाज में हैं। 'परोपकाराय सतां विभूतः' के सिद्धांत को मानने वाले लोग अभी भी हैं। उन्हीं के पुण्य प्रताप से समाज टिका हुआ है। जैन साधु सायंकाल होते ही मौन धारण कर लेते हैं। उस मौन की अवस्था में मानव क्या नहीं पा सकता। एक कवि हृदय जब मौन होकर सोचता है तो वह घंटों एकांत में बैठा प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा करता है। कोई अज्ञात आकर्षण उसके भीतर एक अव्यक्त सौंदर्य का जाल बुनकर उसकी चेतना को तन्मय कर देता है। अंदर ही अंदर वह कुछ सुनता है जिसे परावाणी कहा जाता है। जब कभी वह आंखें मूंदकर लेटता है, वह दृश्य-पट चुपचाप उसकी आंखों के सामने घूमा करता है।

अंग्रेजी साहित्य के महान् कवि वर्ड्सवर्थ प्रकृति के उपासक थे। उनका कहना था, "जब मैं अपनी आरामकुरसी पर शून्य मस्तिष्क से या उदास चित्त से बैठता हूं तब वे 'डेफोडिल्स' (एक तरह के फूल) जिन्हें कि मैंने वर्षों पूर्व देखा था, मेरी अंदर की आंख में कौंधते हैं। यह अकेलेपन का वरदान है। और उस क्षण मेरा हृदय आनंदातिरेक से लिप्त होकर उन्हीं फूलों के साथ नाच उठता है। मैं पुष्पों की आवाज सुनने लगता हूं। शांतिमय क्षणों में हमारे अंदर की शक्तिशाली भावनाएं उभरती हैं तथा स्मरण में आती हैं। शांति के क्षण मनुष्य के लिए वरदान-स्वरूप होते हैं।"

इन्हीं कल्पनामय भावनाओं तथा सौंदर्य से कवि कविता को जन्म देता है। उसकी कल्पना, उसके भाव जितनी गहराई तक जाते हैं उसी अनुपात से कविता निःसृत होती है और महान् गहराई में काव्य का सृजन हो उठता है। कवि कालिदास, सुमित्रानंदन 'पंत', जयशंकर प्रसाद, 'निराला', ये सब इसी मौन आवाज के पुजारी थे। महादेवी वर्मा का अमर काव्य 'यामा' भी इसका एक ज्वलंत उदाहरण है। रवींद्रनाथ टैगोर की 'गीतांजलि' इसी मौन आवाज की

प्रक्रियास्वरूप निःसृत हुई थी। प्राकृतिक सौंदर्य का प्रेम विश्व के अन्य कवियों को भी आकर्षित करता रहा है। सुमित्रानंदन पंत ने गुनगुनाया है—

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले तेरे बाल जाल में, कैसे उलझा दूं लोचन।

सुमित्रानंदन पंत ने प्रकृति को अपने से अलग सजीव सत्ता रखनेवाली नारी के रूप में देखा है—मौन के क्षणों में ही मन वर्तमान समाज की कुरूपता से कटकर भावी समाज की कल्पना की ओर प्रभावित होता है। बह्नि, बाढ़, उल्का, झंझा के भीषण प्रहार से मनुज कलेवर बच सकेगा क्या? मौन के क्षणों में ही ऐसे प्रश्न हृदय के अंदर उत्पन्न होते हैं। मौन की आवाज सुननेवालों को ही प्रकृति की महत्ता पर विश्वास जगेगा। उसके व्यापारों में पूर्णता का आभास मिलेगा।

स्वामी विवेकानंद तथा रामतीर्थ ने प्रकृति-प्रेम को समझते हुए भी प्राकृतिक दर्शन के ज्ञान और विश्वास में अभिवृद्धि की थी। उन लोगों के मौन की आवाज को सारे विश्व ने सुना है तथा पढ़ा है। मौन के क्षणों में कभी-कभी मानय रागतत्त्व में मंथन पैदा हो जाता है। उसके विचार-प्रवाह की दिशा बदल जाती है। वह नैराश्य तथा उदासीनता का शिकार हो जाता है। जन्म के मधुर रूप में मृत्यु दिखाई देने लगती है। वसंत के कुसुमित आवरण के भीतर पतझड़ या अस्थि-पंजर दिखने लगता है।

मौन की भाषा एक रूप में नहीं, कई रूपों में सुनी जाती है। मौन की आवाज को बोधगम्य बनाने के लिए मैंने इसका वर्णन चार प्रकार से किया है—आध्यात्मिक मौन की आवाज, साहित्यिक या व्यावहारिक एवं शृंगारिक मौन की आवाज, तांत्रिक लोगों की भी एक विशेष मौन की आवाज होती है। आध्यात्मिक मौन की आवाज के एक-से-एक उदाहरण हैं।

राजकुमार सिद्धार्थ केवल एक बार ही अपनी अनुकूल परिस्थितियों तथा प्रिय वातावरण से निकलकर बाहर फैले हुए संसार में आए। उन्होंने एक रोगी, वृद्ध तथा मुर्दे को देखा और अनुभव किया कि यह संसार वास्तव में दुःख तथा दर्दों से भरा हुआ है। उनका यह अनुभव सत्य, यथार्थ एवं वास्तविक था। इस अनुभूति तथा ज्ञान ने उन्हें इतना कातर कर दिया कि आखिर वे संसार का दुःख दूर करने का उपाय खोजते-खोजते राजकुमार सिद्धार्थ से वैरागी बुद्ध बन गए। स्वार्थहीन घोर तपस्या तथा त्याग के फलस्वरूप उनका व्यक्तित्व विशाल हो गया। आत्मज्ञान हो जाने के बाद, मौन की आवाज सुन लेने के बाद उनका व्यक्तित्व विशाल हो गया। उनके मुंह पर सदैव प्रभामंडल चमकता रहता था। उनकी इस आध्यात्मिक शक्ति का प्रभाव सब पर पड़ता था।

शुकदेव बारह वर्षों तक मां के गर्भ में रहने के बाद इस पृथ्वी पर प्रकट हुए

थे। जन्म के पूर्व शुकदेव ने अपने पिता से यह वचन ले लिया था कि वे उन्हें दैहिक माया-मोह के जाल में नहीं फंसाएंगे। अतएव पैदा होते ही शुकदेव समाधि के लिए जंगल की ओर जाने लगे। पिता होने के नाते व्यास से न रहा गया। वह कातर स्वर में विलाप करते हुए शुकदेव को वापस लौटाने के लिए उसकी ओर भागे। व्यास ने उन्हें पुकारा। परंतु शुकदेव का आत्मोत्कर्ष इस बिंदु तक पहुंच गया था कि पिता के विलाप का उनपर कोई असर न हुआ। वह गुफा में जाकर समाधिस्थ हो गए। लेकिन उस विलाप का प्रति-उत्तर वृक्षों ने दिया। यह बताया कि शुकदेव समाधि में चले गए हैं। तब व्यास ने विरह से व्याकुल होकर ऐसे ममत्व-भरे श्लोक कहने शुरू किए कि पुत्र के संस्कार जाग्रत् हो उठे। पिता की वेदना और ममत्व को समझकर शुकदेव द्रवित हो गए। व्यासजी का ममत्व अंतस्थल की वेदना से उत्पन्न हुआ था। पिता का वात्सल्य शुकदेव की आध्यात्मिक समाधि से भी अधिक प्रबल निकला। शुकदेव के हृदय में भी पिता के प्रति जो ममत्व और प्रेम की वृत्तियां थीं, वे सजीव थीं। उनकी आध्यात्मिक वृत्तियों की अपेक्षा प्रेम की वृत्तियां प्रबलतर थीं। रूढ़िजनित शुकदेव का वैराग्य उस वेदनाशक्ति प्यार की ध्वनि से टूट गया। यदि शुकदेव का वैराग्य ज्ञानजनित होता तो पिता के ममत्व को उसी तरह जीत लेता जैसाकि गौतम के वैराग्य ने शुद्धोधन के ममत्व को जीत लिया था।

एक वृक्ष पर मैथुनरत क्रौंच का जोड़ा ऋषि वालमीकि ने देखा। व्याध के बाण के द्वारा नर क्रौंच को मारे जाते हुए देखकर वृक्ष की शाखा पर स्तब्ध होकर बैठी हुई मादा क्रौंची की आवाज सुनकर बालमीकि के मुख से जो कविता निःसृत हुई वह आदि कविता कहलाई और वालमीकि उसी के कारण आदिकवि कहलाए।

शंकराचार्य को दिग्विजय के समय भिन्न-भिन्न प्रकांड पंडित मिलते थे; जैसे मंडन मिश्र आदि। वाद-विवाद होता था लेकिन एकात्म नहीं हो पाता था। शंकराचार्य के मौन धारण कर बैठ जाने पर उनके समक्ष जितने भी शिष्य उपस्थित रहते थे, भले ही वे ६० या ७० वर्ष की आयु के हों, उन सबका शंकराचार्य के दर्शन से ही संशय छिन्न-भिन्न हो जाता था। शंकराचार्य के मौन की आवाज इतनी मुखर होती थी कि सब विरोधी मान जाते थे।

चित्रंवटतरोर्मूले वृद्धाशिष्याः गुरूर्युवा,
गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्याः संछिन्नसंशयाः।

सीता स्वयंवर के समय भगवान् राम लक्ष्मण के साथ वाटिका में घूम रहे थे। वहां उन्होंने सीताजी को देखा। स्वयंवर होने वाला था। राम ने लक्ष्मण से कहा—

फड़कहिं सुभग अंग सुनु भ्राता।

अर्थात् कोई शुभ होनेवाला है। भगवान् राम को भी मौन की आवाज सुनाई पड़ी।

जब राम-लक्ष्मण-सीता वनवास के लिए जा रहे थे तब निषादराज ने इन तीनों को नाव में बैठाकर गंगा पार पहुंचाया था। गंगा नदी पार कर लेने के बाद श्रीराम निषाद को कुछ देना चाहते थे। सीताजी ने उनके मौन की आवाज पहचानी—

"पिय हिय की सिय जाननि हारी,
मणि मुंदरी मन मुदित उतारी।"

कलास पर्वत मौन रूप से चिरंतर काल से स्थित है। उसके ऊपर हिम की परतें सफेद संगमरमर की तरह जमी हुई हैं जिन्हें देखकर कालिदास को बर्फ की शीतलता अनुभूत नहीं हुई अपितु शिव के दैनिक अट्टहासों का राशिभूत तथा घनीभूत स्वरूप दिखाई पड़ रहा है। कैलास तो मौन है लेकिन कालिदास को शंकर भगवान् की हंसी की आवाज सुनाई पड़ी। भगवान् शंकर कालिदास के आराध्यदेव थे।

कालिदास द्वारा लिखित 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' में जब दुष्यंत शकुंतला से गांधर्व-विवाह करके लौटे तब महल में पहुंचने पर मुनि दुर्वासा के श्रापवश उन्हें उस घटना का खयाल न रहा। वह उस घटना को सर्वथा भूल गए। अपने अंत:पुर में पहुंचकर सुखपूर्वक रहने लगे। तभी हंसपदिका के द्वारा गाए जानेवाले एक विरह गीत को सुनकर उनके हृदय में जो व्याकुलता-उद्विग्नता तथा छटपटाहट होती है, उसके कारणों को राजा दुष्यंत सोचकर भी खोज नहीं पा रहे हैं। तथापि शकुंतला से किए हुए प्रणय-संबंध, जो संस्कार रूप में उनके हृदय में स्थिर थे, अपनी मौन आवाज उसे देते हैं। और इसीलिए उसे विवश होकर यह कहना पड़ता है कि रमणीय वस्तुओं को देखकर और मधुर शब्दों को सुनकर यदि कोई सुखी व्यक्ति व्याकुल हो उठे तो निश्चित रूप से वह अपने चित्त में संस्कार रूप से स्थिर जन्मांतरीय प्रेम-संबंधों को स्मरण करता है।

सीताजी अशोक वाटिका में ठहराई गई थीं। राम की आज्ञानुसार हनुमान सीताजी का पता लगाते-लगाते अशोक वाटिका में पहुंचे। जिस स्थान पर सीताजी बैठी थीं उसके पास के वृक्ष के ऊपर हनुमान आकर बैठ गए। उन्होंने वृक्ष पर से राम के द्वारा दी हुई मुद्रिका सीताजी के पास फेंक दी। सीताजी उस मुद्रिका को देखकर विह्वल हो गईं। उनकी व्याकुलता को देखकर हनुमान वृक्ष से नीचे उतर आए।

"सीता मन विचार कर नाना।
मधुर वचन बोले हनुमाना॥"

हनुमान ने श्रीराम का संदेश सीता को सुनाया—

"तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा।
जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं।
जानु प्रीति रसु एतनहि माहीं॥"

मेरा मन सदैव तुम्हारे पास रहता है। इस तथ्य से तुम जान सकती हो कि हम दोनों के बीच कितना प्रेम है। मनोवैज्ञानिक भाषा में इसे दूर-संवाद कहते हैं। परवर्ती किसी कवि ने हनुमान के द्वारा राम के निम्नलिखित संदेश को भी व्यक्त कराया है।

"तुम पूछत कह मुद्रिके मौन होत यहि नाम।
कंगन की पदवी दई, तुम बिन या कह राम॥"

अर्थात् राम ने कहा है कि अब यह मुद्रिका नहीं रह गई है, अपितु यह मुद्रिका मेरी कंगन बन गई है। इस नामांतरण के द्वारा राम ने अपने प्रेम की उत्कंठा और विरह की व्यथा-जनित दाह और उस दाह से उत्पन्न कृशता को व्यक्त किया है। कहने का तात्पर्य यह है कि राम इतने सूख गए हैं कि अंगूठी उनकी कलाई में आ जाती है।

डॉ० बरटेंड रसेल एक महान् दार्शनिक थे। उन्होंने मौन की आवाज का एक अद्भुत उदाहरण दिया है। वह जिस शहर में रहते थे वहां पर एक बहुत बड़ा पुस्तकालय था। जिस समय बरटेंड रसेल पुस्तकालय में पढ़ने जाते थे उसी समय एक दूसरा व्यक्ति भी वहीं पुस्तकें पढ़ने आता था। इन दोनों व्यक्तियों का पुस्तकालय में आना-जाना करीब ४० वर्षों तक चलता रहा। लेकिन उन दोनों ने आपस में कभी भी बातचीत नहीं की। एक दिन बरटेंड रसेल ने सुना कि उनके उस मित्र की मृत्यु हो गई है। वे सहसा कह उठे, "मैंने अपने एक अत्यंत प्रिय मित्र को खो दिया है।"

तुलसीदासजी ने जानकी के शील और उनकी लज्जा का वर्णन बड़े मार्मिक रूप से किया है। चित्रकूट के पथ में ग्राम-वधुएं पूछती हैं कि यह सहज-सलोने से जो आगे-आगे जा रहे हैं वह तुम्हारे कौन हैं। सीताजी भाषा का प्रयोग नहीं करतीं। आंचल की ओट लेकर वह बांकी तिरछी करके नयन अर्थात् इशारे से बताती हैं कि वे मेरे पति हैं। यह सहज भंगिमा नृत्य के व्याकरण में बंधकर मुद्रा बन जाती है और यह मुद्रा इतनी प्रबल ध्वनि निकालती है जिसे मौन की आवाज ही कहना पड़ेगा।

जब कोई मनुष्य मौन धारण करता है तो उसकी आंखें बोलती हैं। आंखों की भाषा अपने-आप में स्पष्ट और संवेदनशील होती है। आंखों-आंखों में ही जो मौन आवाज निकलती है, उसका क्या कहना! व्यावहारिक जीवन में मौन की आवाज आंखों से आती है। नयन इतने मुखर हो जाते हैं कि वाणी उनके सामने

फीकी पड़ जाती है। ऐसे क्षणों में बोला नहीं जाता। पुष्पवाटिका में सीताजी की सहेलियां उनसे पूछती हैं कि राम कैसे लगे ? सीताजी ने कहा, "गिरा अनयन, नयन बिनु वाणी" अर्थात् मैं उनके सौंदर्य का वर्णन नहीं कर सकती, क्योंकि मेरी जीभ में आंखें नहीं हैं और मेरी आंखों में जीभ नहीं है। यह कितना चमत्कारिक श्रृंगार रस का उदाहरण है तथा विलक्षण मौन की आवाज है।

कवि बिहारी के श्रृंगार रस का दोहा और नेत्रों की आवाज—

"कहत नटत रीझत खिझत, मिलत खिलत लजियात,
भरे भुवन में करत हैं, नयन ही सौं बात।"

स्वामी रामतीर्थ अमेरिका गए। वह अपने कमरे में प्रातःकालीन प्रार्थना में मग्न थे। उसी समय दर्शन-शास्त्र की व्याख्याता एक महिला आई। उस महिला ने एक कागज पर लिख रखा था : "नो व्हेयर इज गॉड।" महिला स्वामी रामतीर्थ से शीघ्र मिलना चाहती थी। साथ-ही-साथ स्वामीजी से बहुत-से प्रश्नों का समाधान भी चाहती थी। लेकिन महिला को कमरे के अंदर प्रवेश नहीं मिला। दरवाजे पर खड़े चपरासी ने उसे अंदर नहीं जाने दिया। वह महिला अधीर होकर कहने लगी, "मैं यह देखना चाहती हूं कि स्वामीजी कर क्या रहे हैं।"

अंततः वह कमरे के अंदर पहुंच गई तथा करीब १०-१५ मिनट तक निर्निमेष उनको देखती रही। जब स्वामीजी की समाधि टूटी और उस महिला की आंखें स्वामीजी की आंखों से मिलीं, तब वह सहसा रो पड़ी और चिल्ला पड़ी, "हियर इज गॉड।" वह यह भी कहने लगी, "अब मुझे किसी भी शंका की गुंजाइश नहीं है। मेरी सारी शंकाओं का समाधान हो गया है। मैं बहुत-से प्रश्न पूछने आई थी। मैं नास्तिक हूं पर आज आपके दर्शन मात्र से मेरे सारे सवालों का उत्तर मिल गया।"

जहां उस महिला ने "नो व्हेयर इज गॉड" लिखा था उसमें परिवर्तन कर उसने लिख दिया "अब यहां ईश्वर है।"

मां अपने बच्चे को शब्द तो सिखाती है पर उससे अधिक संस्कार वह मौन की भाषा को देती है। मां अपने बच्चे को नहला-धुलाकर डिठौना लगाती है। एक काजल की रेखा माथे के बाईं ओर खींचकर जब शिशु को चुंबनों से भर देती है तो उन चुंबनों में वह न जाने कितने वेदों की ऋचाओं, मंत्रों और संगीतों को मौन रूप से भर देती है। हिंदी काव्य में सूरदास ने तो इन संस्कारों में एक नया संस्कार ही खड़ा कर दिया है।

हर एक व्यक्ति के जीवन में कभी-न-कभी यह आवाज उठती है कि "अरे, तू यह क्या कर रहा है ? क्या इसीलिए तुझे यह संपन्न शरीर मिला है ? अपना स्वरूप, अपनी शक्ति पहचान और उन कामों को कर जिनकी तुझसे आकांक्षा की जा रही है।" यह पुकार करनेवाला और कोई नहीं, मनुष्य की आत्मा ही

है। जो इस आवाज का आदर करते हैं और जाग उठते हैं वे संसार में यशस्वी होकर अच्छे कार्यों में लग जाते हैं। ईश्वर उनकी पूरी सहायता करता है। यह आवाज अधिकतर उन्हीं क्षणों में उठा करती है जब व्यक्ति स्वार्थ एवं संकीर्णता की परिसीमा पार करने लगता है। या ऐसे कार्य में प्रवृत्त होता है जो उसे नहीं करने चाहिए। कोई भी पाप या निम्न कार्य करते समय यह आवाज प्रत्येक व्यक्ति को कचोटती है, सुनाई देती है। जो भी इस आवाज को सुनकर संभल जाता है वह सर्वांगीण विकास की ओर अग्रसर हो जाता है।

कलिंग-युद्ध के बाद सम्राट् अशोक ने युद्ध के मैदान में हजारों शव पड़े देखे। उस नर-संहार की आवाज को सुनकर उनका मन द्रवित हो गया। वह अहिंसा के पुजारी हो गए तथा गौतम बुद्ध की शरण में जाकर बौद्ध भिक्षु बन गए।

मनुष्य की अंतरात्मा जो कुछ देखती है, सुनती है और समझती है वही सत्य है। वही यथार्थ ज्ञान है। अंतरात्मा से अनुशासित मनुष्य ही सत्य के दर्शन तथा यथार्थ ज्ञान की उपलब्धि कर सकता है। यथार्थ ज्ञान की उपलब्धि हो जाने पर मनुष्य के सारे शोक-संतापों एवं दुःख-द्वंद्वों का स्वतः समाधान हो जाता है। जहां प्रकाश होगा वहां अंधकार रह ही नहीं सकता। जहां ज्ञान होगा वहां दुःख हो ही नहीं सकता। दुःख का कोई अपना मौलिक अस्तित्व है ही नहीं। अंतरात्मा की बात सुनना और मानना ही उसका अनुशासन है। पूछा जा सकता है कि क्या मनुष्य की अंतरात्मा बोलती भी है?

हां, मनुष्य की अंतरात्मा बोलती है। किंतु उसकी वाणी स्थूल, ध्वनिपूर्ण नहीं होती। वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म होती है, जिसे बाह्य स्थूल श्रवणों से नहीं सुना जा सकता। उस वाणी को 'परावाणी' कहा जाता है। किंतु मौन विचार स्फुरण की भाषा में, जिसे मनुष्य अपनी अशांत मानसिक स्थिति में नहीं सुन सकता, अंतरात्मा की वाणी सुनने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य का बाह्य कोलाहल बंद हो। अंतरात्मा का सान्निध्य मनुष्य को उसकी आवाज सुनने योग्य बना देता है और उसी क्षण वह आवाज आध्यातिमक रूप में सुनी जाती है।

मानव के जीवन में इतना अधिक मानसिक दबाव आ गया है कि वह सूनेपन के भंवर में फंसकर केवल विचारों में जीना चाहता है। उसे जीवन अधूरा, रिक्त, दुखद एवं अर्थहीन प्रतीत होता है। फिर भी जीवन का स्पंदन तो रहता है। उस मनःस्थिति में शांति के बजाय उसके अंदर एक ललक, एक अभिलाषा जागती है। वह कुछ पाना चाहता है। आशा की किरणें उत्पन्न करना चाहता है। और उस क्षण उसे भान होता है कि उसे जो कुछ पाना है सब उसके अंदर है। जब वह अंतर्मुखी होता है, उसके अंदर की आवाज उसे सुनाई पड़ने लगती है। हर व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व, मानसिक स्थिति, व्यवसाय, बौद्धिक स्थिति, ज्ञान की परिधि के अनुसार मौन की आवाज सुनाई पड़ती है। और ऐसे क्षणों में मौन वरदान बन

जाता है।

यदि धन, संपत्ति, वैभव, विभूति से ही आनंद के उद्देश्य की पूर्ति हो सकती होती तो इस विशाल संसार में न जाने कितने धन-कुबेर पड़े हैं जिनके धन-वैभव की कोई गणना नहीं है, जिनकी नित्य-प्रति करोड़ों की आय है। उन सबको सुखी और संतुष्ट होना चाहिए था। पर देखने में ऐसा आता है कि वे भी अन्य जनसाधारण की भांति ही आनंद के लिए लालायित रहते हैं। विपुल वैभव के बीच भी रोते, कलपते और शोक मनाते दृष्टिगोचर होते हैं। उन सबको आत्म का ज्ञान न होने से यह प्रक्रिया एक विवशता बनी हुई है। यदि आत्म-ज्ञान हो जाए तो निश्चय ही उनके इस स्वभाव में परिवर्तन हो सकता है।

महाभारत की एक कथा है—कृष्ण से भेंट करने युधिष्ठिर गए तो उन्हें आसन पर बैठे ध्यान-मग्न पाया। ध्यान समाप्त हुआ तो युधिष्ठिर ने पूछा, "आप तो भगवान् हैं। संसार आपका ध्यान करता है। फिर आप किसका ध्यान करते हैं ?"

श्रीकृष्ण ने कहा, "जो मेरा ध्यान रखते हैं उनका मुझे भी ध्यान रखना पड़ता है। मुझे ध्यानावस्था में यही देखना पड़ता है कि किसके उपकार का मुझे क्या प्रतिकार देना चाहिए।"

एक सहृदय व्यक्ति जो सुख प्राप्त करता है, जिसे वह अनुभूत करता है और जिसे वह पसंद करता है, उस आनंद की अनुभूति को वह शब्दों के द्वारा व्यक्त नहीं कर सकता। उसकी समझ में नहीं आता कि वह आनंद क्या है। इसीलिए हमारे शास्त्र के कई ज्ञाता उस आनंदानुभूति को शब्द के बाहर मानते हैं। वह मौन की आवाज के रूप में ही जाना जा सकता है। इस आनंद की अमृत धारा को—इस सौंदर्य के वरदान को, जो पूरे विश्व में फैला हुआ है, कुछ लोग शब्द देना चाहते हैं और कुछ कविता, साहित्य, कला, नृत्य, संगीत आदि के माध्यम से उसे व्यक्त करते हैं। शाश्वत आनंद की प्राप्ति ही सच्चे आनंद की उपलब्धि है। मौन की आवाज में वह समाहित है।

जो हृदय में है, उसकी शरण लो। व्यक्ति का अंतःकरण ईश्वर का साथी है। आइंस्टाइन से कुछ विद्यार्थियों ने पूछा, "हमें जीवन में सफलता पाने के लिए कोई नुस्खा बताइए।"

आइंस्टाइन बोले, "सफलता = काम + मनोरंजन + मौन। मेरे नजदीक मौन का मतलब है जितना जरूरी हो उससे भी कम बोलना। बल्कि मैं तो मौन को इससे भी ज्यादा सीमित मानता हूं।"

८

कोलाहल : आंतरिक और बाह्य

आज का मानव बाहर के कोलाहल को ही सुनता है और उसी में जी रहा है। अंदर के कोलाहल को वह कभी भी ध्यान से नहीं सुनता। प्रत्येक आदमी में अंदर का कोलाहल होता रहता है और वह सतत रूप से आदमी को चैतन्य करता रहता है। लेकिन बाह्य कोलाहल के कारण आदमी उसे सुन नहीं सकता। इसके बावजूद उसे न सुनने पर भी वह रह-रहकर सुनाई देता रहता है। वही अंतरात्मा की आवाज है। बाहर का कोलाहल सीमित है, लेकिन अंदर का कोलाहल असीमित है। गीता में भगवान् कृष्ण ने इसकी चर्चा बड़े ही बोधगम्य तरीके से की है।

यह संसार कोलाहल से भरा हुआ है। कोलाहल भी दो तरफ से—एक बाहर से और दूसरा अपने अंदर से। जब हम किसी मेले में या किसी बड़े समारोह में जाते हैं तो कोलाहल के बीच में रहते हैं। चारों ओर से ध्वनि-तरंगें आती रहती हैं। ध्वनि-विस्तारक यंत्र चारों ओर से अपना प्रभाव जमाए रहते हैं। आम दिनों में भी जब बाजार में भाषण होता है तब वहां भी कोलाहल होता है लेकिन बाजार के कोलाहल में तथा तीर्थ-स्थान के कोलाहल में अंतर है। बाजार का कोलाहल संसार का है। वहां जो भाषण होते हैं उनका तथा धार्मिक प्रथाओं का कोई साम्य नहीं, लेकिन तीर्थ-स्थान में जो कोलाहल रहता है, वह प्रभु के नाम पर सुना जाता है।

यहीं पर यह मालूम होता है कि कौन व्यक्ति अंदर के कोलाहल से आकर्षित है और कौन बाहर के कोलाहल से। वह मानव की परीक्षा की घड़ी रहती है। कोलाहल में भी हम शांत रहें, जो सुनना है वह सुनते रहें, जो देखना है वह देखते रहें और जब बाहर का कोलाहल शांत हो जाए तो आत्म-विश्लेषण करें। उसी प्रक्रिया के द्वारा मानव का कल्याण हो सकता है। हमें कोलाहल—आवाजों के बीच चिंतन करना चाहिए तभी संसार में रहते हुए हम अपने कल्याण की बात सोच सकते हैं तथा पथभ्रष्ट होने से बच सकते हैं।

मानव शरीर का बहुत महत्त्व है, तथापि जब इसे आवश्यकता से अधिक महत्त्व दे दिया जाता है तब यही शरीर, जो संसार-बंधन से मुक्त होने में हमारी एक मित्र की तरह सहायता करता है, हमारा शत्रु बन जाता है। अधिकार से अधिक शरीर की परवाह करने और उसकी इंद्रियों की सेवा करते रहने से, शरीर और उसके विषयों के सिवाय और कुछ भी याद न रखने से वह हमें हर ओर से विभोर बनाकर अपना दास बना लेता है। और दिन-रात अपनी ही सेवा में तत्पर रखने के लिए दबाव में आ जानेवाला व्यक्ति कमाने, खाने और विषयों को भोगने के सिवाय, इससे आगे की कोई बात सोच ही नहीं पाता। उसका सारा ध्यान बाह्य कोलाहल में लगा रहता है। शरीर और उसकी आवश्यकताओं तक ही वह केंद्रित रहता है। अपनी सारी शक्ति जो वह आंतरिक कोलाहल के फलस्वरूप पा सकता है और जिसका उपयोग महतर कार्यों में किया जा सकता है, उसे वह शरीर की सेवा में समाप्त कर देता है। इस प्रकार उसका जीवन व्यर्थ चला जाता है।

विषमताओं और विभीषिकाओं से उबरकर आत्मिक आनंद की खोज करना ही आंतरिक कोलाहल है। मानव-जीवन के मर्म का सहज स्फुटन ही इस कोलाहल का परिणाम है। आंतरिक कोलाहल के पैदा होते ही अंतःप्रेरणा जागती है। मानव ऊंचा उठने का प्रयास करता है। प्रभु का मानव में कोमल संलाप ही अंतःकरण है।

जीव भी ईश्वर की ही भांति आजीवन निरंतर सक्रिय रहता है। उसकी चेतना अर्थात् सक्रियता प्रतिक्षण बनी रहती है। सोते समय, मूर्छा के समय केवल मस्तिष्क का एक छोटा भाग अचेत होता है। बाकी समस्त शरीर हर घड़ी काम करता रहता है। शरीर के सभी कल-पुर्जे अचेतन कहे जानेवाले मस्तिष्क के सहारे ठीक वैसा ही काम करते रहते हैं जैसे जागते रहने पर होता है। विचार, भावना, उत्साह, विवेक, स्फूर्ति एवं क्रियाशीलता को चेतना का ही अंग माना जाएगा। भोग और मोह के वशीभूत होकर, वासना और तृष्णा से प्रेरित होकर प्राणी विविध प्रकार के अकर्म और दुष्कर्म करता हुआ जीवन के बहुमूल्य क्षणों का दुरुपयोग करता है। यही अज्ञान है।

एक ओर आत्मा की सत-चित् और आनंद की मूल प्रकृति उसे उच्च भूमिका की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देती है। दूसरी ओर माया का प्रकोप जीव के ऊपर होता रहता है। एक ओर दैवी प्रवृत्ति, दूसरी ओर आसुरी प्रवृत्ति। यही आंतरिक और बाह्य कोलाहल का मर्म है। अंतःकरण में अशांति और असंतोष का महाभारत मचा रहता है। इस रस्साकसी में जीतता वही है जो अपने अंदर के कोलाहल को शांत करना चाहता है। पतन और उत्थान के दोनों ही मर्म उसके लिए खुले हुए हैं, वह जिसे चाहे उसे पसंद करे।

अंतरात्मा की वाणी सुनने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य का बाह्य कोलाहल बंद हो। उसका चंचल चित्त शांत हो। वह अंतर्मुखी बने। मनुष्य जो काम करता है वह अधिकतर करता है अंत:प्रेरणा से ही। किंतु वह अंत:प्रेरणा अंतरात्मा की नहीं होती। वह होती है मन की। जो स्वभावतः पतन पथगामी है। चंचल, निरंकुश, उच्छृंखल मन मनुष्य के लिए यातना का कारण है। वह इंद्रियों द्वारा कार्यरूप से स्फुटित होकर मनुष्य को अंधकार की ओर खींच ले जाता है। उच्छृंखल मन की प्रेरणा को रोकना ही बाह्य कोलाहल से बचना है। यह मनुष्य का ही दृष्टि दोष है कि वह अपनी आत्मा को नहीं देखता और न सुनता है।

मन:स्थिति परिस्थितियों की जन्मदात्री है। मन:स्थिति को मानवीय गरिमा के अनुरूप बनाए रखने के लिए अध्यात्म तत्त्व दर्शन का ठीक उतना ही महत्त्व है जितना कि भौतिक साधन जुटाने एवं बाह्य हलचल को व्यवस्थित करने के लिए शासन एवं विज्ञान का। आंतरिक कोलाहल आध्यात्मिक प्रेरणा से ही शांत होता है। प्रत्यक्षवाद, प्रयोग, शोध, अनुसंधान ये सब आंखों से देखे जा सकते हैं, इन्हीं पर लोगों का विश्वास है। अध्यात्म व दर्शन के तत्त्वों से विश्वास उठता जा रहा है। इसीलिए लोग बाह्य कोलाहल के शिकार होते जा रहे हैं। आंतरिक कोलाहल को सुनते ही नहीं। इस स्थिति का स्पष्टीकरण निम्नलिखित उदाहरण से सिद्ध होता है—

एक बार गैलियों की खाड़ी में भयंकर तूफान आया। पानी बांसों ऊंचा उठने लगा। नाविक भयभीत थे। यात्रियों में कोलाहल और कोहराम मच गया। नाव के कोने में एक अलमस्त कमली में पैर सिकोड़े पड़ा था। किसी ने झकझोरकर उसे जगाया और कहा कि तूफान का दौर तो देख, मौत सामने खड़ी है। तुम्हें किसीका खौफ नहीं जो इस तरह बेखबर पड़ा है।

अलमस्त ने आंखें मलीं और इधर-उधर नजर दौड़ाने के बाद उस झकझोरने वाले से बोला, "इसमें क्या अनहोनी बात थी? तूफान आते ही रहते हैं और मनुष्य भी मरते रहते हैं। जो आया है वह जाएगा ही। न तूफान टिकनेवाला है और न ही आदमी रुकनेवाला है।"

इस अलमस्ती पर सब दंग रह गए। उसने फिर कहा, "लोग मन का तूफान बंद करें, हवा का तूफान ठंडा होने में क्या देर है?" सचमुच में ही तूफान ठंडा हो गया।

'विनियत' का अर्थ है विशेष रूप से नियंत्रित। चित्र सरोवर में सतत वृत्तियों की लहरें उठती रहती हैं। जब इन लहरों का उठना बंद हो जाता है तब उस अवस्था को विनियंत्रित अवस्था कहते हैं।

सरोवर में लहरें दो कारणों से उठती हैं। एक तो है बाहर का कारण और दूसरा भीतर का। हम सरोवर में एक कंकड़ फेंकते हैं। तुरंत जल में लहरियां

बनने लगती हैं। लहरों का उठना शुरू हो जाता है। कभी-कभी सरोवर का जल शांत दिखाई देता है लेकिन अचानक एक बुलबुला नीचे से ऊपर की ओर उठकर जल की सतह पर आया और फूट गया। बुलबुले के फूटते ही लहरियां बननी शुरू हो जाती हैं, यह एक भीतरी कारण हुआ। इसमें विक्षेप पैदा करनेवाला बाहर से कोई पदार्थ नहीं था। बुलबुला भीतर से ही पैदा होता है।

इसी प्रकार चित्त में भी वृत्त लहरें दो कारणों से उठती हैं—आंतरिक और बाह्य। ज्ञानेंद्रियों के द्वारा अपने-अपने विषयों का सेवन चित्त की चंचलता का बाह्य कारण है। पर जब बाहर में विषय-भोगों का सेवन न हो और हम मन से उनका सेवन करते रहें तब जो चित्त की चंचलता होती है उसे भीतरी कह सकते हैं, इसे गीता की भाषा में स्पृहा कहा गया है। भले ही भौतिक और स्थूल रूप में भोगों का त्याग कर दिया जाए पर यदि उसके प्रति इच्छा बनी रहे तो चित्त सरोवर में खलबली मचती ही रहेगी, वह क्षुब्ध होगा।

प्रतिदिन का अनुभव है कि मानव के सामने काम और क्रोध आदि के विषय नहीं हैं पर उनकी स्मृति ही उसे उत्तेजित कर देती है। भले ही हम बाहर के विक्षेपों के आने का द्वार बंद कर दें, पर भीतर से विक्षेप तो आ ही सकते हैं। कामना ही, भोगे हुए सुख की स्मृति की, चित्त में भीतर से चंचलता पैदा करती है। चित्त के अंदर के कोलाहल को शांत कर सकना आसान नहीं। योग और अभ्यास के द्वारा ही चित्त का कोलाहल शांत किया जा सकता है। गीता में चित्त के बारे में, स्थितप्रज्ञता के बारे में बड़ी सूक्ष्मता के साथ विवेचन किया गया है।

सामान्य आलोक किरण में भेदन-शक्ति नहीं होती पर जब उसके आयाम बढ़ा दिए जाते हैं या उसकी 'वेवलेंथ' कम कर दी जाती है तो वही 'एक्स-रे' बनकर चमड़े तक को भेद डालती है। वैसे ही आज हमारा मन बिखरा हुआ है। हम अपनी शक्ति को, अपनी संभावनाओं को पहचान नहीं पा रहे हैं। पर यदि चित्त काबू में आ जाए, मन एकाग्र हो जाए तो उसकी निहित शक्ति और संभावनाएं दृष्टिगोचर होने लगती हैं। नाद-योग एक ऐसा ही विषय है जिसमें चित्त की एकाग्रता की आवश्यकता पर जोर दिया गया है। मानसिक एकाग्रता प्राप्त करने के लिए ध्यान की कई सीढ़ियां पार करनी पड़ती हैं।

कांच के गिलास में हम जल भरकर उसमें एक पिन डाल दें। इससे जल हिलने लगता है और पिन टेढ़ी-मेढ़ी दिखाई देती है। इसका क्या कारण है ? क्या पिन टेढ़ी-मेढ़ी हो गई—नहीं, वह टेढ़ी-मेढ़ी नहीं हुई। जल के स्थिर होते ही वह जैसी है वैसी ही सीधी दिखने लगती है। तात्पर्य यह है कि जैसे यह पिन कभी टेढ़ी नहीं हुई, जब वह टेढ़ी-मेढ़ी दिख रही थी उस समय भी वह सीधी ही थी। जल के हिलने के कारण वह टेढ़ी-मेढ़ी दिख रही थी। जल में जो तरंगें उठी थीं उन्हीं के कारण उसका रूप बदल गया था। उसी तरह यह आत्मतत्त्व सदैव अपने स्वरूप

में ही स्थित रहता है। अपने स्वरूप से कभी भी उसका विचलन नहीं होता। केवल चित्त की चंचलता के कारण ऐसा लगता है कि उसके स्वरूप में बिगड़ाव आ गया है और इस बिगड़ाव के लिए बाह्य कोलाहल ही जिम्मेदार है जिसका नियंत्रण जरूरी है।

बड़े-बड़े साधक अपनी साधना का अभ्यास अखंड रूप से चलाते रहते हैं। एक बार एक साधक से पूछा गया, "आपने तो अपना मन-चित्त काबू में कर लिया है फिर सतत रूप से साधना क्यों करते रहते हैं ?" उन्होंने तुरंत समझाया कि मन एक पीतल के लोटे की तरह है। लोटे को नित्य प्रति मांजकर ही चमकाकर रखा जा सकता है। यदि रोज न मांजा जाए तो वह मैला हो जाता है। उसकी चमक कम हो जाती है। मन को भी इसी प्रकार सतत ध्यान के द्वारा प्रतिदिन मांजना पड़ता है। इससे मन की तेजस्विता बनी रहती है। कोई भी मनुष्य सदैव पूर्णरूपेण शुद्ध और पवित्र नहीं बना रह सकता। केवल अभ्यास से ही वह शुद्धता तथा पवित्रता पा सकता है। शारीरिक साधना योग नहीं है। योग तो मन की एक अवस्था है। इसी अवस्था को शनैः-शनैः प्रस्फुटित करते हुए बाह्य कोलाहल को रोका जा सकता है।

चित्त में संस्कार बनते हैं और चित्त के संस्कार मन पर दोष के रूप में उभरते हैं। मन में जो दोष आते हैं वे ही क्रिया में प्रकट होते हैं। यदि हम बुद्धि के द्वारा बुराई को बुराई समझ लें तथा अपने अंतःकरण में अहंकार को न आने दें तो बुराई की समस्या का समाधान हो सकता है। अतएव यह ध्यान रखना होगा कि अहंकार और बुद्धि भी कहीं हमारे मन और चित्त के साथी न बन जाएं। मन और चित्त में तो समस्याएं, प्रलोभन भरे रहते हैं। चेष्टा यही करनी चाहिए कि बुद्धि और विवेक सुरक्षित रहें ताकि हम फिसलने न पाएं।

विश्वविद्यालय का एक सेवा-निवृत्त अध्यापक जिंदगी-भर समय का पाबंद रहा है। उच्च विचारों को पालता रहा है। वह सदैव बाह्य कोलाहल से बचता रहा। सेवा-निवृत्त होने के बाद वह स्वयं को कहता है, वक्त को जाया न करो। यह आवाज उसकी जिंदगी-भर की प्रवृत्ति का परिणाम है। सेवा-निवृत्त होने के बाद अध्यापक महोदय का समय नहीं कट रहा है। इसीलिए वह वक्त को जाया न करो कहने के लिए बाध्य हो गया है। इसी उधेड़बुन में वह देखता है कि चौराहे पर तथा घरों में लोग शतरंज का खेल खेलकर वक्त जाया कर रहे हैं। लेकिन वह यह भी सोचता है कि इन खिलाड़ियों को वक्त का भारीपन नहीं महसूस होता। पूरी संजीदगी के साथ हंसते हैं और समय कट जाता है। वह यह भी सोचते कि जिंदगी की हरारत को देखना और समझना, जिंदगी की महक को सूंघना और मजा लेना भी सुखकर है और आदमी को सदैव दो और दो चार ही नहीं बनाना चाहिए। कभी-कभी दो को तीन और तीन को पांच बनाकर जिंदगी

में रस उत्पन्न करना चाहिए। उसी क्षण जीवन में शांति भी आती है और इस बात का संतोष होता है कि जीवन सुखमय है। यह एक ऐसा अंतर्द्वंद्व है जिसे समझाना मुश्किल है।

अध्यापक महोदय यह भी कहते हैं कि समय की पाबंदी ही सब कुछ नहीं है। प्रोफेसर साहब के आंतरिक कोलाहल की परिभाषा जीवन-संध्या में बदल जाती है। वे विचलित हो जाते हैं। आंतरिक कशमकश की सीमा कुछ बढ़ जाती है। वे कुछ परेशान से हो जाते हैं। परिवार के सदस्यों—पत्नी, पुत्र, पुत्री आदि से भी खिन्न रहने लगते हैं और एक दिन ऐसा आता है कि वे रात को सोने जाते हैं और फिर उनके लिए सवेरा होता ही नहीं। आंतरिक कोलाहल को संयमित करना एक बहुत बड़ी साधना है। यदि योग-बुद्धि ने मन को नियंत्रित नहीं किया तो यही परिणाम होगा।

बाह्य कोलाहल के आकर्षण में आदमी सदैव उधेड़बुन में फंसा रहता है। इसे करूं या न करूं? यह उचित है या अनुचित है? आदि। इसीलिए कहा जाता है कि यदि मानव केवल अपनी जिंदगी को किसी तरह बिताना चाहता है तो उसे दो तरीकों को अपनाना चाहिए। पहला तरीका है कि सब पर विश्वास करे और दूसरा है सब पर संदेह करे। इन दोनों तरीकों में कोई विशेष चिंतन की या संघर्ष की आवश्यकता नहीं होती। जिंदगी थकती रहेगी लेकिन उस जीवन में कोई स्वाद नहीं रहेगा।

ऐसे मनुष्यों को कोई भी कोलाहल नहीं सुनाई पड़ता। अज्ञान और अंधकार में ये जी लेते हैं। अंत.प्रेरणा से उन्हें कोई सरोकार नहीं रहता। समाज में ऐसे ही लोग सतही रूप से प्रसन्न दिखते हैं। अंदर का कोलाहल अर्जन की चीज है। प्रतिक्षण अंत:करण की आवाज को सुनना पड़ता है। सद्‌गुणों, पवित्र भावनाओं तथा मानवता के तत्त्वों से अपने को जोड़ना पड़ता है। जो भी मनुष्य थोड़ा डगमगाता है, वह फिसल जाता है। जो पेशेवर अपराधी होते हैं, वे एक दिन में ही माहिर नहीं हो जाते। हर बार उन्हें उनका विवेक टोकता है। वे परवाह नहीं करते। धीरे-धीरे पाप-पुण्य का भेद भूल जाते हैं। दुर्गुण अपनाते हैं और अंदर के कोलाहल से कोसों दूर चले जाते हैं। उनका जीवन पैशाचिक हो जाता है।

आंतरिक कोलाहल का कोई विस्तार नहीं, कोई सीमा नहीं। उसका कोई विशेष रूप भी स्पष्ट नहीं दिखता। आदमी बाहर के कोलाहल से घबराकर तथा ऊबकर त्रस्त हो जाता है और उन क्षणों में वह आंतरिक कोलाहल सुनने के लिए बाध्य हो जाता है। उन क्षणों में उसकी ऊब और छटपटाहट अंदर से निकली हो तब ही वह अपने अंदर की आवाज को सुन सकता है। बकौल इकबाल—

"दुनिया की महफिलों से उकता गया हूं—या रब।
क्या लुत्फ अंजुमन का जब दिल ही बुझ गया हो—

शोरिश से भागता हूं, दिल ढूंढ़ता है मेरा,
ऐसा सुकून जिस पर तकरीर भी फिदा हो,
कानों में हो न मेरे पैरों हरम का एहसां,
रोजन ही झोंपड़ी का मुझको शहरनुमा हो।''

अर्थात्, हे भगवान्, मैं दुनिया के बाहरी कोलाहल, महफिल आदि से उकता गया हूं। मेरे अंदर दिल में कोई उत्साह नहीं रह गया है। कोई उमंगें भी नहीं हैं। लोगों की जो भीड़ इकट्ठी हो गई है उसमें मुझे कोई आनंद नहीं आता। मैं शहर के शोरगुल-कोलाहल से भागना चाहता हूं। मैं ऐसी खामोशी, शांति की तलाश में हूं जो अच्छी से अच्छी तकरीर भी नहीं दे सकती। उस खामोशी का भरपूर मजा तो मैं उसी क्षण ले सकूंगा जब मेरे कानों पर मंदिरों के घंटों की आवाज का कोई एहसास न हो और न ही अजान की पुकार की आवाज का कोई असर हो। उस खामोशी के दरम्यान प्रातःकालीन सूर्य की हल्की रोशनी मेरी झोंपड़ी के सुराखों से अंदर आएगी और मैं समझूंगा कि सवेरा हो गया।

इन पंक्तियों को पढ़कर यह एहसास होता है कि ईश्वर का साम्राज्य हमारे अंदर है और इसे हम जानें और पहचानें। अंदर के कोलाहल को सुनने और समझने के बाद ही इस तरह की खामोशी तथा शांति पाने की तीव्र इच्छा होती है। आदमी अपने-आपको पहचान लेता है। अपने सच्चे स्वरूप का आभास पाता है। उसके अंदर जिज्ञासा जागती है—वह क्या है? कहां से आया है? उसके जीवन का क्या उद्देश्य है?

संसार में जो कुछ दिखाई दे रहा है वह नष्ट हो जानेवाला है। परंतु स्थिति ऐसी है कि यह जानते हुए भी कि संसार में जो दृश्य है उससे वियोग की बात कही जाए, तो कड़वी लगती है। जो दिखाई देता है वह सब नष्ट होनेवाला है, यह जानते हुए भी हम बाह्य कोलाहल से आकर्षित होते हैं। परिवार की नश्वरता का बोध होते ही हम सात्त्विकता की ओर जाते हैं। नश्वरता को समझने के लिए जितनी जल्दी हो सके हम अपने अंदर की आवाज को सुनें। ज्ञान प्राप्त कर सेवा-भाव धारण करें तथा पवित्रता की ओर अग्रसर हों।

आंतरिक कोलाहल से अंतःप्रेरणा उत्पन्न होती है। अंतःप्रेरणा के प्रज्वलित होने पर अंतःदृष्टि विकसित होती है। उसके बाद अंतःयात्रा प्रारंभ होती है। आदमी को सही दिशा मिल जाती है। हमारे ऋषियों ने अंतःस्फुरित कविता का एक विशाल संग्रह दिया था। उन्हें ऋषियों की, दृष्टाओं तथा संतों की कृति माना जाता है। उन्होंने अपने मन द्वारा कुछ गढ़कर बनाने की जगह, एक महान् व्यापक शाश्वत तथा अपौरुषेय सत्य को अपने अलौकिक मन के अंदर ग्रहण किया और उसे मंत्र के रूप में प्रकट किया। ये सारे मंत्र दिव्य स्फुरण तथा दिव्य स्रोत से आए थे। ये अमर हैं, अमर रहेंगे। हमारे वेद-पुराण सभी इसी श्रेणी में आते हैं।

भारतीय योगशास्त्र में कुंडलिनी जागरण की एक प्रक्रिया बताई जाती है। पीठ में रीढ़ की हड्डियों के बीच 'स्पाइनल' कार्ड होता है। ऊपर से नीचे तक इस स्पाइनल कार्ड में सात स्नायुओं के छोटे-छोटे जाल (नर्व प्लेक्शसेस) स्थित रहते हैं। प्रत्येक जाल शरीर के भिन्न-भिन्न हिस्सों से आई हुई संवेदनाओं को ग्रहण करता है और उन अनुभूतियों को ज्यों-का-त्यों ऊपर मस्तिष्क में भेजता है। योग के विभिन्न साधनों के द्वारा जब कुंडलिनी जागती है, तो नाभि-मंडल से आवाज मस्तिष्क में पहुंचती है। मस्तिष्क में यह आवाज विलक्षण रूप से शक्तिशाली हो जाती है। साधक कह उठता है 'अहम् ब्रह्मास्मि'। साधक अपने स्वरूप को पहचान लेता है। कुंडलिनी जागरण एक महान् साधना और तपस्या की उपलब्धि मानी जाती है। हजारों-लाखों में एकाध को ही यह प्राप्त होती है।

यह स्पष्ट है कि जो भी व्यक्ति उस मार्ग में जाने का प्रयत्न करेगा वह कम-से-कम एक साधक तो हो ही जाएगा। भले ही वह अपने-आप को पूर्णरूपेण न पहचान पाए। पर उसे अंतरात्मा की आवाज अवश्य सुनाई पड़ने लगेगी। उसका चिंतन, उसकी योग-बुद्धि, उसका विवेक सभी प्रांजल हो जाएंगे। ऐसे आदमी की मनोभूमि पवित्रता-प्राप्ति के लिए लालायित रहती है। तत्पश्चात् बाह्य कोलाहल से वह आकर्षित और विचलित न होगा। शनैः-शनैः वह स्थितप्रज्ञ की अवस्था की ओर अग्रसर होता चला जाएगा। स्थितप्रज्ञ की परिभाषा गीता में विस्तृत रूप से की गई है।

गांधीजी एक क्षण भी बिना कुछ किए शांत नहीं बैठते थे। कुछ-न-कुछ आयोजन करते ही रहते थे। उनके साथ कार्य करनेवाले लोग उनपर अपार श्रद्धा रखते थे। कार्य करते-करते जब कार्यकर्ता थक जाते थे, उस समय गांधीजी को थकान अनुभव न करते देख कार्यकर्ता कहते थे कि बापू कभी थकते दिखाई नहीं देते। गांधीजी कहते कि थक तो मैं भी जाता हूं परंतु मैं अपनी थकान माता की गोद में बैठकर मिटा लेता हूं। अंतर्मुखी हो जाता हूं। माता की गोद में प्रकाश मिलता है। पाथेय, संबल मिलता है और मिलती है अतुलनीय शक्ति।

लोगों ने आश्चर्य से माता के बारे में पूछा—कौन माता? यहां हमने कभी नहीं देखा।

गांधीजी ने कहा कि—जन्म देने वाली माता स्वर्ग चली गई, परंतु एक माता सदैव मेरे साथ रहती है, वह है गीता माता। अर्थात् अंतरात्मा की आवाज।

१

अंधत्व में आवाज और वाणी

जिसकी जैसी दृष्टि वैसी उसकी सृष्टि। आदमी जैसा देखता है उसी के अनुसार अपने संसार की कल्पना करता है तथा रचना भी। स्थूल जगत् से ही उसके संसार का सारा व्यापार चलता है। आंख है तो जहान है। सब दो आंखों की माया है, आप-हम-सब सुनते आए हैं। वास्तव में आंखों के अभाव में व्यक्ति शून्यवत् हो जाता है। रोशनी का द्वार हैं आंखें, जिंदगी का सार हैं आंखें। लेकिन बिना आंखवाला व्यक्ति जब कुछ देख ही नहीं सकता तो वह अपना संसार कैसे बनाता है? एक सूरदास के लिए स्थूल जगत् है ही नहीं। वह सूक्ष्म जगत् में ही विचरण करता है। उसकी कल्पनाशक्ति तीव्र हो उठती है। वह अंतर्मुखी हो जाता है। उसकी अंतर्दृष्टि प्रज्वलित हो उठती है। उसे दिव्य दृष्टि भी कहा जा सकता है। उसके प्रज्ञाचक्षु चमक उठते हैं। आंखों से बढ़कर विश्वस्त सखा कौन हो सकता है? लेकिन सूरदास ने आंखें खो दीं, फिर भी उन्होंने कितने लोगों के जीवन को प्रज्ञामय बना दिया। आंखें खोईं सूर ने और दृष्टि मिली भटकते मानव को। एक अंधा व्यक्ति स्थूल जगत् तथा सूक्ष्म जगत् दोनों के अस्तित्व को समझने की क्षमता रखता है। भारतीय साहित्य में कवि सूरदास, ग्रीक साहित्य में होमर तथा अंग्रेजी साहित्य में मिल्टन के नाम अमर हैं जिन्होंने सूक्ष्म जगत् की कल्पना कर अपनी सृष्टि की रचना की। उनके काव्य 'कालजयी' माने जाते हैं। उन लोगों ने जो संदेश दिया है वह चिरंतन तथा शाश्वत है।

मानव-शरीर की रचना अद्भुत है। इसमें जितनी पेचीदगी है उतनी ही परिपक्वता भी है। मस्तिष्क के शरीर-क्रिया-विज्ञान को आज तक पूर्णरूपेण कोई नहीं समझ पाया है। श्रवण इंद्रिय, स्वर इंद्रिय तथा नेत्र इंद्रिय सबकी रचना अपने-आपमें सामंजस्य लिए हुए है। जब हम पढ़ते हैं तो मस्तिष्क को सूचनाएं आंखों के द्वारा मिलती हैं, जब हम सुनते हैं तो सूचनाएं हमें कानों के द्वारा मिलती हैं। 'श्रुति-दृश्य' की ये संवेदनाएं मस्तिष्क-पथ में जाकर मिल जाती हैं। इसीलिए

बाहर की बाधा का असर मस्तिष्क दोनों ही स्थितियों में महसूस करता है। वैज्ञानिक मस्तिष्क में उस बिंदु को खोजने, तलाशने में लगे हुए हैं। एक बार हम जिन वस्तुओं को देखते हैं, उन्हें कभी भूलते ही नहीं, बशर्ते कि हम उन दृश्यों से प्रभावित हुए हों। सूरदास के मस्तिष्क के कार्य करने का तरीका दूसरा हो जाता है। उसके लिए ध्वनि ही सब कुछ है। उसमें असीम एकाग्रता तथा ग्रहणशीलता आ जाती है।

मानव-मन की ऊर्जा का सबसे अधिक अपव्यय, क्षरण आंखों के द्वारा ही होता है। आंखें देखती हैं, घूरती हैं, प्रेम उड़ेलती हैं। आंखों में स्नेह का सागर लहराता है और आंखों में घृणा की ज्वाला धधकती है। ऊर्जा का जो क्षरण होता है उसके कारण अन्य इंद्रियां शिथिल पड़ जाती हैं। सूरदास की आंखें न रहने से उसके अंदर की ऊर्जा का अपव्यय नहीं हो पाता। अतएव उसके शरीर में, अन्य इंद्रियों में उस ऊर्जा का समुचित उपयोग होता है। उसकी स्मरण-शक्ति, कल्पना-शक्ति, सूंघने की शक्ति तथा स्पर्श-शक्ति विलक्षण हो जाती है।

एक सूरदास के विचारों की ग्रहणशीलता इतनी प्रखर रहती है कि कठिन-से-कठिन विषय जो वह समझता है, ग्रहण करता है तथा अपने विवेक और ज्ञान से उन विचारों को तोलकर उन्हें आत्मसात करता है। एक सूरदास के सामने महसा यदि कोई आदमी झूठ बोले तो वह पकड़ा जाता है। एक अंधा व्यक्ति कभी भी स्वार्थ से पीड़ित नहीं रहता। वह दूसरों की भलाई करने की सोचता रहता है।

सूरदास की भावना तो अंदर से उपजती है। अतएव अपनी कल्पना के अनुसार वह ईश्वर को परिभाषित करता है। ईश्वर के रूप को वह अपनी भावनाओं के अनुसार उजागर करता है। उसके मनमंदिर में ईश्वर का रूप कैसा रहता है, यह वही बता सकता है। ऐसे लोगों ने सिद्ध कर दिया है कि आंखों के सिवाय भी जीवन में और बहुत है। उनकी आवाज और वाणी को समझना पड़ता है। उनकी अंतर्दृष्टि होती है।

भक्त कवि सूरदास जन्म से अंधे थे या बाद में उनकी आंखें गईं, यह कहना मुश्किल है। मुझे तो भक्त सूरदास की वाणी बतानी है। सूरदास गौघाट पर निराकार के गीत गाया करते थे। दक्षिण के महान् संत वल्लभाचार्य उत्तर भारत में आए। वह शुद्धाद्वैत के उपासक थे। शुद्धाद्वैत के अंतर्गत पुष्टिमार्ग साधन का क्रम है। वल्लभाचार्य ने सूरदास को समझाया। उन्होंने उनसे कहा कि तुम अंधे हो, क्यों अपना समय गंवा रहे हो। ईश्वर को समझो, सगुणोपासना में लीन हो जाओ। जीवन सार्थक हो जाएगा। वल्लभाचार्य ने सूरदास को श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध के श्लोक सुनाए।

सूरदास का सुर अत्यंत मधुर था। उनके ज्ञानचक्षु जगे हुए थे। वे परावाणी

सुनने लगे थे। यह परावाणी अनहदनाद कहलाती है। अंतर्मुखी होने पर यह वाणी सुनाई देती है। सूरदास, तुलसीदास तथा कबीर वाणी-सिद्ध कवि माने जाते हैं। अनहदनाद बिना किसी आघात के, बिना किसी घर्षण के अंदर-ही-अंदर पैदा होता रहता है और सुनाई पड़ता रहता है। वल्लभाचार्य के उपदेश से सूरदास अत्यंत प्रभावित हुए। उन्होंने अपनी जीवनशैली बदल ली। राधा-कृष्ण के प्रेम के गीत गाने लगे तथा भगवान् कृष्ण की बाललीलाओं का सजीव वर्णन किया। सबसे अनमोल वस्तु शरीर में न दिल है, न जिगर, केवल आंख है।

एक अंधा व्यक्ति अपने अंदर की दृष्टि से सदैव प्रकाशमय रहता है। अपने इस देव के रूप को अंदर-ही-अंदर देखता रहता है। भक्त कवि सूरदास इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। उन्होंने ईश्वर को देखा था या नहीं, कहा नहीं जा सकता। लेकिन भगवान् कृष्ण का जो वर्णन उन्होंने किया है वह आंखवाले भी नहीं कर सकते। उन्होंने तत्कालीन देश, काल तथा परिस्थितियों को पहचाना और व्यथित होकर समाज को अपनी प्रतिभा के माध्यम से संजीवनी देने का संकल्प किया। यह संजीवनी श्रीकृष्ण की बाललीला का मनोहारी वर्णन है। उसे पढ़-सुनकर निराश और दिग्भ्रमित जनता के मन में उल्लास की लहर दौड़ गई। भक्ति व श्रद्धा से जनता सराबोर हो गई।

सूरदास द्वारा रचित कई ग्रंथ हैं। 'सूरसागर' उनका एक ऐसा ग्रंथ है जिसमें सारे रसों का वर्णन है। भगवान् कृष्ण की बाललीलाओं का ऐसा काव्यमय वर्णन है कि मानव की अंतश्चेतना जाग उठती है। यह अमर ग्रंथ माना जाता है। सोवियत संघ की एक महिला ने सूरसागर का सोवियत भाषा में अनुवाद किया है। उस ग्रंथ की विचारधारा शाश्वत होने के कारण किसी भी देश के किसी भी मनुष्य या नारी को वह मुग्ध कर सकती है। एक बार सूरदास कुएं में गिर पड़े। भगवान् कृष्ण ने आकर उन्हें बाहर निकाला और वह चले गए। उसके बाद ही सूरदास ने गाया—

"बांह छुड़ाए जात हौ निबल जानि कै मोहि,
हृदय तैं जब जाउगे मरद कहौंगौ तोहि।"

इस दोहे से सूरदास का भगवान् कृष्ण के प्रति कितना अगाध प्रेम था, स्पष्ट है। उनका समर्पण तथा भक्ति-भाव अनूठा है। सूरदास की निम्नलिखित कविता—

"सुनहु हरि मुरली मधुर बजाई।
मोहे सुर नर नाग, निरंतर ब्रज बनिता उठिधाई।
यमुना नीर प्रवाह थकित भयो पवन रह्यो मुरझाई।
खग मृग मुनि अधीर भये सब आपनि गति बिसराई।
द्रुम बेली अनुराग पुलक तन शशिथ क्यों निशिन धराई।
सूर श्याम वृन्दावन विहरत चकहु सखी सुधि पाई।"

सूरदास अंधे थे लेकिन ऊपर की पंक्तियां यह सिद्ध करती हैं कि उनकी अंतरात्मा का प्रकाश कितना प्रबल था, वह प्रकृति की सारी गतिविधि को समझते थे।

कवि होमर भी जन्मांध थे। उनका बाह्य जगत् से संबंध टूट गया था। उनकी अभ्यांतरिक शक्ति प्रखर हो गई थी। उस कवि ने अपनी जाति को मिथक (मिथ) दिया। देश के सारे उज्ज्वल व महान् संस्कारों को काव्यरूप में गाया। युग भावना, युग धर्म, युग त्रास तथा युग हर्ष से अनुप्राणित होकर उनमें सृजनात्मक स्फुरण हुआ है। उसी के फलस्वरूप 'इलियड' काव्य की रचना की। हमारे देश में महर्षि व्यास ने 'महाभारत' की रचना की। हमारे देश और ग्रीस में उसी से मिलता-जुलता इलियड काव्य लिखा। दोनों की सामग्री, दोनों का उद्देश्य एक ही है अर्थात् देश की पुनीत परंपराओं और उदात्त संस्कारों को अमर बनाने का प्रयास है। उस काव्य में उस युग का सिर्फ फोटो नहीं खींचा है बल्कि राष्ट्र-विप्लव के भंवर में फंसे ऐसे जीवित मनुष्यों के चित्र दिए हैं जो आज भी हमें अपने लगते हैं। इनमें सामान्य स्त्री-पुरुष भी हैं और महापुरुष भी। वे आज भी हमें राष्ट्रोत्थान का मार्ग दिखाते हैं। यह मार्ग है संघर्ष का, अन्याय से लोहा लेने का तथा प्राण गंवाकर भी सच्चाई की रक्षा करने का। इलियड काव्य का एक प्रमुख हिस्सा ओडेसी है। इस ग्रंथ में यूलेसिस की यात्राओं, उसके जीवन की उपलब्धियों आदि का कवित्वमय वर्णन है। 'महाभारत' में जैसे अर्जुन एक महान् पराक्रमी चरित्र के रूप में वर्णित हैं वैसे ही इलियड में यूलेसिस का वर्णन है।

प्रश्न यह उठता है कि होमर तो नेत्रहीन थे फिर उन्हें ये सारी प्रेरणाएं कहां से मिलीं ? कहा जाता है कि एक अंधे व्यक्ति को दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है। वह अंतर्जगत् में विचरण करता है। उसकी कल्पनाशक्ति असीम होती है लेकिन सब अंधे ऐसे क्यों नहीं होते। यह एक जटिल मनोवैज्ञानिक समस्या है। जन्मांतरीय संस्कार तथा प्रतिभा प्रत्येक व्यक्ति की अलग-अलग होती है। रवींद्रनाथ टैगोर ने कहा है कि की गावे ? की सुनावे ? क्या गाना और क्या सुनाना। अर्थात् अंतरात्मा की आवाज से वे स्पंदित रहते थे। अंधों में वह आवाज और भी अधिक भावपूर्ण और प्रबल होती है। अंधा केवल सुनकर ही स्थूल की कल्पना कर सकता है। इसका और अधिक विवेचन दो धरातलों के आधार पर किया जा सकता है—(१) साहित्यिक और (२) आध्यात्मिक। कवि-जनित प्रतिभा से अनुप्राणित होकर देश का अतीत दृश्य ही सुंदर विषय हो सकता है और इसीलिए इन महान् आत्माओं ने यह गाथा गाई। एक ज्ञानेंद्रिय के अभाव में अन्य ज्ञानेंद्रियां प्रखर हो उठती हैं और यदि ऐसा व्यक्ति पार्थिव संसार से परे अतींद्रिय संसार में विचरण करने लगता है तो उसकी वाणी में दिव्यता आ जाती है। यह सत्य तीनों महाकवियों पर लागू होता है जो अंधे थे।

कवि मिल्टन भी जन्मजात अंधे थे। उनके ग्रंथों का सृजन आध्यात्मिक प्रेरणा से हुआ। उनके दो काव्य हैं—'पैराडाइज लास्ट' अर्थात् स्वर्ग का खोना, दूसरा 'पैराडाइज रीगेंड' अर्थात् स्वर्ग की पुनर्स्थापना। 'पैराडाइज लास्ट' ग्रंथ में आदमी के स्वर्ग से पृथ्वी पर आने का अर्थात् पतन का वर्णन है। आदम और हौवा बिना किसी संकोच के निर्वस्त्र नंदन कानन में विचरण करते थे। वासनाओं और प्रलोभनों के प्रतीक के रूप में सेब फल को खाने के लिए शैतान ने उन्हें प्रेरित किया, जिसे खाते ही उन्हें मृत्युलोक में आना पड़ा। यहां आने पर उन्हें सुख और शांति के स्थान पर तरह-तरह के क्लेश और मानसिक यंत्रणा भोगनी पड़ी। सारे स्वर्ग के सुखों से वे वंचित हो गए। पृथ्वी का दारुण दुःख, कपट, छल देखकर उन्हें एहसास हुआ कि वे कहां से कहां आ गए। इस काव्य में कवि की वाणी चमत्कृत रूप से प्रभावशाली है तथा यह साहित्य की अमर रचना मानी जाती है।

पैराडाइज रीगेंड काव्य में ईसा मसीह ने पृथ्वी को पुनः स्वर्ग कैसे बनाया, इसका वर्णन है। त्रस्त और अभिशप्त मानव के उद्धार के लिए करुणा से प्रेरित होकर परमात्मा ने अपना पुत्र पृथ्वी पर भेजा। ईसा मसीह ने मानव-मात्र के सारे पापों को स्वयं अंगीकार कर लिया और स्वयं सूली पर चढ़कर मनुष्य को मुक्ति का मार्ग दिखाया। इस तरह मानव को पुनः स्वर्ग प्राप्त हुआ। ईसा मसीह ने पृथ्वी को पुनः स्वर्ग कैसे बनाया—(१) गरीबों के प्रति प्रेम-भाव, बच्चों के समान सरल, निष्कपट स्वभाव तथा बाल-सुलभ सरलता का आदर करके एवं सेवा-भाव में समर्पित होकर। (२) विनयपूर्ण और अहंकारशून्य व्यक्तियों के लिए स्वर्ग का उत्तराधिकारी घोषित करके उन्होंने मानव-मूल्यों की पुनर्स्थापना की। ईसा मसीह के दस महावाक्य (टेन कमांडमेंट) अमोघ-प्रकाशस्तंभ के रूप में आज भी सारे ईसाई जगत् में प्रचलित हैं। लाखों लोग उनसे प्रेरणा पाकर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

कविता हमारे व्यष्टि सीमित जीवन को समष्टि व्यापक जीवन तक फैलाने के लिए ही व्यापक चिरंतन सत्य को अपनी परिधि में बांधती है। सच्चा कलाकार लोक-हृदय को पहचाने बिना पूर्णता को प्राप्त नहीं हो सकता। जो लोक-हृदय को पहचानता है वही अमर होता है। जनता उसी को जीवित रखती है। सत्य की प्राप्ति के लिए काव्य और कलाएं जिस सौंदर्य का सहारा लेते हैं, वह जीवन की पूर्णतम अभिव्यक्ति पर आश्रित है। इन अंधे व्यक्तियों की आंतरिक ऊर्जा इतनी तीक्ष्ण या पैनी हो जाती है कि वे सब कुछ अपने अंदर महसूस करने लगते हैं। आंख एक इंद्रिय है, उपकरण मात्र है। सही चेतना तो मस्तिष्क है। ऐसे व्यक्ति बैठे-बैठे सब कुछ जान और समझ लेते हैं। उनकी अनींद्रिय शक्ति इतनी प्रबल हो उठती है कि वे महान् से महान् सृष्टि की रचना कर सकते हैं।

यह जिज्ञासा का विषय है कि सब अंधे एक तरह के क्यों नहीं होते? इसका

मनोवैज्ञानिक तथा जेनेटिक कारण है—एक ही पिता के कई पुत्र होते हैं पर प्रत्येक में गुण, शील और आचार के तत्त्व भिन्न-भिन्न होते हैं। देखा गया है कि जो वस्तु या परिस्थिति किसीको सुखमय मालूम होती है वही वस्तु और परि-स्थिति दूसरे के लिए दुःखमय हो जाती है। एक वस्तु जो एक के लिए लाभदायक है वही दूसरे के लिए विष है। तात्पर्य यह है कि जीवन में नाना तत्त्व विद्यमान हैं। कोई सबल है, कोई निर्बल है। जीवन की व्यापकता एवं गहराई को सब नहीं समझ सकते।

एक अंधे व्यक्ति के लिए बाहर का संसार शून्य है। वे आकाश में हवाई जहाज तथा पक्षियों को उड़ता नहीं देख सकते। वे सूर्योदय तथा सूर्यास्त नहीं देख सकते। वे परिंदों की चहचहाहट सुनते हैं, लेकिन परिंदों को देख नहीं सकते। सरिता का कलरव तथा समुद्र की लहरें भी वे नहीं देख सकते। लोगों की मुखा-कृति नहीं देख सकते। अतएव वे सदैव चेहरे पर एक हलकी मुसकान लिए रहते हैं जिससे यह भास होता है कि वे ऊपर लिखी सब चीजों को न देखते हुए भी उनकी कल्पना कर सकते हैं। एक अंधा व्यक्ति यह भी सोचता रहता है कि उसके आसपास के लोग उसे गलत न समझ जाएं। जो बिलकुल नए आदमी हैं उनके लिए एक अंधा तो और भी अधिक जिज्ञासा का कारण बन जाता है। एक अंधे के लिए प्रकाश और अंधकार में कोई अंतर नहीं। वह सारे सुख-आनंद को केवल महसूस कर सकता है लेकिन उस माध्यम को नहीं देख सकता जिसके द्वारा आनंद और सुख की प्राप्ति होती है। उसका आनंद आधा रह जाता है। वह जो कुछ भी बोलता है उसका आधार सुनी हुई बातें, ध्वनि तथा उसकी अपनी संवेदन-शीलता एवं कल्पना-शक्ति ही होती है।

बाहरी संसार के घृणित और कारुणिक दृश्यों का किसी अंधे पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिए घृणा और करुणा संबंधी अनुभूतियां उनके अंदर नहीं रहतीं। पर इन दोनों तत्त्वों का विवेचन कर जब उन्हें समझाया जाता है कि घृणित क्या है और करुणामय क्या है, तब वह अपनी आंतरिक चेतना से उनका विवेचन करता है। अंधे व्यक्ति विपत्तिजनक और विपत्तिरहित परिस्थितियों में भेद नहीं कर सकते। ऐसे अवसरों पर उनकी आवाज साधारण ही रहती है। विपत्ति की कल्पना या धारणा न होने से वे इस तरह से उत्तेजित व विचलित नहीं होते जैसे हम-आप हो जाते हैं। उनके शांतिमय जीवन का यही रहस्य है।

सूरदास की कल्पना-शक्ति इतनी प्रखर, तीव्र और पैनी होती है कि टी० वी० में रोमांचक दृश्य को वे वैसा ही देखते हैं जैसे आंखवाले देखते हों। उनकी एकाग्रता तथा समन्वय की बुद्धि विलक्षण रहती है। जिस दृश्य में जिस अनुभूति की प्रमुखता रहती है उसे वे अपनी प्रतिभा से पूर्ण कर लेते हैं। रोमांचक दृश्यों का भरपूर आनंद लेते हैं। भौतिक जगत् का ज्ञान भले ही अंधे व्यक्तियों को न

हो पर मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक क्षेत्रों में वे किसी से भी कम नहीं होते। वे अपनी अंतर्दृष्टि से देखते हैं, अंतःकरण की आवाज सुनते हैं और तदनुसार बोलते हैं। जिन सामग्रियों में जीवन के शाश्वत प्रश्न के समाधान मिलते हैं और आंतरिक छटपटाहट नहीं रहती उन तथ्यों को एक अंधा व्यक्ति अपनी अंतर्दृष्टि से खोज लेता है। सारे आध्यात्मिक कर्म जो आत्मा को पहचानने, उसे विकसित करने और बंधन से मुक्त करने के लिए अपेक्षित होते हैं वे बिना आंखवाले आदमी के द्वारा सुचारु रूप से संपादित होते हैं। अंधत्व में बाहर की आवाज तथा बाहर का कोलाहल कोई अर्थ नहीं रखते। वे अर्थहीन होते हैं। कबीर के शब्दों में एक अंधा गा उठता है—"उन्मन भया मगन रस पीले"—मेरा जो मन है वह बाहरी आकर्षण को नहीं देखता, मैं तो आंतरिक आनंद में मग्न हूं।

अंधे व्यक्ति तीन प्रकार के हो सकते हैं—जन्मांध, बाल्यकाल में बड़ी माता की बीमारी के कारण एवं प्रौढ़ावस्था में उच्च रक्तचाप या मधुमेह आदि बीमारियों के कारण। ऊपर लिखे कारणों से आंखों की रोशनी का चले जाना एक दुर्घटना मात्र ही है। जन्मांध व्यक्तियों के बारे में मैंने चर्चा कर ली है।

जो बालक बाल्यकाल में आंखें खो बैठते हैं उन्हें जीवनपर्यंत अंधेरा ही अंधेरा दिखता है। लेकिन ऐसे बच्चे प्रतिभावान हो जाते हैं, उनमें ऐसी शक्तियां उत्पन्न होती हैं जो आंखवालों के पास नहीं रहतीं। बाल्यकाल के अनेक संस्मरण उनके पास रहते हैं और उनका वे पूरा-पूरा लाभ उठाते हैं।

प्रौढ़ावस्था में जिनकी आंखों की रोशनी जाती है उनका जीवन अत्यंत कटु हो जाता है। वे जीवन के सारे दृश्य देखे रहते हैं, सौंदर्य का ज्ञान रहता है तथा सारी स्थूल चीजों की स्मृति मानस-पटल पर बनी रहती है। फिर भी वे धीरे-धीरे अंधेरे की दुनिया से सामंजस्य कर लेते हैं और कुछ लोग तो इतने प्रभावशाली हो जाते हैं कि उनके लिए आंखों का जाना वरदान सिद्ध हो जाता है।

गायक तो सभी अच्छे लगते हैं लेकिन जो गायक जन्म से अंधा रहता है वह ध्वनि की बारीकियों को आत्मसात करके राग और ताल को कितनी मार्मिकता से समझता है कि उसका गायन आध्यात्मिक स्तर का हो जाता है। वे जो भी गाते हैं उसमें अपना हृदय उड़ेल देते हैं। सदाशयता, सहृदयता तथा प्रेम की सरिता बहा देते हैं। उनकी तन्मयता एकाग्रता तथा समर्पण की भावना देखते और सुनते ही बनती है।

उदाहरण के तौर पर, वर्तमान समय में रवींद्र जैन, जो सिनेमा जगत् में एक प्रसिद्ध संगीत डायरेक्टर हैं, अंधे हैं। जो धुनें वह बनाते हैं वे अत्यंत प्रभावशाली और कर्ण मधुर होती हैं। इसी तरह सुरेंद्रसिह रागी, जो जन्मांध हैं, जब अपना भजन गाते थे तब चारों तरफ सन्नाटा छा जाता था। आज से चार-पांच दशक पूर्व के० सी० डे जो 'न्यून-थिएटर्स' कंपनी में काम करते थे, उनका गायन

आज भी बेहद लोकप्रिय है। उनकी आवाज में ऐसा आकर्षण तथा कंपन था जो वातावरण में गूंजता रहता था। के० सी० डे ने अपने समय में संगीत के कई राष्ट्रीय पुरस्कार जीते थे।

एक अंधा जब यह सुनता है कि एक जवान आदमी को चाकू से काटकर उसकी बोटी निकाल दी है तो वह अंधा इतना ही समझता है कि वह व्यक्ति मर गया है। उस पैशाचिक कृत्य, उस अमानवीय तरीके की वीभत्सता को वह नहीं समझता। आश्चर्य तो यह है कि आज का दोनों आंखोंवाला आदमी भी जब ऐसी लाश देखता है तो अपनी आंख मूंद लेता है और अंधे की तरह बोलता है मानो उसने कुछ देखा ही नहीं है। पूछताछ करने पर गलत बोलता है तथा किसी को भी गुमराह करने में नहीं झिझकता।

एक अंधे व्यक्ति को जब यह बताया जाता है कि देखना सांप है, तो उस अंधे की प्रतिक्रिया नहीं के बराबर रहती है। क्योंकि वह केवल इतना जानता है कि सांप विषैले होते हैं। अंधे की आवाज बिलकुल साधारण रहती है और वह पूछता है कि सांप कितना बड़ा है तथा कितना विषैला है। जबकि आंखवाला व्यक्ति सांप को देखता है तो उसकी प्रतिक्रिया भयानक होती है। वह चीख उठता है—बचाओ, बचाओ। कहने का तात्पर्य यह है कि अंधा व्यक्ति बाहर के पदार्थों के आकार का तथा रूप-रंग का अंदाज ही नहीं लगा सकता।

बिना आंखों के मनुष्य का जीवन अंधकारमय रहता है। आंखें हैं लेकिन यदि वे अनियंत्रित हैं तो हृदय में पवित्रता, पुनीत भावनाओं का जन्म हो ही नहीं सकता। एक अंधा व्यक्ति जो कुछ सुनता है वही उसके लिए सब कुछ है। उसे न तो सांप का ज्ञान है और न ही पर्वत, नदी, नालों का। वह किसी भी तरह के सौंदर्य से परिचित नहीं है। सौंदर्य, रमणीयता, लावण्य तथा सुरम्य पदार्थों तथा स्थितियों का उसे कोई ज्ञान नहीं रहता। एक अंधे व्यक्ति को प्राय: यह कहते सुना जाता है कि न तो उसे मृत्यु से भय है और न जीने की लालसा है। मृत्यु से भय इसलिए नहीं है क्योंकि उसके लिए तो सभी कुछ अंधकारमय है। और वह मृत्यु को अंधेरे में जाना ही समझता है लेकिन उसकी दिव्य दृष्टि उसे आत्मसंतोष देती रहती है। जीने की लालसा इसलिए नहीं है कि आखिर वह किसके लिए जीवित रहे। किस उम्मीद से जिए, अपने को जीते हुए भी मृतप्राय मान लेता है। उसके लिए सुख और आनंद की कल्पना केवल भोजन तथा निद्रा है। वह भोजन कर लेता है तथा किसी भी तरह जीता रहता है। लेकिन मन के अंदर के कोलाहल को वह व्यक्त नहीं कर सकता।

सभी अंधे सूरदास, मिल्टन एवं होमर नहीं हो सकते। लेकिन फिर भी समुचित प्रेरणा पा जाने पर ऐसे अंधे व्यक्ति भी अपने उच्च विचारों को अभिव्यक्त करने लगते हैं।

अंधे व्यक्ति की अभूतपूर्व मेधा के कई उदाहरण हैं। केवल आवाज सुन-सुनकर वे ग्रंथ तथा पोथी आदि को कंठस्थ कर लेते हैं। इन ग्रंथों तथा काव्य में परिभाषित आदर्शों से ही वे अपनी विचार-शक्ति को परिमार्जित करते हैं। उन्हीं स्रोतों से जीवन की भिन्न-भिन्न विचारधाराओं को समझने का वे निरंतर प्रयास करते रहते हैं। नौबत यहां तक आ जाती है कि उनकी आवाज में दृढ़ता तथा आत्म-विश्वास के तत्त्व झांकने लगते हैं। जिसके बारे में भी वे सोच-समझकर अपना मत बनाते हैं, वह विवेकपूर्ण होता है।

एक राजा अपने मंत्री तथा सेनापति तथा एक सैनिक के साथ जंगल में रास्ता भूल जाता है। कुछ दूर जाने के बाद वह एक वृक्ष की छाया में बैठकर अपने आदमियों को इधर-उधर भेजता है। कुछ ही दूर पर एक अंधा जंगल में बैठा हुआ मंत्री महोदय को मिल जाता है। मंत्री के तौर-तरीके तथा वाणी को वह अंधा खूब समझता है और वह गोल-मोल उत्तर दे देता है। थोड़ी देर बाद सेनापति भी आता है और सैनिक भी आते हैं लेकिन अंधा उन लोगों को सही रास्ता नहीं बताता। थोड़ी देर बाद राजा स्वयं उसके पास आते हैं और उससे बातचीत करते हैं। राजा की वाणी की शालीनता तथा गंभीरता को देखते हुए एवं जिस पदचाप को अपनाते हुए राजा अंधे के पास आए थे उससे राजा के स्तर को समझकर वह अंधा सही रास्ता बता देता है।

लाक्षणिक तौर पर आंखोंवाला व्यक्ति भी अंधा कहा जा सकता है। गांधी जी कहा करते थे कि अंधा वह नहीं है जिसकी आंखें फूट गई हैं, अंधा तो वह है जो अपने दोषों को ढंकता है। जो सचमुच अंधा रहता है उसकी आवाज में दोष ढंकने की भनक भी नहीं रहती। उसकी वाणी स्पष्ट रहती है। आत्म-वंचना के तत्त्व उसके व्यक्तित्व में नहीं होते। उसके जीवन में पश्चात्ताप एवं आत्मपरिताप के कोई कारण नहीं रहते। भूलों को ढांकनेवाला व्यक्ति सचमुच में अंधा ही माना जाता है।

महाभारत की गांधारी ने विवाह होने के बाद अपने पति को अंधा पाकर स्वयं भी अपनी आंखों पर पट्टी बांध ली और जीवन-पर्यंत उसने एक अंधी महिला का जीवन बिताया। इसके फलस्वरूप उसके अंदर इतनी विलक्षण शक्ति उत्पन्न हो गई थी कि उसने अपने पुत्र दुर्योधन को युद्ध के लिए अजेय बनाना चाहा। उसने अपने पुत्र से कहा कि तुम निर्वस्त्र होकर मेरे सामने खड़े हो जाओ। मेरे देख लेने के बाद तुम्हारा पूरा शरीर वज्र के समान हो जाएगा। लेकिन भगवान् कृष्ण ने दुर्योधन को सलाह दी कि वे एक लंगोट पहनकर अपनी मां के सामने जाएं। एकदम नग्न अवस्था में जाना उचित न होगा। तदनुसार दुर्योधन अपनी मां के सामने लंगोट पहनकर आया, इसीलिए उसका पूरा शरीर तो वज्र का हो गया लेकिन लंगोट से ढंका हुआ हिस्सा कमजोर ही रह गया और उसी स्थल पर गदा का

आघात कर भीमसेन ने दुर्योधन को परास्त कर दिया। इस कथा से गांधारी की विलक्षण आध्यात्मिक शक्ति का पता चलता है।

दारुण दुःख तथा संताप से संतप्त मानव की आवाज दयनीय हो जाती है। वाणी में कातरता का बोध होता है। अपराध-बोध से वाणी में दीनता आ जाती है। पर एक अंधे व्यक्ति की वाणी में वैसे तत्त्व आ ही नहीं सकते, क्योंकि वह आत्म-संतोषी होता है तथा सेवा-भाव से प्रेरित रहता है। उसमें स्वार्थपरता नहीं रहती। वह अपनी तीसरी आंख की रोशनी देखता रहता है। वह गलत काम कर ही नहीं सकता। सूरज की किरण जिस तरह आकर एक क्षण में सब अंधेरे कोनों को जगमग कर देती है, सच्ची आत्मा (आवाज) की किरण उसी प्रकार जीवन के असीम सुख, दुःखों को क्षण-भर में प्रकाशित कर देती है। सूरदास के हृदय और मस्तिष्क में संवेदनशीलता तथा पवित्रता की लौ सतत रूप से प्रज्वलित रहती है। दिव्यता का बोध कराती है। लाक्षणिक तौर पर आज का मनुष्य दो आंखें रखते हुए भी अंधों जैसा व्यवहार कर रहा है और अंधेरे में जी रहा है।

१०

आवाज और संगीत, सामूहिक संगीत तथा लोकनृत्य

मानव-जीवन में संगीत और नृत्य का विशेष स्थान है। कविवर रवींद्रनाथ टैगोर का कथन है, "स्वर्गीय सौंदर्य का कोई साकार रूप और सजीव प्रदर्शन है तो उसे संगीत ही होना चाहिए।" हमारे अंत:स्थल की घोर व्यथाओं को गुंजित करनेवाले गीत ही हमारे सबसे मधुरतम गीत होते हैं। नृत्य एक ऐसा माध्यम है जो समुचित संगीत के साथ जीवन को अर्थ प्रदान करता है। संगीत ऐसी कला है जो तत्त्वान्वेषी, तत्त्व-चिंतक और तत्त्वदर्शी के समान स्थूल से सूक्ष्मता की ओर तथा बाहर से भीतर की ओर ले जाती है। इसीसे जीवन का पूर्ण विकास होता है। मानव-जीवन की उच्चतर भावनाएं इसी के द्वारा अभिव्यक्त होती हैं। अपराहत पौरुष की उद्दीप्त अग्निशिखा इसी माध्यम से प्रज्वलित होती है। भौतिकवाद से अध्यात्मवाद की ओर ले जाने का श्रेय संगीत को प्राप्त है। यथार्थ में यह जीवन का आग और पानी है। संगीत-साधक तपस्वी के रूप में अपनी आवाज पर नियंत्रण लाते हैं तथा रियाज की जो पद्धति है, उसमें न केवल स्वर-साधना की जाती है बल्कि अन्य संयम नियमों का भी पालन किया जाता है।

इंद्रिय और मन से ऊपर उठने तथा अमरत्व पाने के लिए संगीत साधना करते आ रहे हैं। तानसेन तथा बैजू बावरा की स्पर्धा, चुनौती इसका एक उदाहरण है। तानसेन ने अपना राग अलापा—हिरन आ गए। तानसेन ने अपने गले का हार हिरन को पहना दिया। थोड़ी देर बाद बैजू ने अपना गायन प्रारंभ किया। हिरन लौट आया। उसके गले का हार बैजू ने लेकर तानसेन को दे दिया। बैजू ने गाना जारी रखा। पत्थर पिघल गया। बैजू ने अपना वाद्य-यंत्र सितार उसमें जमा दिया। उसने तानसेन से कहा कि इसे पिघलाकर मेरा सितार मुझे दो। तानसेन वैसा नहीं कर पाया। उसकी हार हो गई। बैजू के संगीत का आध्यात्मिक स्तर तानसेन से अधिक था। संगीत-साधना का कोई अंत नहीं है।

संगीत की लोकप्रियता राग और ताल पर आधारित है। लेकिन बिना मधुर आवाज के वह फीकी हो जाती है। उसी तरह किसी की आवाज मीठी हो लेकिन बिना सुर और लय के वह कुशल संगीतज्ञ नहीं हो सकता। किस विषय को लेकर संगीत की धुनें बनी हैं यह भी अत्यंत आवश्यक है। सुर और लय की परिपक्वता राग है, कर्ण-मधुरता राग के अंदर समाहित है। लेकिन ताल का भी अपना एक विशेष स्थान है। प्राचीन भारतीय संगीत आंतरिक चेतना से जुड़ा हुआ था। उसकी प्रकृति अंतर्मुखी थी। वह माधुर्य-प्रधान था। भारतीय संस्कृति की यही विशेषता है। पश्चिमी संगीत का आधार एकरूपता है, जो मनुष्य के मर्मस्थल तक नहीं पहुंच सकता। इस संगीत से मनुष्य को आंतरिक ऊर्जा नहीं प्राप्त होती। शारीरिक थकान ही इसका अंत है। मनुष्य के जीवन को सरस बनाने में संगीत का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। मानव की कोमल भावनाओं को झंकृत, तरंगित करने में तथा उसमें देवत्व का उदय करने में गायन, वादन महती भूमिका निभाते हैं। इससे पीड़ित हृदय को शांति और संतोष मिलता है। पाश्चात्य जगत् में विज्ञान की तरह संगीत पर भी अनुसंधान चल रहा है। यदि मानवीय गुणों तथा आत्मिक आनंद को जीवित रखना है तो आदमी को अपने-आपको संगीत से जोड़े रहना चाहिए।

शरीर, मन और आत्मा तीनों को बलवान बनानेवाले तत्त्व परिपूर्ण मात्रा में संगीत में विद्यमान हैं। कार्लाइल का कथन है—"संगीत के पीछे ईश्वर चलता है।" विश्वविख्यात गायक एनरिको कारूसो का कहना है–"जब कभी गायन की मधुर स्वरलहरियां मेरे कानों में गूंजती हैं, मुझे ऐसा लगता है मानो मेरी आत्म-चेतना किसी अदृश्य जीवनदायिनी सत्ता से संबद्ध हो गई है। मैं शरीर की पीड़ा भूल जाता, भूख-प्यास और निद्रा टूट जाती। मन को विश्राम और हलकापन मिलता। मैं तभी से सोचा करता था कि सृष्टि में संगीत से बढ़कर मानव जाति के लिए और कोई दूसरा वरदान नहीं है। संगीत का संबंध स्वर से उतना नहीं है जितना कि हृदय और भावनाओं से रहता है।"

प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइंस्टाइन ने जब अपने आविष्कारों के दुरुपयोग के बारे में सुना तो वह अत्यंत निराश हुए। निराश जीवन के अंतिम क्षणों को उन्होंने 'वायलिन-वादन' के सहारे काटा। गायन के नौ रस माने गए हैं। उनके लिए विशेष राग-रागिनियां और विशेष समय का निर्देश किया गया है। समय, राग और रस इन तीनों के सम्मिश्रण से एक विशेष प्रकार का ध्वनि-प्रवाह उत्पन्न होता है और उससे अनेक मानसिक रोगों का उपचार किया जाता है। संगीत की उपयोगिता तभी है जब उसे उच्च उद्देश्यों के लिए प्रयुक्त किया जाए। यदि पशु प्रवृत्तियों को भड़काने के लिए संगीत का उपयोग किया जाए, तो उसमें मानव का ही दोष है। सस्ते सिनेमा संगीत ने उन महान् शास्त्रीय उपलब्धियों को कई

रूपों में वर्तमान समय में नष्ट कर दिया है। आज के सिनेमा के संगीत न केवल भड़कीले होते हैं अपितु सस्ती लोकप्रियता पाने के लिए उनमें कुछ भी गाया जाता है।

संगीत की दुनिया इतनी मधुर और सुहावनी होती है कि उस दुनिया में मधुर आवाज बेशकीमती मानी जाती है। उस आवाज को खरीदा जाता है, बेचा जाता है तथा बांधकर रखा जाता है। १९४० के आसपास के० एल० सहगल की आवाज का जादू प्रसिद्ध है। उस समय के० सी० डे, जूथिका रे जैसे अन्य संगीत गायक भी थे और उनकी आवाज में अद्‌भुत आकर्षण शक्ति थी। आज-कल किशोर कुमार तथा लता मंगेशकर की आवाजों का आकर्षण चारों तरफ है।

सुगम संगीत की विभिन्न गायन शैलियां; जैसे भजन, गीत, लोरी, गजल, कव्वाली, नात, चैती, ठुमरी, दादरा आदि फिल्म संगीत के दायरे में आ गई हैं। मनोरंजन के क्षेत्र में साधारणीकरण की सबसे अधिक शक्ति आज सिनेमा के पास है पर अब हिंसा, मारकाट, बलात्कार के अटपटे दृश्य दिखाकर यह उत्तम साधन अपनी गरिमा खो रहा है। उच्छृंखल तथा फूहड़ बनता जा रहा है। संगीत फिल्मों का शुरू से ही प्रमुख अंग रहा है। आदि से अंत तक फिल्में संगीत से सन-सनाती और गूंजती रहती हैं। लेकिन दुःख तो इस बात का है कि फिल्म निर्मा-ताओं ने संगीत को भी अब हलका बना दिया है। उसे भी अपने व्यापार की पूंजी के अंतर्गत ही सन्निहित कर रातों-रात मालदार होने का एक सशक्त जरिया बना लिया है। फिल्म संगीत की अप्रतिष्ठा, गिरावट और निम्नस्तर का छिछोरा-पन केवल निर्माताओं की इस मनोवृत्ति का परिणाम है। शुरू-शुरू में फिल्म जगत् में एक से एक प्रसिद्ध गायक थे। गोविंदराव टेंबे, केशवराव भाले, मास्टर कृष्ण राव, कुमार गंधर्व तथा सरस्वती राणे जो कि शास्त्रीय संगीत में निष्णात थे। उस समय आर० सी० बोरल ने नवीन और प्राचीन का सम्मिश्रण कर आधुनिक संगीत से सर्वप्रथम परिचय कराया।

पाश्चात्य संगीत की कहानी इस शताब्दी के प्रारंभ से 'जाज' से शुरू हुई। 'जाज' में मादक अफ्रीकी ड्रम, शहनाईनुमा, क्लेरियनेट, ट्रंपेट और ट्रोबोनस थे। यह बहुत जोशीला होता था। उन्हीं दिनों अमेरिका में एक और संगीत लोकप्रिय हुआ, जिसका नाम था 'दि ब्लूज'। इन गानों में शोषित दासों की व्यथा थी, कराह थी तो 'जाज' संगीत में गुलामी के पहले उसके विरुद्ध मुक्ति का उल्लास था। प्रारंभ में 'ब्लूज' एक धीमा व संवेदनशील संगीत था, परंतु इलेक्ट्रिक गिटार जैसे साजों के आविष्कार के बाद वह भी तेज और उत्तेजनापूर्ण हो गया। उसी समय 'राक एंड राल' के नाम से एक नया संगीत शुरू हुआ। यह नौजवानों में विशेष रूप से लोकप्रिय हुआ। नौजवान गाने के साथ नाचने भी लगे। उस समय

इस संगीत के मुख्य गायक 'बिलहेलसी' थे। इसीसे प्रारंभ हुआ—पापुलर या पाप म्यूजिक और तभी उदय हुआ 'एल्विस प्रेसली' का नाम। अपने नशीले गायन और नृत्य द्वारा उसने चारों तरफ धूम मचा दी। उन्हें 'राक एंड राल' का सम्राट् कहा जाता है।

वर्तमान समय में हमारे सामने माइक्रोफोन थामकर, गला फाड़कर चीखते-चिल्लाते तथा अनगिनत चित्र-विचित्र वाद्यों की कर्ण-भेदी आवाज के साथ फूहड़ ढंग से कूल्हे मटकाते, गरदन झटकाते, गले में गिटार लटकाकर, झूमते हुए सेक्सी इशारे करते हुए स्त्री और पुरुषों की तसबीर भी आ जाती है। इस समुदाय ने आवाज और संगीत का बुरा हाल कर रखा है। ऐसा विषैला और नशीला संगीत अब हमारे देश में भी शुरू हो गया है। भारतीय फिल्मों में पश्चिमी संगीत, बीटल, पाप तथा जाज ने पूरा रास्ता ही प्रशस्त कर दिया है। मंच पर अंग-प्रदर्शन, स्वमैथुन, नंगा सीना, लंबे बाल, तंग पोशाकें पार्श्व संगीत के हिस्से माने जाने लगे। यह उत्कृष्ट संगीत समझा जाने लगा। और फिर दिमाग को खाली करने का सर्वोत्तम उपाय समझा जाने लगा। आज सब तरफ 'डिस्को-फीवर' है। सन् १९४०-५० में शास्त्रीय संगीत पार्श्व गीत का आधार था। क्रमशः पाप-म्यूजिक ने घर बनाया।

सन् १९६० में शम्मीकपूर का 'हू-हू-याहू' युग प्रारंभ हुआ। इसमें कोई शक नहीं कि उसमें एक विशेष आकर्षण था।

सन् १९७० में राजेश खन्ना युग जिसमें 'पाप ही पाप' की ध्वनि थी, लेकिन वजन नहीं था। सन् १९८० में भप्पी लाहिड़ी युग आया। इसमें 'पूप' अधिक है और 'पाप' का अंश कम है। इस अधःपतन को देखते हुए ऐसा लगता है कि सिनेमा जगत् पुनः पुराने शास्त्रीय संगीत की ओर झुकेगा।

लता मंगेशकर जैसी गायिका, जिन्होंने ४०,००० से अधिक गीत गाए हैं, वह भी अब धीरे-धीरे शास्त्रीय संगीत की ओर झुक रही हैं। वह एक ऐसी गायिका हैं जो गत चालीस वर्षों से सिनेमा जगत् में छाई रही हैं और दिन-ब-दिन अपनी कला तथा आवाज से संगीत को सुमधुर बना रही हैं। उन्होंने इन ४० वर्षों में सब तरह के गीत गाए हैं। इन ४० वर्षों में समय में परिवर्तन हुआ है। लेकिन प्रतिभा-संपन्न गायिका की आवाज में कोई अंतर नहीं आया है। उसमें परिपक्वता तथा मधुरता और अधिक आ गई है।

संगीत में सदैव शब्दों पर जोर दिया जाता था लेकिन गायक की आवाज को सदैव प्रमुखता मिली है। फूलों की आवाज से लुहान होनेवाली एक मुलायम आवाज और वह है आवाज तलत महमूद की, जो चलचित्र-प्रेमियों के दिलों पर राज करती है। उनकी आवाज ने जवां दिलों की धड़कन को उद्गार दिया है। गजल-गायकी का उनका अपना अंदाज है। उनकी अपनी इमेज है। बेहद नाजुक

और मुलायम आवाज। उन्हें सुनते हुए लगता है कभी उन्हें कुछ चुभ जाए तो तुरंत आंखों में पानी आ जाता है।

ध्वनि-विज्ञान में तीन मूलभूत सिद्धांत हैं—शब्द पाक्—शब्दों का निर्माण, वाक्य पाक्—वाक्यों की रचना, काव्य पाक्—कविता की रचना, उसी तरह संगीत की भाषा में तीन बोल हैं—दा, रा, दिर। इन्हीं तीनों बोलों से अनंत बोल विकसित हुए हैं। २२ श्रुतियां हैं, २२ स्वर हैं। उनमें से सात प्रमुख स्वर माने जाते हैं। स्वर, लय और ताल तीनों संगीत में एक हो जाते हैं। इसीलिए मन की एकाग्रता जल्दी होती है। चित्त की चंचलता शीघ्र काबू में आ जाती है।

"मद्भक्ताः यत्र गायंति, तत्र तिष्ठामि नारद।"

अर्थात् जहां प्रवचन होता है वहां नहीं, किंतु जहां भक्तिगान होता है वहां मैं बैठता हूं।

कहने का तात्पर्य यह है कि भक्तिगान अत्यंत आकर्षक तथा तल्लीन कर देनेवाला होता है। उस गान में संगीत का उद्देश्य निहित है। नाद भी संगीत है। अनहदनाद तथा अनाहतनाद। संघर्ष से या आघात से जो नाद होता है वही संगीत है। प्रकृति में भी जो संगीत है वह वृक्षों के पत्ते जब हवा से टकराते हैं तब ही उत्पन्न होता है। अनाहतनाद—ईश्वर प्रदत्त। हृदय की आवाज को संगीत के द्वारा ऊंचा उठाया जाता है। संगीत प्रेरक है तथा आनंदानुभूति देनेवाला है। संगीत की व्याख्या करना आसान नहीं। इसका विस्तार अपरिमित है। भिन्न-भिन्न संगीतों में परिवर्तन कर तथा सामंजस्य लाकर पंडित रविशंकर महाराज ने मास्को महोत्सव में स्वर-मिलन का एक नया अध्याय प्रारंभ किया है। पश्चिमी संगीत तथा पौर्वात्य संगीत का उन्होंने एक कलात्मक मिलन किया है। और उससे उत्पन्न हुई ध्वनि स्वर-लहरी चमत्कारिक सिद्ध हुई है। संगीत के कितने व्यापक आयाम हो सकते हैं इसका आभास इस स्वर-मिलन को सुनकर ही हो सकता है।

आदिकाल से संगीत और काव्य-कला, वेदों के मंत्रों से लेकर स्त्रियों के चक्की पीसने के गीतों तक व्याप्त थी। भारतीय मानव की गणना देवताओं में होती थी क्योंकि व्यक्ति ही स्वर है और अस्वर ही असुर है। हमारे पूर्वजों ने भारत को केवल दो आधार-स्तंभों पर ही जीवित रखने का निर्णय लिया था। एक स्तंभ है ज्ञान-विद्या और दूसरा है गान-विद्या, जिससे साहित्य एवं संगीत का जन्म हुआ है।

जहां शब्द स्वरों की तलाश करें वह सुगम संगीत और जहां स्वर शब्दों की तलाश करें वह शास्त्रीय संगीत कहलाता है। फिल्मी गीतों को शब्द और स्वर के समान मेल के कारण सुगम संगीत के अंतर्गत रखा जाता है। लेकिन आज फिल्मी

गीतों ने पचास से भी अधिक वर्ष पार करके प्रौढ़ अनुभव हासिल कर लिए हैं। फिर भी धीरे-धीरे उसकी लोकप्रियता कम होती जा रही है।

युवा पीढ़ी ने तेज लय के हर गायक को चाहा है। चाहे वह 'बीटल्स' रहे हों या 'अब्बा' या फिर 'बोनी एम'। साम्यवादी देशों में मजबूरन अपनी वर्जनाओं में रियायतें करनी पड़ी हैं, ताकि संगीत बना रहे। 'पाप'-संगीत एक जाना-माना है और स्थापित शास्त्र के रूप में विकसित हो चुका है। 'पाप-संगीत' वास्तव में दूसरे विश्व-युद्ध के बाद की देन है। पश्चिम में पहले म्यूजिक-हॉल, फिर स्टेज-म्यूजिकल्स और फिर 'जाज' का प्रचार हुआ। पाश्चात्य ढंग से साजों का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। करीबन हर फिल्म में 'कैबरे' को ठूसने की परंपरा पश्चिम की देन है। देखना यह है कि अंधी दौड़ कहां जाकर खत्म होगी और हम भारतीय अपने पारंपरिक संगीत का मूल्यांकन कर उसका स्वरूप बनाए रख सकेंगे या नहीं।

मुझे याद है कि जब मैं आगरा कॉलेज में पढ़ता था तब वहां अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन हुआ करता था। देश-भर के गवैए, संगीतज्ञ एकत्रित होते थे और भारतीय संगीत का एक ऐसा माहौल बनता था जिसकी कल्पना अब केवल 'तानसेन समारोह' देखकर ही लगाई जा सकती है। जब पंडित ओंकारनाथ व्यास गाते थे—"मैया मैं नहीं माखन खायौ" जिस राग और ताल में गाते थे उसका क्या कहना ! सारे श्रोतागण आत्मविभोर हो जाते थे। विलक्षणता इस बात की थी कि आधे घंटे तक वे इसी एक पंक्ति को दुहराते रहते थे। एक समा बांध देते थे। पूरे भारतवर्ष में बड़े-बड़े शहरों में ऐसे संगीत सम्मेलन हुआ करते थे। लेकिन अब उनकी संख्या कम होती जा रही है। सिनेमा जगत् के सस्ते संगीत के कारण उन पुरानी परंपराओं का क्षय हो रहा है। अविभाजित बंगाल में कलकत्ता तथा ढाका संगीत के तीर्थ-स्थल माने जाते थे।

ढाका के काजी नजरुल इस्लाम अपने समय के विख्यात राष्ट्रवादी कवि थे। भारत में मैथिलीशरण गुप्त तथा माखनलाल चतुर्वेदी के राष्ट्रीय गान चारों तरफ गाए जाते थे। माखनलाल चतुर्वेदी का यह गाना—

"मुझे तोड़ लेना वन माली, उस पथ पर तुम देना फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जाएं वीर अनेक।"

ये पंक्तियां आज भी नवयुवकों को प्रेरणा प्रदान करती हैं लेकिन कितने लोग उसके अनुसार अपनी जीवन-शैली को बनाते हैं। कलकत्ता शहर के घर-घर में शास्त्रीय संगीत गाया जाता था। पर अब साम्यवाद तथा 'नक्सलाइट' की लहरों से मानव-जीवन तथा संगीत पर बहुत बुरा असर पड़ा है। दक्षिण भारत में संगीत और नृत्य के जो बड़े-बड़े केंद्र थे वे आजकल भी चल रहे हैं। पर उस पैमाने पर नहीं जैसा कि चाहिए। पुराने समय में जो रियासतें थीं वे कलाकारों की कद्र

करती थीं तथा उन्हें प्रश्रय मिलता था। अब राज्याश्रय नहीं के बराबर है। उदय शंकर भट्ट की नृत्य पार्टी अपने-आपमें भारतीय परंपरा की एक बहुत बड़ी देन थी। शांति निकेतन में वसंतोत्सव के अवसर पर रवींद्र संगीत का आयोजन होता था। कालिदास के 'ऋतु-संहार' को नृत्यों तथा संगीत के माध्यम से प्रदर्शित किया जाता था। उस समय श्रोतागण अपने जीवन को सार्थक समझते थे। रवींद्र संगीत अपनी स्वयं की महानता के कारण आज भी जीवित है पर उसको सीखने-वाले बहुत कम रह गए हैं।

हर व्यक्ति जीवन का अलग-अलग अर्थ रखता है। वे व्यक्ति जो सुख-शांति, आत्मसंतोष तथा सुकून पाना चाहते हैं, उनके लिए गीतकारों का संगीत संबल के रूप में आता है—मुकेश, मोहम्मद रफी, किशोरकुमार, लता मंगेशकर ऐसे गीत-कार हैं जिनकी अनूठी गायन शैली किसी को भी मुग्ध कर सकती है। इन सबकी आवाज और वाणी भिन्न-भिन्न है, पर उनमें कर्ण मधुरता एवं सहृदयता की लहरें उठती रहती हैं। उनकी आवाज में कलियों से प्रणय निवेदन करनेवाले भंवरे जैसी गुनगुनाहट रहती है।

'जूथिका रे' बंगाल की एक प्रसिद्ध गायिका थी। विद्यापति, जयदेव के श्रृंगाररस के गीतों को गाती थी। सबका हृदय एक विशेष प्रकार के सौंदर्य से चमक उठता था। भक्तिरस के गीतों को वह ऐसी तन्मयता से गाती थी मानो मीरा भजन कर रही हो। नारी के श्रृंगार, क्षमा, दया, धर्म एवं समर्पण को लेकर उसके भजन अभी भी कानों में गूंजते रहते हैं। सिद्धहस्त गीतकार ऐसी धुनें निकालते हैं तथा ऐसे राग अलापते हैं कि श्रोता उस वातावरण में बंध जाता है। विश्वविख्यात रविशंकर और मशहूर शहनाई-वादक बिस्मिल्ला खां की धुनें सबको मोहित कर देती थीं। सितार, सरोद और सारंगी शास्त्रीय संगीत में समा बांध देते हैं। हर वाद्य-यंत्र से जो सुरीली आवाज निकलती है वह अपनी तरह की अनोखी और अनूठी होती है।

अमीर खुसरो के बारे में कहा जाता है कि एक रात उसे वीणा बजाने की सूझी। लेकिन कुछ तारों के आपस में उलझ जाने के कारण उसके स्वर निखर न पाए, तो खूंटियों को मरोड़कर वीणा का उत्तरांश ही उसने काट डाला। तभी उस नए यंत्र से स्वर की झंकार होने लगी। उसका यह विचित्र आविष्कार सितार के नाम से लोकप्रिय और लोकप्रसिद्ध हुआ। इसी तरह संभवत: तरंग में आकर मृदंग को उसके मध्य भाग से काटकर ग, दि, ग, न को धा, धो, धोना में बदलकर आज के तबले को भी उसी ने जन्म दिया। खुसरो की सूझ सचमुच ही बड़ी सूक्ष्म थी। नवनिर्माण उसे बहुत प्रिय था। उसे सितार और तबले का आविष्कारक माना जाता है।

सितार-वादक श्री निशात हुसैन के पिता इमरान खान, चाचा विलायत खां

अमेरिका गए थे। शुरू-शुरू में वे सरोद, तबला व गिटार बजाते थे। बाद में सितार को ही उन्होंने पसंद किया। श्री निशात हुसैन सितार-वादन में ऊंचाइयों को छू रहे हैं। उनका कहना है कि पाश्चात्य देशों में हमारा सितार-वादन ऐसा फैल रहा है मानो वे सब इस वाद्य-यंत्र से लट्टू हो गए हों। आगे-पीछे हमारे देश के संगीत का यही व्यापारीकरण जारी रहा तो हम चुप हो जाएंगे और पश्चिम के लोग हमारी संस्कृति, हमारे संगीत पर भाषण देने लगेंगे। संगीत की दुनिया की इस आवाज को मद्देनजर नहीं किया जा सकता। पश्चिम जगत् के लोग इस कला में इतने समृद्ध हो जाएंगे कि वे शोध संस्थाएं स्थापित करने लगेंगे और हम जहां के तहां पड़े रहेंगे। बंधी आवाज से हम मुग्ध हो जाते हैं—जीवंत आवाज से क्या होता रहा होगा—सोचने की बात है।

श्री नौशाद सुप्रसिद्ध संगीतकार के विचार इस विषय पर प्रेरणादायक हैं। उनका कथन है कि परिष्कृत, पुनीत और पूर्ण जीवन के लिए संगीत अति आवश्यक है। उषा खन्ना, जो कि संगीत जगत् की मानी हुई हस्ती हैं, कहती हैं कि बिना संगीत के जीवन मरुस्थल के समान है।

हमारे देश में कई प्रसिद्ध संगीतज्ञ हैं—पंडित भीमसेन जोशी—ये वीणा तथा तबला के प्रेमी हैं। भजन व शास्त्रीय संगीत के गानेवाले पंडित जसराज—तानसेन की पृष्ठभूमि में गानेवाले संगीतकार तथा शास्त्रीय संगीत में शृंगारिक गानों का बाहुल्य। डागर ब्रदर्स ये सात भाई हैं और जब ये लोग सामूहिक रूप से भजन गाते हैं तो उसका बहुत ही चमत्कारिक प्रभाव पड़ता है। शुभालक्ष्मी—भजन, भक्तिरस के गीतों एवं शास्त्रीय संगीत, हंगूबाई शास्त्रीय संगीत की गायिका तथा बाल गंधर्व—हमारे यहां संगीत के गानेवाले कई जोड़े प्रसिद्ध हैं—जगजीत सिंह, चित्रा सिंह तथा सोनाली-अनूप का जोड़ा। गजल-गायन के क्षेत्र में सोनाली के साथ कभी जलोटा शब्द जुड़ा होता था, क्योंकि वे दोनों पति-पत्नी थे। अब सोनाली अपने पति से अलग हो गई है। सोनाली का कहना है कि वह अपने लिए गाती है और अनूप जलोटा श्रोताओं के लिए गाते हैं। इसीलिए अपनी पहचान बनाए रखने के लिए सोनाली शास्त्रीय संगीत में अधिक रुचि रखने लगी है। भक्ति संगीत की ओर झुक रही है। उसकी आवाज में एक मिठास है। एक ऐसा आकर्षण है जो बरबस ही अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। गजलों, भजनों तथा शास्त्रीय संगीत पर उनका समान अधिकार है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत में मुख्यतः तीन विधाएं हैं—गायन, वादन एवं नृत्य।

लोक-संगीत—लोक-संगीत, लोक-नृत्य तथा लोक-वाद्य की सामूहिक ध्वनि सहज, सरल और आत्मीय होती है। सामूहिक संगीत के महत्त्व पर अनुसंधानरत चिकित्साविदों का मत है कि जब कई व्यक्ति एक साथ गाते हैं, सब लोगों का

प्रवाह एवं आंतरिक उल्लास मिलकर एक ऐसी तरंग-शृंखला उत्पन्न करता है जो वातावरण में मिलकर सबको उल्लसित कर देता है। फाल्गुन में फाग की धूम, वर्षा ऋतु में मेघ-मल्हार, आल्हा-ऊदल, किसी के भी हृदय में प्रेम, उल्लास, आनंद का झरना प्रस्फुटित कर देता है। देश के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में स्थानीय कलाकार लोक-गीतों तथा लोक-नृत्यों को आज भी जीवित रखे हुए हैं। छत्तीसगढ़ के मिथिलेश भी उन्हीं स्थानीय कलाकारों में से एक हैं। उनके स्वर का स्पर्श पाकर लोक-गीत इतने जीवंत और प्राणवान हो जाते हैं कि कोई भी व्यक्ति बिना आकर्षित हुए नहीं रह सकता। अपने मधुर कंठ से लोक-गीतों में प्राण फूंकनेवाला यह कलाकार छत्तीसगढ़ की संस्कृति को क्षीणप्राय होने से बचा रहा है। उसमें नई स्फूर्ति दे रहा है।

इसी तरह से राजस्थान में भी कई लोक-गीत गानेवाले कलाकार मिलते हैं। पर वहां की भी हालत दयनीय है।

हमारा देश जहां खेत-खलिहानों का, आदर्श का, ऋतुओं व धर्मों का देश है, वहीं यह लोक-संगीत का भी देश है। देश के प्रत्येक प्रांत में उनके अपने लोक-गीत प्रसिद्ध हैं। विश्व के कोने-कोने में लोक-संगीत की सरिता बहती है। शास्त्रीय संगीत ने लोक-संगीत से जो प्राप्त किया है वह कल्पनातीत है। शास्त्रीय संगीत और लोक-संगीत एक ही वृक्ष की दो शाखाएं हैं। लय लोक-संगीत का एक अविभाज्य अंग है। उसका संरक्षण और संवर्धन लोक-संगीत की सभी विधाओं में आदिकाल से विद्यमान है। लोक-संगीत में मध्य एवं द्रुत लयों का प्रयोग होता है। भारतीय संगीत में लय का महत्त्व अधिक है। लयकारियों की विविधता किसी अन्य देश की अपेक्षा भारत में अधिक है।

डॉ० चिंतामणी उपाध्याय ने लिखा है: "लोक-गीतों में मानव-हृदय के भाव, लोक-जीवन के सामान्य धरातल पर उतरकर आशा-निराशा, आकर्षण-विकर्षण, हर्ष-विषाद, प्रणय एवं कलह आदि के रूप में व्यक्त हुए हैं। स्वच्छंद भावना व उसकी स्वच्छंद अभिव्यक्ति लोक-संगीत का प्रथम लक्षण है। लोक-कला में हमको अपने उस सांस्कृतिक वैभव को देखने का अवसर मिलता है जिसने हमारे देश को एकता के सूत्र में बांधा है। लोक-संगीत विश्व की एकता का सबसे बड़ा संगीत है। विश्व के प्रत्येक देश के लोक-गीतों में कुछ-न-कुछ समानता है। लोक-संगीत का हृदय इतना विशाल है कि वह किसी सरल एवं सुमधुर धुन को आत्मसात करने से पीछे नहीं हटता। रोटी और रोजी की चिंता ने मनुष्य के मन से संगीत को छीनने का जो चक्र चलाया है उसका सीधा-सादा प्रभाव सर्वत्र महसूस हो रहा है। संगीत के मूल स्रोत तो लोक-गीत ही होते हैं। लोक-गीत अमूल्य माने जाते हैं। राजस्थान के लोक-गीत तथा मध्यप्रदेश के लोक-संगीत मृतप्राय हो रहे हैं। लोगों की उमंग छीनी जा रही है।"

डॉ० जयलक्ष्मी का कहना है कि पहले संगीतज्ञ आवाज साधन में विश्वास रखते थे। अपने शिष्यों को प्रातःकालीन अरुणिमा में संगीत का अभ्यास करवाते थे। उन्होंने स्वयं कई वर्षों तक साधना की है। आजकल ये सब तरीके धीरे-धीरे लुप्तप्राय हो रहे हैं। संगीत जगत् में संगीत के प्रति उदासीनता उन्हें अति दुःखदायी प्रतीत होती है। उनका कहना है कि आजकल संगीत के नाम से जो कुछ भी हो रहा है वह अधःपतन के लक्षण हैं।

हमारी संस्कृति में संगीत को देवत्व-प्राप्ति का एक माध्यम माना गया है। दैवी संगीत की अपनी एक उदात्त कल्पना थी। सतही प्रयासों के द्वारा भिन्न-भिन्न रागों को जीवंत नहीं बनाया जा सकता। आज संगीत एक समर्पित साधन नहीं रह गया है। वह भक्ति, वह श्रद्धा, वह निष्ठा जिनके द्वारा एक संगीत-साधक अनुप्राणित होता था, उन सब तत्त्वों की अब कमी हो गई है। संगीत में भी व्यापारीकरण हो रहा है और वह भी निम्न स्तर का।

संगीत के दो रूप होते हैं—वर्णनात्मक तथा कलात्मक। वर्णनात्मक रूप के द्वारा संगीत किसी भी घटना, दृश्य या कथा के अंदरूनी उद्देश्य को सजीवता प्रदान करता है तथा कलात्मक रूप द्वारा जीवन के मूल्यों, अनुभूतियों तथा यशस्वी पक्ष को उजागर करता है।

विदेशी संगीत के आकाश पर कुछ ऐसे नक्षत्र आलोकित हो गए हैं जिनकी प्रभा कभी धूमिल नहीं पड़ेगी। इन महान् अनुभूतियों ने संगीत को मानवता और समाज की एक धरोहर के रूप में ग्रहण किया और अपने संगीत के माध्यम से जनजीवन में नवचेतना, नव-निर्माण, आशा और उत्साह का संचार किया। इन संगीतज्ञों ने संगीत की शक्ति को समझा, पहचाना और समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व को भी समझा। 'पाल-राब्सन'—मानवता का पक्षधर गायक माना जाता है। नीग्रो होने के कारण मानव द्वारा मानव पर होनेवाले अत्याचारों और अन्यायों को उन्हें निकट से देखने का अवसर मिला। मानव-मानव के बीच पनपते भेद-भाव, घृणा और हिंसा की पृष्ठभूमि में उनका संगीत गहन अंधेरे वन-प्रांतर में प्रकाश-किरण के समान था।

संसार के कुछ महान् संगीतज्ञों के नाम इस प्रकार हैं—

लुडविन बॅन बिथोबिन–बिथोबिन संगीत का दार्शनिक था। प्रसिद्ध संगीतज्ञ 'हेन' ने कुछ समय बिथोबिन को 'हारमनी' सिखाई थी। बचपन में बिथोबिन साधारण स्तर का था। वह प्रसिद्ध पियानो-वादक था। उसने मोजार्ट से तालीम ली थी। बाद में बिथोबिन बहरा हो गया था। वह स्वयं अपनी आवाज नहीं सुन सकता था। कल्पना कीजिए कि एक महान् संगीतज्ञ अपने स्वयं के गीतों को न सुन सके। अतएव वह अवसाद से भर गया था। इस संगीतज्ञ की महानता का परिचय निम्नलिखित आख्यान देगा—नेपोलियन के समय में बिथोबिन थे।

प्रवाह एवं आंतरिक उल्लास मिलकर एक ऐसी तरंग-शृंखला उत्पन्न करता है जो वातावरण में मिलकर सबको उल्लसित कर देता है। फाल्गुन में फाग की धूम, वर्षा ऋतु में मेघ-मल्हार, आल्हा-ऊदल, किसी के भी हृदय में प्रेम, उल्लास, आनंद का झरना प्रस्फुटित कर देता है। देश के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में स्थानीय कलाकार लोक-गीतों तथा लोक-नृत्यों को आज भी जीवित रखे हुए हैं। छत्तीसगढ़ के मिथिलेश भी उन्हीं स्थानीय कलाकारों में से एक हैं। उनके स्वर का स्पर्श पाकर लोक-गीत इतने जीवंत और प्राणवान हो जाते हैं कि कोई भी व्यक्ति बिना आकर्षित हुए नहीं रह सकता। अपने मधुर कंठ से लोक-गीतों में प्राण फूंकनेवाला यह कलाकार छत्तीसगढ़ की संस्कृति को क्षीणप्राय होने से बचा रहा है। उसमें नई स्फूर्ति दे रहा है।

इसी तरह से राजस्थान में भी कई लोक-गीत गानेवाले कलाकार मिलते हैं। पर वहां की भी हालत दयनीय है।

हमारा देश जहां खेत-खलिहानों का, आदर्श का, ऋतुओं व धर्मों का देश है, वहीं यह लोक-संगीत का भी देश है। देश के प्रत्येक प्रांत में उनके अपने लोक-गीत प्रसिद्ध हैं। विश्व के कोने-कोने में लोक-संगीत की सरिता बहती है। शास्त्रीय संगीत ने लोक-संगीत से जो प्राप्त किया है वह कल्पनातीत है। शास्त्रीय संगीत और लोक-संगीत एक ही वृक्ष की दो शाखाएं हैं। लय लोक-संगीत का एक अविभाज्य अंग है। उसका संरक्षण और संवर्धन लोक-संगीत की सभी विधाओं में आदिकाल से विद्यमान है। लोक-संगीत में मध्य एवं द्रुत लयों का प्रयोग होता है। भारतीय संगीत में लय का महत्त्व अधिक है। लयकारियों की विविधता किसी अन्य देश की अपेक्षा भारत में अधिक है।

डॉ० चिंतामणी उपाध्याय ने लिखा है : "लोक-गीतों में मानव-हृदय के भाव, लोक-जीवन के सामान्य धरातल पर उतरकर आशा-निराशा, आकर्षण-विकर्षण, हर्ष-विषाद, प्रणय एवं कलह आदि के रूप में व्यक्त हुए हैं। स्वच्छंद भावना व उसकी स्वच्छंद अभिव्यक्ति लोक-संगीत का प्रथम लक्षण है। लोक-कला में हमको अपने उस सांस्कृतिक वैभव को देखने का अवसर मिलता है जिसने हमारे देश को एकता के सूत्र में बांधा है। लोक-संगीत विश्व की एकता का सबसे बड़ा संगीत है। विश्व के प्रत्येक देश के लोक-गीतों में कुछ-न-कुछ समानता है। लोक-संगीत का हृदय इतना विशाल है कि वह किसी सरल एवं सुमधुर धुन को आत्मसात करने से पीछे नहीं हटता। रोटी और रोजी की चिंता ने मनुष्य के मन से संगीत को छीनने का जो चक्र चलाया है उसका सीधा-सादा प्रभाव सर्वत्र महसूस हो रहा है। संगीत के मूल स्रोत तो लोक-गीत ही होते हैं। लोक-गीत अमूल्य माने जाते हैं। राजस्थान के लोक-गीत तथा मध्यप्रदेश के लोक-संगीत मृतप्राय हो रहे हैं। लोगों की उमंग छीनी जा रही है।"

डॉ० जयलक्ष्मी का कहना है कि पहले संगीतज्ञ आवाज साधन में विश्वास रखते थे। अपने शिष्यों को प्रातःकालीन अरुणिमा में संगीत का अभ्यास करवाते थे। उन्होंने स्वयं कई वर्षों तक साधना की है। आजकल ये सब तरीके धीरे-धीरे लुप्तप्राय हो रहे हैं। संगीत जगत् में संगीत के प्रति उदासीनता उन्हें अति दुःखदायी प्रतीत होती है। उनका कहना है कि आजकल संगीत के नाम से जो कुछ भी हो रहा है वह अधःपतन के लक्षण हैं।

हमारी संस्कृति में संगीत को देवत्व-प्राप्ति का एक माध्यम माना गया है। दैवी संगीत की अपनी एक उदात्त कल्पना थी। सतही प्रयासों के द्वारा भिन्न-भिन्न रागों को जीवंत नहीं बनाया जा सकता। आज संगीत एक समर्पित साधन नहीं रह गया है। वह भक्ति, वह श्रद्धा, वह निष्ठा जिनके द्वारा एक संगीत-साधक अनुप्राणित होता था, उन सब तत्त्वों की अब कमी हो गई है। संगीत में भी व्यापारीकरण हो रहा है और वह भी निम्न स्तर का।

संगीत के दो रूप होते हैं—वर्णनात्मक तथा कलात्मक। वर्णनात्मक रूप के द्वारा संगीत किसी भी घटना, दृश्य या कथा के अंदरूनी उद्देश्य को सजीवता प्रदान करता है तथा कलात्मक रूप द्वारा जीवन के मूल्यों, अनुभूतियों तथा यशस्वी पक्ष को उजागर करता है।

विदेशी संगीत के आकाश पर कुछ ऐसे नक्षत्र आलोकित हो गए हैं जिनकी प्रभा कभी धूमिल नहीं पड़ेगी। इन महान् अनुभूतियों ने संगीत को मानवता और समाज की एक धरोहर के रूप में ग्रहण किया और अपने संगीत के माध्यम से जनजीवन में नवचेतना, नव-निर्माण, आशा और उत्साह का संचार किया। इन संगीतज्ञों ने संगीत की शक्ति को समझा, पहचाना और समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व को भी समझा। 'पाल-राक्सन'—मानवता का पक्षधर गायक माना जाता है। नीग्रो होने के कारण मानव द्वारा मानव पर होनेवाले अत्याचारों और अन्यायों को उन्हें निकट से देखने का अवसर मिला। मानव-मानव के बीच पनपते भेद-भाव, घृणा और हिंसा की पृष्ठभूमि में उनका संगीत गहन अंधेरे वन-प्रांतर में प्रकाश-किरण के समान था।

संसार के कुछ महान् संगीतज्ञों के नाम इस प्रकार हैं—

लुडविन बैन बिथोबिन–बिथोबिन संगीत का दार्शनिक था। प्रसिद्ध संगीतज्ञ 'हेन' ने कुछ समय बिथोबिन को 'हारमनी' सिखाई थी। बचपन में बिथोबिन साधारण स्तर का था। वह प्रसिद्ध पियानो-वादक था। उसने मोजार्ट से तालीम ली थी। बाद में बिथोबिन बहरा हो गया था। वह स्वयं अपनी आवाज नहीं सुन सकता था। कल्पना कीजिए कि एक महान् संगीतज्ञ अपने स्वयं के गीतों को न सुन सके। अतएव वह अवसाद से भर गया था। इस संगीतज्ञ की महानता का परिचय निम्नलिखित आख्यान देगा—नेपोलियन के समय में बिथोबिन थे।

नेपोलियन सामंतवादी सिद्धांतों के विरुद्ध युद्ध कर रहा था। इसीलिए बिथोबिन उनके प्रशंसक थे। परंतु जब नेपोलियन ने युद्ध जीतकर मानव-हृदय पर राज्य करना चाहा तब बिथोबिन ने नेपोलियन की प्रशंसा में रचित 'तृतीय शिफानी' को यह लिखकर नेपोलियन को समर्पित किया कि "उस महान् आदमी की याद में जिसका शरीर जीवित है किंतु आत्मा मर चुकी है।" इस संगीतज्ञ की पांचवीं 'शिफानी' सुनने तथा पढ़ने योग्य है। उसमें उसने मानवता को अमर संदेश दिया है।

राबर्ट शुमैन—शुमैन की प्रतिभा द्विमुखी थी। यह प्रतिभा साहित्य और संगीत की थी। वह एक महान् पियानो-वादक थे। 'जीमपाल रीटर' उनके समय के रोमांटिक कवि थे। शुमैन तथा रीटर में यह अंतर था कि रीटर प्रकृति-प्रेम के गीत गाता था जबकि शुमैन प्यार के भावों का दीवाना था। उसके पास उसकी प्रेमिका की हंसी की आवाज हवाओं में तैरती हुई आती थी। उसे महसूस होता था कि उसकी प्रेमिका पर्वत-शृंखलाओं पर नृत्य कर रही है। शुमैन की सांगीतिक रचनाओं में शैंपेन (शराब), सुंदर स्त्री एवं दोस्ती का मुख्य रूप से वर्णन है। वह संगीतकार के साथ-साथ कवि-हृदय भी था। 'क्लारा' नाम की एक कन्या से वह प्रेम करता था। वह भी संगीत-प्रेमी थी। बाद में शुमैन का दिमाग कुछ विकृत हो गया। उसे पागलखाने भेजना पड़ा। उसके अंदर संगीत का एक ज्वालामुखी भरा पड़ा था जो बाहर निकलने को बेचैन था। उसी बेचैनी में वह विकृत हो गया। ४६ वर्ष की उम्र में ही उसकी मृत्यु हो गई।

जोहेन्स ब्राह्मस—जोहेन्स ब्राह्मस भी पियानो-वादक था। वह बिथोबिन की रचनाओं को सुना करता था। वह बांसुरी-वादन में भी दक्ष था। उसने यह महसूस किया था कि संगीत का बाहरी उत्तेजक रूप दिमाग की उच्चतम अभिव्यक्ति है। उसका संगीत अनुशासनबद्ध था।

जोहेन सेबेस्टियन बाख—बाख की नसों में खून नहीं संगीत की धारा प्रवाहित होती थी। उसकी मान्यता थी कि संगीत का उद्देश्य ईश्वर की आराधना होना चाहिए। वह जर्मनी का अद्वितीय और महान् 'आर्गन-वादक' था। वह हंसमुख प्रकृति का था। उसकी दो पत्नियां थीं और बीस बच्चे थे। ६५ वर्ष की आयु में उसकी आंखों ने जवाब देना शुरू कर दिया। उसने जो सांगीतिक रचनाएं लिखी थीं वे सेंट जान्स के गिरजाघर में पादरी के वस्त्र रखने के कमरे में सुरक्षित थीं।

वाल्फगैंग ऐमेडियस मोजार्ट—मोजार्ट का कहना था कि स्वरों की मधुरता ही संगीत का सार है। सुर, ताल को सीखा नहीं जाता वरन् महसूस किया जाता है। आत्मसात किया जाता है। वह बहुत गरीब और ईमानदार आदमी थे। उनकी मृत्यु ३५ वर्ष की आयु में हो गई।

डोलयन कोडाले—यह हंगरी के संगीत-क्षेत्र में अत्यंत सम्माननीय नाम है।

कोडाले ने कोडाले संगीत पद्धति को जन्म दिया। इसने लोक-गीतों की खोज की। उनका संग्रह किया एवं उन्हें संरक्षण प्रदान किया। वह क्रांतिकारी परिवर्तन लाने में विश्वास करते थे। उनके अस्सीवें जन्म-दिवस पर हंगरी की एक संस्था ने उनके द्वारा संग्रहीत लोक-गीतों का बृहत् संस्करण प्रकाशित किया था जिसमें एक लाख लोक-गीत संग्रहीत किए गए हैं।

नृत्य—भारतीय नृत्य पूरे विश्व में अपना एक विशेष स्थान रखता है। नृत्य स्वयं में एक संगीत है। कत्थक नृत्य, ओडिसी तथा भरतनाट्यम आदि नृत्य की भिन्न-भिन्न परंपराएं हैं। टी० वी० पर प्रायः नृत्य होते रहते हैं।

आज शास्त्रीय धुनों पर आधारित गानों को कोई नहीं सुनना पसंद करता। रेडियो स्टेशन से फरमाइशी गीतों के कार्यक्रम में 'स्लो म्यूजिक' पर आधारित गानों की फरमायश नाममात्र की रह गई है। इससे यह पता चलता है कि वर्तमान युग की रुचि किस ओर जा रही है। हमारा शास्त्रीय संगीत मधुरता एवं भाव-प्रवणता से लिप्त रहता था और वर्तमान संगीत शोरगुल, हाहाकार पर विश्वास करता है। इस संगीत से कान के पर्दे तो खराब होते ही हैं साथ ही साथ इतनी शारीरिक एवं मानसिक थकान आ जाती है कि निद्रा आप ही आप आ जाती है। शास्त्रीय संगीत और चलचित्रों के संगीत में इन दिनों विपन्नता और लाचारी का जो दौर आया है वह अस्थायी है, समय-चक्र का नतीजा है। यह दौर भी गुजर जाएगा; और फिर पुराने दिन अर्थात् संगीत की समृद्धि लौट आएगी। पुरानी रचनाएं पुरानी पीढ़ी सुनती है, नई पीढ़ी नहीं, क्योंकि नई पीढ़ी के संस्कार दूसरे हो रहे हैं लेकिन कालचक्र के नियम के अनुसार जो चीज आज ऊपर है, कल उसे नीचे जाना ही है। और जो नीचे है उसे ऊपर आना ही है।

मैंने पहले ही लिखा है कि हमारे देश में संगीत को कोई राज्याश्रय नहीं है। हर कलाकार अपनी स्वयं की प्रतिभा से उत्पन्न होता है और वह जहां का तहां पड़ा रहता है। एक बार यहूदी मेनुहिन भारत आए थे। आकाशवाणी में उनका विशेष ध्वनि अंकन किया गया था। मेनुहिन सारंगी सुनना चाहते थे। 'साबरी खां' रेडियो के नौकर थे। उन्होंने सारंगी बजाई थी। बाद में मेनुहिन ने जो वायलिन पर बजाया था, वह सब 'साबरी खां' ने हू-ब-हू बजा दिया था। लेकिन साबरी ने जो सारंगी पर बजाया वह मेनुहिन नहीं बजा सके थे। मेनुहिन ने अपने पारिश्रमिक का चैक साबरी को इनाम में दिया। साबरी ने व्यंग्यात्मक रूप में कहा, "हुजूर, इनाम की इस रकम से कम मुझे पूरे महीने की तनख्वाह मिलती है।" हमारा देश इतना महान् है, संपन्न है, केवल दृष्टि बदलने की आवश्यकता है।

हमारे जीवन का प्रत्येक कार्य-कलाप धर्म से जुड़ा हुआ है, जिसका नियमन उन शास्त्रों द्वारा होता है जिनकी व्याख्या पुराणों में मिलती है और जिनकी जड़ें

बहुत गहरी हैं। भारत के प्रमुख संगीतज्ञ संत भी थे और कवि भी। पश्चिमी देशों में कवि शब्दों की रचना करता है और संगीतज्ञ उन्हें संगीत से संवारता है। लेकिन पूर्वी देशों में कविता और उसके संगीत का सृजन एक साथ होता है और उनकी विषयवस्तु तथा वातावरण अनिवार्य रूप से धार्मिक होते हैं। संगीत वहां मनो-रंजन अथवा ऐंद्रिय बोध का साधन नहीं है; वह भौतिक वस्तुओं को साक्षात् करनेवाला कोई माध्यम भी नहीं है। वह एक पवित्र चीज है, वह आत्मा की दास है। आत्मसाक्षात्कार का एक मार्ग है।

संगीत को कलाओं का राजा माना जाता है। संगीतविहीन व्यक्ति शुष्क होता है। जन्म लेते बालक से हिलती हुई गरदनवाले वृद्ध तक, हर व्यक्ति के जीवन में हर समय एक स्वर होता है। उसी एक स्वर की साधना उसके जीवन की लय तय करती है। इसके ही कारण मनुष्य हमेशा स्वर की खोज में लगा रहता है। आज सब बिना स्वर के हैं। अतएव असुर का जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

मार्मिक अनुभूति की अभिव्यंजना स्वर और रागों द्वारा प्रस्तुत की जाती है। ग्रीष्म की ऊष्मा, वसंत की सुषमा एवं शरद् की निर्मलता में समान रूप से सौंदर्यानुभूति को प्राप्त करने का साधन संगीत का आयाम ही है। और यही आयाम शिव और शक्ति, आनंद और सौंदर्य एवं अध्यात्म और लोक-मंगल का दर्शक होता है।

११

मौसम की आवाज

हमारे देश में मुख्यतः तीन मौसम होते हैं—ग्रीष्म, वर्षा तथा शीत। सामान्यतः प्रत्येक मौसम की अवधि चार माह की मानी जाती है। हमारे पूर्वजों ने मौसम की बारीकियों को परखते हुए छः ऋतुओं में बांटा था। इस तरह की विशेष ऋतुएं विश्व के किसी भी देश में नहीं पाई जाती हैं। ये छः ऋतुएं ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, शिशिर, हेमंत तथा वसंत हैं।

मौसम एक लय है। अंतहीन संगीत है। अपने-आपमें ये सारी ऋतुएं कई प्रकार की आवाजों से परिपूर्ण हैं। लेकिन अब देश के सारे मौसम लयहीन होते जा रहे हैं। आजकल सभी मौसमों में परिवर्तन आ गया है। आज से चार या पांच दशक पूर्व जो प्रत्येक ऋतु की अपनी एक विशेष छटा रहती थी वह अब फीकी पड़ गई है। मौसम की न केवल आवाज बदल गई है अपितु उसके तेवर भी बदल गए हैं। उसके मिजाज का क्या कहना। ग्रीष्म में बेतहाशा गरमी, ग्रीष्म ऋतु में असामयिक वर्षा और उसके बाद फिर भीषण गरमी। वर्षा ऋतु में अनावृष्टि, शीत ऋतु में ठंड के बजाय गरमी।—यह एक साधारण बात हो गई है। शीत ऋतु में यदि पसीना आता रहे, रात को कंबल की आवश्यकता न रहे तथा धूप अच्छी न लगे तो फिर भला वह क्या शीत ऋतु है! शिशिर की ठंड में जो हड़कंप होता था वह अब क्या होता है? प्रत्येक ऋतु के आगमन के प्रकृति ने ऐसे पूर्व संकेत बनाए हैं, जो देखे और समझे जा सकते हैं। जो पहले कभी धोखा नहीं देते थे, वे अब विश्वसनीय नहीं रह गए हैं।

जब वर्षा ऋतु में मानसून लड़खड़ा जाता है तो 'एलनिनो' घटना की चर्चा होने लगती है। पेरू के निकट तटवर्ती समुद्र (प्रशांत महासागर) के गरम होने की घटना को 'एलनिनो' कहते हैं। मौसम विज्ञान के जानकारों के अनुसार पेरू का समुद्री तट जून के महीने में भी तपता रहता है और इसका असर मानसूनी हवाओं पर भी पड़ता है। मानव के कार्य-क्षेत्र में नए औद्योगिकीकरण तथा अन्य गति-

विधियों के कारण भी वायुमंडल की परिस्थितियों में परिवर्तन हो रहा है। इन सबका प्रभाव मौसम पर भी पड़ा है।

मौसम को नियंत्रित करनेवाली कई शक्तियों में 'सौर ताप' मुख्य है। धरती और वायुमंडल के तापीय संतुलन पर विकिरण का भी असर पड़ता है। धरातल से विकिरण का परावर्तन समान रूप से न होने पर अंततः इसका असर मौसम पर पड़ता है। यह सिद्ध हो चुका है कि गत कुछ वर्षों में वायुमंडल में कार्बन डाई-ऑक्साइड में वृद्धि हुई है और वायुमंडल की ओजोन परत में दरारें पड़ने की भी पुष्टि की गई है। मौसम पर इसका जबरदस्त हानिकारक असर हुआ है। निडरता तथा निर्भयता से जंगल काटे गए हैं। देश की धरती के वर्ग क्षेत्र में जंगल का औसत ३५ प्रतिशत के आसपास था। वह अब ९ प्रतिशत ही रह गया है। ओजोन की सतह नीचे आती जा रही है।

पृथ्वी के कवच में छिद्र होने लगे हैं। अगर किसी तरह तापमान में जरा भी परिवर्तन हो जाए तो दूसरी जगह पर उसके बड़े हानिकारक परिणाम हो सकते हैं। एक मौसम वैज्ञानिक के अनुसार अगर मेचिंग में कोई तितली अपने पंख फड़फड़ाती है तो उसका असर अगले महीने किसी दूसरे देश के मौसम पर पड़ सकता है।

अप्रैल के आखिरी सप्ताह में आसमान में बादलों की भागती-दौड़ती टुकड़ियों को देखकर लोगों के मन में अनेक जिज्ञासाएं उत्पन्न हो जाती हैं। क्या मौसस बदल रहा है? क्या तेजी से वनों और जंगलों की कटाई से इसका कुछ लेना-देना है? तेजी से बढ़ते प्रदूषण के कारण यह सब कुछ हो रहा है। क्या परमाणु विस्फोटों के कारण मौसम में बदलाव आया है? क्या धरती का तापमान गिरता जा रहा है? जो कुछ भी हो यह तो मानना ही पड़ेगा कि मौसम की आवाज बदल रही है। गत दो-तीन वर्षों से जो भयानक दुर्भिक्ष पड़े हैं, उनसे देश का आर्थिक ढांचा ही चरमरा गया है।

परंपरागत साधन, जिनसे मौसमों की जानकारी मिलती थी, पर अब लोग ध्यान नहीं देते। वैज्ञानिक तरीके अपनी जगह पर हैं परंतु प्राकृतिक अन्वेषण एवं गहरी छानबीन जरूरी है कि आखिर यह सब कुछ क्यों हो रहा है।

प्राचीन समय में लोग कीट-पतंगों, चींटियों, पशु-पक्षियों और पेड़-पौधों में होनेवाले परिवर्तनों के आधार पर मौसम-परिवर्तन का अंदाज लगा लेते थे। वे प्राकृतिक साधन तापमान, हवाओं की दिशा, आर्द्रता आदि में होनेवाले परिवर्तनों को बड़ी सूक्ष्मता से ग्रहण करते हैं। गांव में अधिकांश किसान चींटियों, पक्षियों, पेड़-पौधों आदि को ही मौसम का भविष्यवक्ता मानते हैं। लेकिन अब ये स्वाभाविक प्राकृतिक वर्षा के पूर्व संकेत माने जाते हैं क्या?

ग्रीष्म ऋतु—अंगारों से जलती धरती, गरमी से भरी हुई लू तथा सन्न-सन्

करती गरम हवाओं, धूलों की आंधी तथा बवंडर ये सब सूर्योदय हुआ नहीं कि शुरू हो जाते हैं। तेज गरमी का अहसास, देह में पसीना तथा स्नान करने की इच्छा ग्रीष्म ऋतु आते ही बढ़ जाती है। पानी की किल्लत बढ़ने लगती है। गरमी के साथ ही पेयजल के स्रोत एक-एक कर सूखने लगते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल का संकट निरंतर बढ़ता जा रहा है। गत २५ वर्षों से लगातार पेयजल की कमी महसूस की जा रही है। पीने के पानी की समस्या तीव्र से तीव्रतर हो रही है। कुएं और हैंडपंप क्यों सूखते जा रहे हैं ? यह समझ में नहीं आ रहा है। जल-स्तर गिरते जाने का मुख्य कारण पत्थरों का उत्खनन है। नदियों का जलस्तर बनाए रखने के लिए बांध बनाने की योजना कई जगह असफल हो गई है। दूषित पर्यावरण के ही कारण ये सब विपदाएं आई हैं।

वर्षा ऋतु—हमारे देश में पावस ऋतु अत्यंत ही सुहावनी व लुभावनी मानी जाती है। कामियों की प्यारी पावस जब आती है तब उसके साथ जल की फुहारों से भरे बादल, चमकती हुई बिजलियों की झंडियों को फहराता हुआ और बादलों की गरज के नगाड़े बजाता हुआ आसमान एक अद्‌भुत उद्दीपनकारी वातावरण पैदा कर देता है। पानी के भार से नीचे झुके हुए धुआंधार पानी बरसानेवाले और कानों को भली लगनेवाली गड़गड़ाहट करते हुए बादल धीरे-धीरे घिरते रहते हैं। बरसते हैं तथा एक अलौकिक आनंद का सृजन करते हैं। इस वातावरण में प्रेमियों का मन, विरही और विरहिणियों का मन कसमसाकर रह जाता है। पावस ऋतु की इस आवाज को तुलसीदासजी ने निम्नलिखित पंक्तियों में उजागर किया है—"घन घमंड गरजत घन घोरा, पियाहीन डरपत मन मोरा।" और तो और, भगवान् श्रीराम तक इस पावस ऋतु के आकर्षण से विभोर हो उठते हैं।

आज के जमाने में लोग बादल की गड़गड़ाहट तथा बिजली की कड़क से प्रभावित नहीं होते। वे रात में सोते समय यदि जग भी जाते हैं, तो केवल अपने प्राणों की रक्षा की परवाह करते हैं। न तो वे बादल की आवाज समझते हैं और न ही समझना चाहते हैं।

आज वर्षा ऋतु की छटा और अवर्णनीय सौंदर्य तथा जंगलों का आकर्षण देखने को मिलता है क्या ?

विदेशी मुद्रा पाने के लोभ में हमारे देश के मेढक मारे जा रहे हैं। उनके पिछले पैरों को वैज्ञानिक तरीकों से सुरक्षित कर उन्हें विदेश भेजा जाता है, क्योंकि उनके पिछले पैरों की हड्डियों में बहुत पोषक तत्त्व होते हैं तथा विदेश में उनकी बहुत मांग है। आज कहीं-कहीं मेढक दिख जाते हैं। उनकी कमी हो गई है। एक वैज्ञानिक सामूहिक मेढकों की टर्र-टर्र की आवाज का रहस्य नहीं समझ सकता और इसीलिए आज वर्षा ऋतु में अनावृष्टि हो रही है। ये मेरे दकियानूसी विचार

नहीं हैं; इनके पीछे गंभीर रहस्य छिपे हुए हैं। अर्थात् वे पर्यावरण के दोष जिनकी चर्चा मैंने प्रारंभ में ही की है।

शरद् ऋतु—वर्षा ऋतु के समाप्त होते ही शरद् ऋतु का आगमन होता है। नव-विवाहिता रूपवती बहू के समान, फूले हुए कांस के कपड़े पहने हुए, पके हुए धान से मनोहर शरीरवाली और खिले हुए कमल के समान सुंदर मुखवाली यह ऋतु उजाला फैला देती है। वातावरण उल्लासमय बन जाता है। इस ऋतु में नदियां भी धीरे-धीरे बहती हैं। बादलों का रंग चांदी, शंख और कमल के समान उज्ज्वल हो जाता है। ये बादल पानी बरसने से हलके होकर पवन के सहारे इधर-उधर घूमते हैं। उनसे भरा हुआ आकाश कहीं-कहीं ऐसा लगता है मानो प्रकृति के यौवन का भार कम हो गया है। नीला सुन्दर आकाश, फूलों से लाल बनी हुई धरती और पके हुए धान से लदे हुए सुन्दर खेत अपने-आपमें एक ऐसा दृश्य बनाते हैं जो अत्यंत रुचिकर प्रतीत होता है।

शरद् पूर्णिमा की रात सबका मन मोह लेती है। चंद्रमा की किरणें मन को बरबस अपनी ओर खींच लेती हैं। वही सुहावना और ठंडी फुहार बरसानेवाला चंद्रमा प्रेमियों के हृदय में एक विशेष रस को जन्म देता है। शीतल मंद, सुगंध समीरण झूम-झूमकर बहता है। इस ऋतु में बादलों में इंद्रधनुष नहीं बनते। मोर नहीं नाचते। पर मानव-हृदय नाच उठता है। उपवनों में शेफालिका के फूलों की मन-भावनी सुगंध फैलती है, जिनमें निश्चित बैठी हुई चिड़ियों की चहचहाहट चारों ओर गूंजने लगती है। प्रातःकाल पत्तों पर पड़ी हुई ओस की बूंदें जब गरमी बढ़ती है, तो सूखने लगती हैं। कुंआर की धूप प्रसिद्ध है।

हेमंत ऋतु—हेमंत ऋतु आते ही पाला (बरफ) गिरना शुरू हो जाता है। गेहूं, जौ आदि के नए संत्रों के निकल आने से खेतों का रूप ही बदल जाता है। प्रातःकाल घास पर फैली हुई ओस की बूंदों को देखकर ऐसा लगता है मानो चारों तरफ कोमलता का साम्राज्य हो गया हो। खेतों में भरपूर धान लहलहाने लगते हैं। सारस मस्त होकर बोलने लगते हैं। सरोवरों में ठंडा निर्मल जल स्नान करनेवालों को जल-विहार का पूरा आनंद देने लगता है।

गांवों में पके हुए धानों के खेत ऐसे लहलहाते हैं मानो सबको सुख और आनंद की सूचना दे रहे हों। ऐसे शराबी मौसम में सावनी देह व फागुनी मन एकाकार हो, उमड़ा देता है हर्ष-उल्लास का लहलहाता सागर। रसपगे सागर में डूबता-उतरता इंद्रधनुषी यौवन उन्मादित हो सीमाओं के अनुबंध तोड़ने को आतुर हो उठता है।

शिशिर ऋतु—इस ऋतु में ईख के खेत भरे-भरे दिख पड़ते हैं। सारस की बोली गूंजने लगती है। इस ऋतु में चंद्रमा की किरणें किसी को नहीं भातीं। घनी ओस से ठंडी बनी हुई हवा मन को चुभ-सी जाती है। पीले-पीले तारोंवाली रात

में कोई भी बाहर निकलना पसंद नहीं करता। स्वादिष्ट व्यंजन खीर, हलवा का आनंद इसी ऋतु में आता है। वर्तमान समय में ये सब सुख गायब हो गए हैं। प्यार के बिना अकेले दिन काटनेवाले लोग मन मसोसकर रह जाते हैं। उनके लिए यह ऋतु दुःखदायक हो जाती है। उनके दिलों में झिझकने की आवाज आती है।

वसंत ऋतु—फूले हुए आम की मंजरियों के पैने बाण लेकर और अपने धनुष पर भौंरों की पांतों की डोरी चढ़ाकर, वीर वसंत रसिकों को भेदने आता है। सब वृक्ष फूलों से लद जाते हैं। इस ऋतु में मदमस्त बहार चारों तरफ छा जाती है। लोग बौरा-से जाते हैं। वासंती रंग, वासंती साड़ी की छटा तथा खेतों में सरसों का फूल अपूर्व सौंदर्य का सृजन करते हैं। आमल वृक्षों में आम के बौर इस तरह आते हैं मानो पूरा वृक्ष बोल उठता है कि "वसंत ऋतु आई सजनी, मन धीर न समाये सजनी"। कमल पर बैठकर गुनगुनाता हुआ भंवरा भी अपनी प्यारी का मनचाहा काम कर रहा है।

जीवन के हर क्षेत्र में अब मौसम बदला-बदला नजर आने लगा है। जैसे—सियासती मौसम, खेल जगत् का मौसम, चिकित्सा जगत् का मौसम, शिक्षा जगत् का मौसम तथा विधान सभा एवं संसद् के मौसम एवं प्रशासनिक तथा न्यायपालिकाओं का मौसम।

सियासती मौसम—राजनीतिक मौसम की हालत बेहद खस्ता है। सब तरफ असंतोष तथा विघटन के बादल उमड़ रहे हैं। देश-भर में विघटन, विरोध तथा आपसी मारपीट का माहौल है। विपक्षी दलों में भी बेहद खींचतान है। सबके सब सत्तालोलुप हो गए हैं तथा संपदा अर्जन के पीछे पागल हैं।

त्रेता-युग में जब भगवान् राम का राज्याभिषेक हुआ था तब उन्होंने कहा था कि—

"जो अनीति कछु भाखौं भाई,
तो बरजहुं मोहिं भय बिसराई।"

लेकिन आज कोई भी राजा इस महान् संदेश को याद रख रहा है क्या? बिना भय के आज कोई भी व्यक्ति अनीति के विरुद्ध कुछ बोल सकता है?

देश में हर वर्ष प्रायः हर समस्या के लिए जुलूस, प्रदर्शन, घेराव तथा धरना आदि प्रजातांत्रिक कार्यक्रम होते ही रहते हैं। हम लोगों की वह देश-भक्ति तथा देश-प्रेम कहां गायब हो गए, कुछ समझ में नहीं आता। इन घेरावों तथा हड़तालों का नतीजा क्या निकलता है, यह सबको मालूम है। केवल शासकीय जान-माल का नुकसान हो जाता है। राष्ट्र की आय में कमी हो जाती है। केवल अवसरवादी नेता ही कुछ पा गुजरते हैं। लेकिन यह कब तक चलेगा। जनता की आवाज एक-न-एक दिन हिंसक होकर ही रहेगी। देश-भर में ऐसी बेरोजगारी फैली हुई है

कि सभी इससे परिचित हैं। पर संसद् में या विधानसभाओं में इन विषयों पर चर्चा के अलावा कुछ नहीं होता। विज्ञापनों में नियुक्तियों में—सर्वत्र धांधली ही धांधली की आवाज गूंजती रहती है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद ग्रेट ब्रिटेन की हालत सोचनीय हो गई थी। पर अब वह पुनः अपने गौरवपूर्ण स्थान पर आ गया है। लेकिन हम ४३ वर्ष की स्वतंत्रता के बाद भी ज्यों-के-त्यों हैं या या यों कहा जाए कि पतन की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

आज करीब तैंतीस हजार चार सौ करोड़ रुपए विदेशी ऋण के रूप में हमारे ऊपर हैं। चालीस हजार करोड़ रुपए का ऋण अंदरूनी देश के अंदर है। उस विदेशी ऋण के ब्याज को हम उन रुपयों से नहीं चुका सकते जो हमें विदेशी मुद्रा के रूप में व्यापार आदि से मिलता है। मूल धन को तो हम चुका ही नहीं सकते। ऐसा न हो कि एक-न-एक दिन हमारा देश गिरवी में चला जाए। हमारी सरकार का आर्थिक ढांचा चरमरा रहा है। जितने भी पब्लिक सेक्टर हैं उन सबमें सरकार को सिवाय नुकसान के कुछ भी लाभ नहीं हो रहा है। जैसे भिलाई स्टील प्लांट, बोकारो स्टील प्लांट, दुर्गापुर स्टील प्लांट आदि। करीब-करीब सभी प्रांतों की राज्य परिवहन की हालत इतनी दयनीय है कि सरकार अपनी जेब से खर्चा करके यातायात को बनाए हुए है। जितने भी इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड हैं, सब कर्जे से लदे हुए हैं।

खेल जगत् का मौसम—हमारे देश में खेल जगत् के माहौल से सब परिचित हैं। हमारे देश का सबसे प्रिय खेल हॉकी, जिसका दुनिया में कोई सानी नहीं था, वही हॉकी का खेल अब दफनाए जाने की स्थिति में आ चुका है। हर स्पर्धा में उसका जनाजा निकल जाता है। फुटबॉल में तो हम कभी भी शीर्षस्थ स्थान पर नहीं जा सके हैं। क्रिकेट में जो थोड़ा-बहुत दम था उसमें भी हमने अपना वर्चस्व खो दिया है। लॉन-टेनिस में सिवाय रमेश कृष्णन के अब कोई दूसरा सितारा नजर नहीं आ रहा है। अन्य खेलों में भी हम अंतर्राष्ट्रीय स्तर के नहीं हो पा रहे हैं। इस सबके पीछे एकमात्र कारण है हमारे देश में राष्ट्रीय चरित्र की कमी तथा विश्व-भर में एक अजीबोगरीब चुनौती का माहौल बन गया है।

दक्षिण कोरिया के 'सोल' नामक स्थान पर चौबीसवें ओलंपिक खेलों का आयोजन किया गया। लेकिन यह कितना दुखद है कि खेल जगत् में खिलाड़ियों की सुरक्षा हेतु इस स्थान पर करीब एक लाख पुलिसकर्मी नियुक्त किए गए। दुनिया-भर से यहां आनेवाले लगभग १५ हजार एथलीटों तथा अधिकारियों की सुरक्षा के लिए कड़े प्रबंध किए गए थे। आज से कुछ दशक पूर्व खेल एक ऐसा माध्यम माना जाता था जिसके द्वारा भाई-चारा, प्रेम और सौहार्द्र पनपते थे। सिवाय खेल-भावना के दूसरी प्रवृत्तियां थीं ही नहीं; लेकिन अब वहां भी राजनीति और वह भी घिनौनी, निम्न स्तर की राजनीति चल रही है। श्वेत और अश्वेत को

लेकर सारी दुनिया परेशान है। किसी भी श्वेत देश का खिलाड़ी अश्वेत देश में जाकर नहीं खेल सकता। इन सब तथ्यों से यह उजागर होता है कि मानवता बजाय आगे बढ़ने के पीछे खिसक रही है।

चिकित्सा जगत्—इस जगत् का मौसम इतना बदला हुआ है कि सहसा यह विश्वास नहीं होता कि चिकित्सकगण 'हाइपोक्रीटिस' की शपथ लेने के बाद अपनी आचारसंहिता को भूल से रहे हैं। आज का चिकित्सक इनसानियत की आवाज को अनसुनी कर रहा है। संपत्ति संग्रह ही उसके जीवन का एकमात्र उद्देश्य रह गया है। चिकित्सा जगत् में आपराधिक लापरवाही के उदाहरणों की कमी नहीं। उत्तरप्रदेश के खुरजा नगर में गत वर्ष नेत्र-शिविर में जो कुछ हुआ वह सबको विदित है। दूषित दवा के उपयोग के कारण सैंकड़ों लोगों की आंखों की रोशनी चली गई थी। बाद में जांच कराई गई और पीड़ित रोगियों को मुआवजा दिलाया गया। ऐसी घटनाएं आए दिन होती रहती हैं। किसी भी चिकित्सक का कुछ भी नुकसान नहीं हुआ। बंबई जैसे शहरों में जीवित मनुष्यों की आंखें, गुर्दे दलालों द्वारा खरीदे जाते हैं। धनिकों को जीवन देने के लिए गरीब इनसान पैसों के लिए अपनी जान पर खेल जाता है। चिकित्सक आदमी-और-आदमी में भेद करें—दलाल गरीब आदमी को आदमी न समझें, यह कैसा मौसम है? बड़े-बड़े अनुसंधान हो रहे हैं। नई-नई दवाइयां निकल रही हैं। पर आम जनता त्रसित है। रोजमर्रा की साधारण बीमारियों के लिए अस्पतालों में दवाइयां उपलब्ध नहीं हैं। गरीबों को दी जाने वाली दवाइयां या तो लुके-छुपे बेच दी जाती हैं या फिर विशेष वर्ग को उपलब्ध कराई जाती हैं। आखिर समाज और देश को हो क्या गया है? कुछ दशक पूर्व एक चिकित्सक श्रद्धा की निगाह से देखा जाता था। लोग उसे भगवान् मानते थे, जीवनदाता कहते थे और आज एक चिकित्सक को देखकर आम लोगों की क्या प्रतिक्रिया है, यह बताने की जरूरत नहीं है।

शिक्षा जगत्—राष्ट्र-निर्माण का सबसे प्रमुख अंग शिक्षा है। आज उसकी जो दुर्दशा हो रही है वह सोचनीय है। शिक्षा का मूल अर्थ आज रोजगार हो गया है। राष्ट्र-निर्माण के स्तंभ शिक्षकवृन्द, जब चाहे हड़ताल पर चले जाते हैं। कुछ समय पहले देश-भर के अध्यापक हड़ताल पर चले गए थे। उनकी मांग थी कि वेतन बढ़ाया जाए तथा नौकरी के नियमों को तर्कसंगत बनाया जाए। उनकी मांग पूरी हुई। पर उस अवधि में विद्यार्थियों का क्या हुआ, इसका खयाल किसी ने नहीं किया। अध्यापकों के द्वारा की गई हड़ताल केरल के विद्यार्थियों के लिए एक प्रेरणा बन गई है। उन लोगों ने अपने कॉलेज के अंदर ही मधुशाला स्थापित करने के नाम से आंदोलन शुरू कर दिया। उनका कहना था कि सुरादेवी की उपासना के बिना सरस्वती की उपासना अधूरी ही है। कमोबेश पूरे देश-भर में विद्यार्थियों में उत्साह, उमंग तथा ऊर्जा है परंतु उनमें किसी आदर्श या सिद्धांत के लिए उत्सर्ग

की भावना नहीं है।

जुलाई के प्रथम सप्ताह में जब स्कूल, कॉलेज आदि खुलते हैं तो छोटे बच्चों की, किशोर और किशोरियों की बाढ़ आ जाती है। भरती के लिए बच्चे तथा उनके माता-पिता भागते नजर आते हैं। उन्हें किन मुसीबतों का सामना करना पड़ता है, यह सबको मालूम है। राष्ट्र-निर्माण के लिए विद्यार्थियों में अच्छे संस्कार की जरूरत है। उनमें देश-प्रेम तथा देशभक्ति जगानी चाहिए। पर आज छात्र वर्ग दिशा-विहीन है। शिक्षा जगत् में रिश्वतखोरी तथा परीक्षा के समय नकलबाजी का सहारा लेकर विद्यार्थी पास तो हो जाता है पर उसमें आत्म-विश्वास नहीं रहता। शिक्षाविदों का हाल तो और भी दु:खदायी है। शिक्षा जगत् में यदि ट्रेड यूनियन की नकल करने की प्रवृत्ति उभरने लगे तो इस जगत् का भविष्य अंधकारमय है।

देश के तीन स्तंभ—विधान सभाएं व संसद, प्रशासनिक तंत्र तथा न्याय-पालिका के द्वारा ही किसी भी देश का शासन चलता है और देश की प्रगति की योजना बनाई जाती है। हमारे देश में इन तीनों स्तंभों का विवरण देना उचित नहीं होगा। क्योंकि सारे देश में इन तीनों स्तंभों के बारे में आए दिन चर्चा होती रहती है और प्रबुद्ध वर्ग यह नहीं समझ पा रहा है कि देश का कल्याण कैसे किया जाए।

ऊपर लिखे भिन्न-भिन्न जगत् के मौसमों का जो हाल मैंने बताया है, उससे यह स्पष्ट है कि इन मौसमों ने मानवता को एक नए केंद्र-बिंदु पर लाकर खड़ा कर दिया है। आज का मानव 'कल' आएगा या नहीं इसपर विश्वास नहीं करता। वह वर्तमान को भोग लेना चाहता है। यथार्थ में ही उसका आकर्षण है। उसके संस्कार ऐसे बने हैं कि अगले मौसम तक वह जीवित भी रहेगा या नहीं, इस पर उसे विश्वास नहीं। इसीलिए वह सब कुछ इसी क्षण भोग लेना चाहता है और इसी मनोवृत्ति के कारण प्रकाश की किरणें कहीं दिखाई नहीं दे रही हैं।

मौसम कोई भी हो उसे मंगलमय होना चाहिए। प्रकृति में ऋतु चक्र है, अभ्यांतर जीवन में भाव चक्र। सौंदर्य का आकर्षण प्रकृति और नारी के प्रति सदैव रहा है। हर मौसम मूलत: सौंदर्य का प्रतीक है। जीवन में सौंदर्य से रसपरिपाक बढ़ता है। प्रत्येक मौसम से जो रस टपकता है आज का आदमी भौतिकवादी होने के नाते उन रसों का आनंद नहीं ले पाता।

१२

अपनी ढफली अपना राग

हर व्यक्ति, हर राजनीतिक पार्टी, हर संस्था, हर लेखक सभी का सपना होता है, स्वस्थ और सुंदर समाज की रचना; लेकिन वर्तमान समय में ये सब इकाइयां सोचती कुछ हैं, बताती कुछ और हैं तथा करती कुछ और हैं। आवाज और वाणी की दुनिया दोरंगी हो गई है। इसीलिए सबकी ढफली बेसुरी हो गई है। अपने स्वार्थ के मुताबिक वे अपना राग अलापते हैं। कृष्णचंदर की 'एक गधे की आत्मकथा' जिन्होंने पढ़ी होगी उन्हें यह भान हुआ होगा कि किस तरह की आवाज आज का आदमी निकालता है और वह कैसे खुद को तो धोखा देता ही है, औरों को भी धोखे में कैसे रखता है, यही आश्चर्य की बात है। गधे और उल्लू, दो ऐसे प्राणी हैं जो सदैव अपना ही राग अलापते रहते हैं। उन्हें दूसरों की परवाह नहीं रहती।

आज समाज की यह तसवीर है। हर राजनीतिक पार्टी गुलेल से उल्लुओं को उड़ाने की हरचंद कोशिश करती है, लेकिन व्यवस्था की शाख पर इनकी सूबेदारी इतनी मजबूत है कि उन्हें हिलाना भी कठिन है। उनका गुलेल भी नकली रबर का बना रहता है। इसी तरह गधों ने जीवन के सभी क्षेत्रों में हर तरफ वंश-विस्तार कर लिया है। हमारा गणतंत्र 'गधा-तंत्र' होकर रह गया है। राजनीतिज्ञ जैसे स्वार्थ के अनुसार दल-बदल करते हैं वैसे ही हर संस्था, हर लेखक अपनी विधाएं बदलता है। झूठे आश्वासनों से दाल नहीं गलती तो समझौता और संधि का सहारा लिया जाता है। समाज की पीड़ा से पीड़ित होकर कोई अपनी आवाज नहीं उठाता। केवल समाज को पीड़ित करके अपना उल्लू सीधा करने के लिए आवाजें बुलंद करता है।

आज समाज में साधारण आदमी होकर जीना बड़ा कठिन है। सामान्य आदमी को यहां आदमी नहीं माना जाता। वह किसी रोग का कीटाणु माना जाता है। राशन की दुकान हो, थाना हो, अस्पताल हो, कचहरी हो, रोजगार

दफ्तर हो, या चुनावी मंच हो, सामान्य आदमी इस देश में सभी जगह तिरस्कृत है। यहां आदमी के रूप में मान्यता प्राप्त करने के लिए पद या पैसा आवश्यक है। अन्यथा आदमी होकर भी आप कीड़े के समान हैं। सघन आबादी, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, महंगाई, तस्करी आदि अनेक समस्याओं का राग सब अलापते हैं। पर उनकी कथनी और करनी में जमीन-आसमान का अंतर है। धोखाधड़ी, प्रवंचना आदि के कारण गंदे तालाब की तरह समाज में सड़ांध की गंध आती है। लोग सचेत हों, सही मेहनत करें तथा सुधार के लिए एकजुट हों, सही-सच्ची वाणी बोलें लेकिन ऐसा कोई नहीं कर रहा है। अस्वस्थ पर प्रहार कर स्वस्थ के प्रतिष्ठित करने की चेतना जाग्रत् करने का बीड़ा कोई नहीं उठा रहा है। जनता तमाशबीनों की तरह इन सबकी आवाजें सुनती रहती है। उनको अपनी प्रतिक्रिया दिखाने का समय केवल चुनाव के ही समय मिलता है। लेकिन उस समय भी वह पैसों से, शराब से तथा अन्य दबावों से अपने को बेच देता है।

साहित्यिकों तथा लेखकों का तो और भी बुरा हाल है। वे सब पुरस्कार पाने के लोभ में 'रागदरबारी' सीखते रहते हैं। रागदरबारी गा सकनेवाले के पास सम्मान, इज्जत, पुरस्कार स्वयं भागकर आ जाते हैं। हमारे समालोचकों तथा प्रकाशकों की दुनिया ही निराली है। उस क्षेत्र में उलटी गंगा बहती है। प्रकाशक लेखक का पैसा देने के बदले उलटे उनसे पैसा मांगते हैं। पारिश्रमिक तो केवल मक्खन लगाने का, चाटुकारी करने का तथा रागदरबारी गाने का मिलता है। जिन्हें आप तोड़ना चाहते हैं वे पारिश्रमिक देकर आपका मुंह बंद कर देते हैं। जिनपर व्यंग्य लिखा जाता है या किया जाता है वह वर्ग भी अब समझने लगा है कि इससे कैसे बचा जाए। पैसों की झनझनाहट सुनाकर वे अपने विरोधियों का मुंह बंद कर देते हैं। अतः एक कटु आलोचक भी अब विनम्र, होशियार और कूटनीतिज्ञ हो गया है। उसके व्यंग्य के लिए बजाय विरोध के उसे प्रशस्ति मिल रही है। इसीलिए विरोध का जो राग वे अलापते हैं, उस ढफली की आवाज मुलायम रहती है तथा बेसुरी रहती है। उसका कोई भी प्रभाव किसी भी वर्ग पर नहीं पड़ता।

देश-भर में बीस सूत्रीय कार्यक्रमों की आवाज बुलंद की जा रही है। बीस सूत्रीय कार्यक्रम में संवेदनशील प्रशासन का सूत्र जोड़ने की कोशिश की जा रही है। परंतु जनता के प्रति अधिकारी वर्ग कतई जिम्मेदारी नहीं बरत रहा है। प्रशासन जनता के प्रति ज्यादा से ज्यादा उत्तरदायी बने, यही आवाज उठाई जा रही है। लेकिन नक्कारखाने में तूती की आवाज कौन सुन रहा है। जनसमस्याओं के निराकरण में जो हीला-हवाला अथवा विलंब किया जाता है वह हास्यास्पद है तथा कई मायनों में तो अविश्वसनीय भी है।

हमारे देश में जो मुख्य राजनीतिक पार्टियां हैं वे किस तरह अपनी-अपनी

ढफली बजाते हुए अपना-अपना राग अलापती रहती हैं—यह सबको विदित है। लेकिन इस पर निष्पक्ष विचार करना आवश्यक है। प्रतीत होता है कि किसी राजनीतिक दल को देश की समृद्धि तथा उत्थान से कोई सरोकार नहीं है। उन्हें केवल राजसत्ता चाहिए। देशभक्ति या राष्ट्र-प्रेम से उन्हें कोई सरोकार नहीं है। येन-केन-प्रकारेण उन सबकी एक ही आवाज है कि सत्तारूढ़ दल को हटाया जाए। उनके हट जाने के बाद ये स्वयं क्या करेंगे, इसका अंदाज किसी को नहीं है। वे लोग, जो आज सत्ता में बैठे लोगों को हटाना चाहते हैं, कुछ दिनों बाद उन लोगों को हटाने के लिए प्रयत्नशील हो जाते हैं जिनकी मदद से उनका अस्तित्व बना था। उन्हें इस बात की कोई चिंता नहीं है कि उस हालत में देश में शून्य का वातावरण हो जाएगा। सब लोग हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहेंगे तब देश का क्या होगा? सब कुछ अनिश्चित होते हुए भी वे 'मेरी मुर्गी की एक टांग' के नारे को नहीं छोड़ते। जो जितना उथला है वह उतनी ही जोर से आवाज करता है। कहा भी जाता है कि 'थोथा चना बाजे घना'। बंद, घेराव, हड़ताल आदि के नारे देकर अपना झूठा अस्तित्व दिखाना आज का सबसे बड़ा काम है।

आज देश में चारों तरफ बेसुरे राग सुनाई पड़ रहे हैं। एक-से-एक तराने गाए जाते हैं। 'सारे जहां से अच्छा हिंदोस्तां हमारा' गीत सभी पाठशालाओं एवं विद्यालयों में गाया जाता है, पर क्या सचमुच हम अपने देश की इस गौरवगाथा को बनाए रखने में सफल हुए हैं? जो विभिन्न राग अलापे जा रहे हैं उससे हमारे देश की छवि अंतर्राष्ट्रीय जगत् में धूमिल हुई है। देश के अंदर तो सभी लोग आशंकित हैं तथा भयभीत हैं कि आखिर हम जा कहां रहे हैं। हर भारतीय देश से कुछ न कुछ पाना चाहता है। वह स्वयं देश को कुछ नहीं देना चाहता। हर भारतीय दूसरे व्यक्ति के कर्तव्यों को गिनाता है पर अपने स्वयं के कर्तव्यों को भूल जाता है। स्वधर्म-पालन कहीं नहीं हो रहा है। स्वतंत्रता का अर्थ उसने निर्भीक, निर्बाध व्यवहार मान लिया है। जब तक हमारे देश का प्रत्येक नागरिक यह नहीं समझेगा कि स्वतंत्रता की रक्षा सतत जागरूक रहने से ही संभव है तब तक इस देश का कल्याण नहीं होगा। प्रत्येक नागरिक को स्वयं के प्रति भी उत्तरदायी बनना पड़ेगा।

आज देश की सबसे भयंकर समस्या है 'विघटन'। चारों तरफ क्षेत्रीयता, जातिवाद एवं भाषावाद के नारे उछाले जा रहे हैं। मिथिलांचल, गोरखालैंड, झारखंड की मांगों से देश के विभाजन का खतरा बढ़ गया है। १९७९ में डॉ० देवीदत्त पंत ने उत्तराखंड क्रांति-दल का गठन किया था। वैसे इस क्रांति का बिखराव हो गया है, पर मौलिक रूप से मांग अपनी जगह पर कायम है। ऐसे तत्त्व ही देश में विघटन का बीज बोते रहे हैं। इनका शीघ्रातिशीघ्र संतोषप्रद इलाज होना चाहिए। पंजाब में आतंकवाद उर्फ उग्रवाद ऐसा फैला हुआ है कि

मानो उसका कोई निराकरण ही नहीं है। प्रतिदिन दस-पंद्रह लोगों की जान जाती है और देश चुपचाप है। भारत सरकार निरंतर कहती जा रही है कि हम समस्या के प्रति जागरूक हैं। शीघ्र ही हल निकल आयेगा। लेकिन आसार ऐसे नहीं दिखते। देश में घटित होती घटनाओं, दुर्घटनाओं से लगभग सभी परिचित हैं, पर लोग हंगामा करते हैं, सूरत कोई नहीं बदलना चाहता। सब कहते हैं कि सब तरफ अंधकार है पर कोई भी व्यक्ति एक मोमबत्ती तक नहीं जलाना चाहता। अंधकार में जीते रहना ही आज मानव का दर्शन हो गया है। देश में पड़े भयंकर सूखे को दी जानेवाली राशि में भी लोग अपना हिस्सा बना लेते हैं। राजनेताओं का स्वागत फूलों से किया जाता है पर हृदय में कुछ और रहता है। श्रद्धाभिभूत होकर हार्दिक स्वागत कोई नहीं करता। सब अपना उल्लू सीधा करने की फिराक में रहते हैं।

देश में पत्रकारिता-जगत् में भी उथल-पुथल है। निर्भीक, स्वतंत्र तथा निष्पक्ष पत्रकारिता देश के लिए अत्यंत जरूरी है। प्रेस की स्वतंत्रता तथा पत्रकारिता से संबंधित 'मानहानि-विधेयक' जो भारत सरकार लाना चाहती थी उसे लेकर देश-भर में हंगामा हुआ। एक दिन पूरे देश-भर के सारे अखबार बंद रहे। इसके विरोध में वक्ताओं ने कहा कि सरकार अपनी कमजोरियों, खामियों और गलतियों को छिपाने के लिए यह विधेयक ला रही है और उसका इरादा लोकतंत्र की स्थापित संस्थाओं को तहस-नहस करने का है। यह विधेयक प्रेस के खिलाफ नहीं बल्कि आम जनता के खिलाफ है। क्योंकि इससे उनके जानकारी के मौलिक अधिकार का हनन होगा। कई वयोवृद्ध इंका नेताओं ने भी इस विधेयक को बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं माना। उनका कहना था कि इससे लोग समझेंगे कि कुछ पदों पर व्याप्त भ्रष्टाचार तथा घोटालों के बारे में रिपोर्ट का प्रकाशन रोकने के लिए ऐसा किया जा रहा है। अंत में विधेयक को संसद् में नहीं लाने दिया गया।

बढ़ती हुई आबादी को रोकने के लिए वैधानिक गर्भपात तथा भ्रूण हत्या जैसे अमानवीय तरीके अपनाए जा रहे हैं। आपको पढ़कर आश्चर्य होगा कि शहर के जितने नर्सिंग होम हैं सबमें वैधानिक गर्भपात के लिए आए लोगों की संख्या सबसे अधिक है। उन अस्पतालों की आमदनी का यह मुख्य जरिया बन गया है। इस तरीके से समाज में जो अनैतिकता फैल रही है उसकी ओर किसी का ध्यान नहीं जा रहा है। समाज के नवयुवक और नवयुवतियां ही यदि समझने लगें कि धर्म में, ईश्वर में, नैतिकता में कुछ नहीं रखा है, वे तो सब केवल हमारे पूर्वजों ने हम सबों को डराने के लिए बना रखा था तो फिर बताइए समाज का क्या होगा? चार-पांच दशक पूर्व लज्जा, शर्म तथा सामाजिक नियमों के कारण इस तरह के अवैध संबंध नहीं हो पाते थे पर अब तथाकथित धर्म ही नहीं रह गया है। सामाजिक बंधन तो शिथिल हो ही रहे हैं। हमारी नैतिकता की आधारशिला ही चर-

मरा रही है। जैसे ही गर्भवती महिला को पता चलता है कि गर्भ में कन्या है तो वह शीघ्र भ्रूण हत्या करवा लेती है। शीघ्र ही वह समय आएगा जब लड़कियों की संख्या मर्दों के मुकाबले कम हो जाएगी। उस हालत में समाज की जो स्थिति होगी उसकी कोई कल्पना नहीं कर सकता। विदेशों में भी बढ़ती आबादी की समस्या है पर वहां पर इस तरह की छूट नहीं दी गई है। भ्रूण हत्या का एक रोचक अंग भी है। जब माता-पिता को यह अधिकार है कि वे बच्चे पैदा करें या न करें तो उन्हें यह भी अधिकार होना चाहिए कि वे लड़के पैदा करें या लड़की। यह कहा जाता है कि यह छूट होने से प्रकृति का संतुलन बिगड़ जाएगा और फिर सब लड़के ही पैदा करने लगेंगे।

आम तजुर्बा यह है कि कायदे-कानून का पालन कर रहे लोग अनेक किस्म की उलझनों में फंसते हैं। आज का शासकीय तंत्र दांव-पेच, चाटुकारी, उखाड़-पछाड़, भाई-भतीजावाद तथा अनैतिकता के सहारे चल रहा है। इन तरीकों को समाप्त करने का कोई रास्ता अभी दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है। देश को आजाद हुए ४३ वर्ष हो गए पर हर तरह की समस्याएं उभर रही हैं। निराकरण किसी का भी नहीं हो पा रहा है। आजादी लेने के बाद हमने ऐसी आवाज और वाणी निकाली थी कि देश में कोई गरीब न रहेगा। कोई अशिक्षित नहीं रहेगा। कोई बेरोजगार नहीं रहेगा, परंतु आज हमारी वे सब आवाजें तथा भाषण कहां चले गए? अब हम जो बोलते भी हैं वह नकली और बनावटी—केवल आत्म-प्रवंचना कर रहे हैं। दूसरों को धोखा देकर आत्म-संतोष पा रहे हैं। हमारे देश में नैतिक स्तर में इतनी गिरावट आ गई है कि अब बिना पतन के कोई दूसरा विकल्प नहीं है। हमारा नैतिक पतन कई दशक पूर्व से ही चल रहा है पर अब उसकी पराकाष्ठा हो चली है। दुःख की बात तो यह है कि जो नैतिक मूल्य आजादी के पहले थे उनका भी हनन स्वतंत्र भारत में हो रहा है। स्तर ऊंचा होने के बजाय प्रायः नीचे गिरता जा रहा है। समाज के प्रायः सभी क्षत्रों में यह गिरावट देखी जा सकती है। किसी के पास कोई आदर्श रह ही नहीं गया है।

गरीबी के लिए राजनीतिक व नौकरशाह जिम्मेदार कहे जाते हैं, लेकिन राजनीतिक और नौकरशाह यह नहीं चाहते कि गरीबी को दूर किया जाए। गरीबी समाप्त हो जाने पर दोनों के हितों को खतरा पहुंच सकता है। ये दोनों देश के ढांचे में ऐसा कोई परिवर्तन नहीं होने देना चाहते जिससे गरीबी को समाप्त किया जा सके। सरकार और देश के कर्णधारों में आपसी समन्वय होना चाहिए, जो नहीं है। बड़े-बड़े पदों पर आसीन लोगों का यह दायित्व है कि वे ऐसे कार्यक्रमों को तैयार करें जिनसे रोजगार के अवसर बढ़ें और लोगों की जरूरतों को पूरा किया जा सके। सब यह जानना चाहते हैं कि राजनीतिक व अधिकारियों ने देश के आर्थिक ढांचे को बेहतर बनाने के लिए, सबको रोजगार

उपलब्ध कराने के अवसर बढ़ाने के लिए, शोषण की व्यवस्था को कम करने के लिए क्या योगदान दिया है ? क्या प्रशासन के यथापूर्व ढांचे में परिवर्तन करके उसे परिणाममूलक और उत्तरदायित्वपूर्ण नहीं बना सकते ? गरीबों तथा जरूरत-मंदों की आवाज को नहीं पहचान सकते ? झूठ बोलकर, असत्य वाणी बोलकर वे हमें क्यों गुमराह करते रहते हैं ?

कोई भी सामान असली है या नकली, इसे पहचानने में देर नहीं लगती, उसी तरह आदमी असली है या नकली, रुपया असली है या नकली, पहचानने में भी आसानी रहती है। परंतु यदि कोई नकली हंसी हंसते हुए नकली आवाज निकाले और कृत्रिम वाणी बोले तो उस नकलीपन को पहचानना बहुत मुश्किल हो जाता है। बहुरुपिया होकर जीना आज आम बात है। आज समाज के अधिक लोग नकली हंसी हंसते हैं तथा सबको गुमराह करने में गौरव महसूस करते हैं। उनके चेहरे पर मुखौटा लगा ही रहता है। कृत्रिम जीवन जीना आज एक बहुत बड़ी कला है। किन परिस्थितियों में, किन क्षणों में, किन लोगों के साथ कैसी मानसिक अवस्था में नकलीपन का परदाफाश नहीं होता यह आज के कलाकार खूब समझते हैं। नकली अनुभूतियों को व्यक्त करते हैं। आज अपने को ऊंचा उठाने का तरीका केवल यह रह गया है कि वे अपनी झूठी प्रतिष्ठा का प्रदर्शन करें। सच्चा ईमानदार व्यक्ति आज पनप नहीं सकता।

गुलामी के दौरान यह सोचा जाता था कि जब देश आजाद होगा तब नैतिक स्तर उठेगा। लेकिन हुआ इसके ठीक विपरीत। अलबत्ता जो नैतिकता थी वह भी अपाहिज हो गई। इस समय समाज का हर वर्ग भ्रष्ट तरीके से धन बटोर रहा है और लोग भी उसी के चारों ओर उमड़ रहे हैं। इस तरह भ्रष्ट लोगों की पूजा की जा रही है और ईमानदार सारी यातनाएं झेलने को मजबूर किया जा रहा है। किसी भी देश को सफलतापूर्वक चलाने के चार स्तंभ होते हैं—प्रशासन-तंत्र, विधान सभा और संसद्, न्यायपालिका तथा पत्रकारिता एवं प्रेस। आज देश में वे चारों स्तंभ डगमगा रहे हैं। गलत नीतियों के कारण, गलत लोगों के कारण तथा गलत वातावरण के कारण।

शोषण से उपजी शोषित की आवाज प्रचंड रूप ले सकती है। विश्व-भर में जितनी क्रांतियां हुई हैं उनके पीछे शोषित और प्रताड़ित जनता की ही आवाज थी। आश्चर्य है कि आज हमारे देश में सर्वत्र शोषण हो रहा है, पर क्रांति की आवाज कहीं सुनाई नहीं पड़ती। इसका विश्लेषण करने पर पता चलता है कि क्रांति के लिए देश में सारे तत्त्व मौजूद हैं जो क्रांति को जन्म देते हैं। पर अगले ५०-६० वर्षों तक भारतवर्ष में क्रांति नहीं होगी, ऐसा लोगों का अंदाज है। क्योंकि हमारी जनता प्रारब्धवादी एवं धर्मभीरु है। अहिंसा में विश्वास करती है। जो कुछ भी आपदाएं आती हैं वे ईश्वर की मर्जी से आती हैं, ऐसी उनकी धारणा है

तथा वे सब लोग पंचायती राज तथा पंचायती सिद्धांतों में विश्वास करते हैं।

भिखारी हमारे देश में प्रतिदिन जन्म लेते हैं। भीख मांगना तो आज सम्माननीय व्यवसाय जैसा हो गया है लेकिन भिखारी और भिखारी में अंतर है। गरीबों की आह सभी सुनते हैं लेकिन उनकी हालत पर द्रवित होकर कोई कुछ देना नहीं चाहता। गरीबों की आह पर कुछ सहानुभूति के शब्द बोल देना आज की सभ्यता है। पर इनसान को गरीब की आह की कद्र करनी चाहिए।

समाज में कुछ ऐसी दुष्प्रवृत्तियां पनप रही हैं जिनका स्रोत समझ में नहीं आता। दुर्गुण, खराबियां, ईर्ष्या व द्वेष जीवन में इतनी गहराई तक पहुंच गए हैं कि उनसे उद्धार पाना मुश्किल है। एक जमाना था जबकि झूठे, चोर, बदनीयत लोगों पर ही उंगली उठाई जाती थी। आज सबकुछ उल्टा हो रहा है। जो सच्चा है वही सबकी आंखों में गड़ रहा है। नौबत तो यहां तक आ गई है कि लोग गलती करते हैं और इस कहावत को चरितार्थ करते हैं—"एक तो चोरी, दूसरे सीनाजोरी।" चोरी करनेवाले को कोई डर नहीं है। सब उन्हीं का साथ देते हैं। आज सच्चे आदमी को बेवकूफ समझा जाता है, क्योंकि वह गलत चीजों से, गलत आदमियों से तालमेल नहीं रख सकता। 'उल्टा चोर कोतवाल को डांटे' वाली कहावत प्रतिदिन हर क्षेत्र में देखी जा सकती है।"

रचनात्मक कार्य, चरित्र-निर्माण तथा देश को ऊंचा उठाने के लिए, सही-सच्ची आवाज कोई नहीं उठाता।

आदमी सबसे अधिक खतरनाक प्राणी है। आदमी को आदमी से अधिक डर है। किस रूप में वह अधिक खतरनाक है, यह कहना मुश्किल है। मधुर बोली बोलते हुए राजनेता के रूप में, या सूद इकट्ठा करता हुआ महाजन के रूप में या धर्म-प्रचारक के रूप में या समाज-सुधारक के रूप में—कुछ समझ में नहीं आता। "देख तेरे संसार की हालत क्या हो गई भगवान, कितना बदल गया इनसान।" यह एक ऐसी आवाज है जो सर्वत्र सब क्षेत्रों में सुनी जा रही है। "हम क्या होंगे खराब, जमाना खराब है।" की आवाज भी जमाने को ही दोष दे रही है। भौतिकवाद, औद्योगीकरण मशीन-युग के कारण ही जमाना बदल रहा है। यदि मशीनों पर इतना जोर न दिया जाए तथा मानव स्वाभाविक जीवन व्यतीत करने लगे एवं सच्चाई के साथ बोलने लगे तब धीरे-धीरे वह स्वयं महसूस करेगा—आह ! प्राण-वायु तेरा स्वागत है। सचमुच प्रकृति की ओर वापसी की शुरुआत का वह दिन अत्यंत सुखद होगा, उत्साहवर्धक एवं आह्लादपूर्ण होगा। मानव हरी घास पर लेटकर आराम कर सकेगा। सुख और शांति पाएगा।

भारत इस वक्त अपने समय के सबसे कठिन दौर से गुजर रहा है। ऐसा पहली बार हो रहा है जब जाति और धर्म के स्तर पर पहले से बंटा हुआ देश, और अधिक बंटने की स्थिति में आ गया है। क्या विघटन का खतरा सत्ता की

गलत नीतियों से खड़ा हुआ है ? क्या हमारे कर्णधार, देश का नेतृत्व एवं देश को संभालने में अपने को असमर्थ पा रहे हैं ? इन प्रश्नों का उत्तर तो भविष्य के गर्भ में है। भारत के विभाजित राजनीतिक परिदृश्य का सर्वेक्षण करने के बाद इस तथ्य से थोड़ी तसल्ली प्राप्त होती है कि कठिन परिस्थितियों में भी देश एक सूत्र में अभी तक बंधा हुआ है। मगर यह अहसास भी देश में बढ़ रहा है कि भारतीय राष्ट्रवादिता की भावना पर लगातार कई दिशाओं से दबाव बढ़ते जा रहे हैं, विशेषकर सांप्रदायिकता का जहर अब और अधिक तेजी से फैलाया जा रहा है। इस विषय पर तुष्टिकरण की नीति बहुत महंगी पड़नेवाली है।

संविधान में आरक्षण का प्रावधान कुछ विशेष पिछड़ी हुई जाति के लोगों के लिए था लेकिन यह आरक्षण कुछ सीमित अवधि के ही लिए था। अब आरक्षण की अवधि बढ़ाते रहना, सत्ता की एक राजनीतिक अतिवादिता बन गई है। बीस वर्ष के बीतने के बाद भी न केवल आरक्षण बरकरार रखा गया, बल्कि प्रत्येक दस वर्ष बाद उसे पुनर्जीवन भी दिया जाता रहा। इस तरह एक स्थायी व्यवस्था ने अमरता प्राप्त कर ली। यह हमारी आर्थिक व्यवस्था की पराजय और पतनशील राजनीतिक व्यवस्था की जीत का लक्षण है। भारतीय संविधान को लागू हुए ४० वर्ष बीत चुके हैं। इन ४० वर्षों में क्या कुछ अनुसूचित जातियों और जनजातियों का इतना विकास हो चुका है कि उन्हें आरक्षण की आवश्यकता ही नहीं रह गई है। नहीं, ऐसी बात नहीं है। कुछ अन्य जातियां तथा जनजातियां इस अनुसूची में शामिल होने के लिए आवाज उठा रही हैं। अतः अनुसूची में उन्हें शामिल करने पर विचार किया जा रहा है। इससे दो बातें उजागर होती हैं—एक तो यह कि पिछले ४३ वर्षों में जो आर्थिक विकास हुआ है उसके कारण और भी ऐसे समूह पैदा हो गए हैं जिन्हें आरक्षण की आवश्यकता है; दूसरी बात यह है कि आरक्षण से मिलनेवाली सुविधाओं के प्रति दूसरे लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ है। अब वे आरक्षण की सूची में शामिल होने के लिए सरकार पर दबाव डाल रहे हैं। ये दोनों ही बातें हमारे लिए शर्मनाक हैं। इनसे पता चलता है कि हमारे विकास की दिशा क्या है तथा हम किस प्रकार की राजनीतिक संस्कृति के बीच जी रहे हैं। आरक्षण की अवधारणा में ही निहित है कि यह कोई स्थायी व्यवस्था नहीं है। फिर अब हम उसे किसी न किसी बहाने जारी क्यों रख रहे हैं ? संविधान-निर्माताओं ने यह व्यवस्था अनंत काल के लिए नहीं की थी। उन्हें उम्मीद थी कि ज्यादा से ज्यादा बीस वर्षों में सामाजिक-आर्थिक विषमता इतनी कम हो जाएगी कि आरक्षण की जरूरत ही नहीं रहेगी। सच तो यह है कि एक बार जब किसी अच्छाई का बुरा इस्तेमाल शुरू कर देते हैं तो फिर एक दुष्चक्र शुरू हो जाता है जिस पर काबू पाना अब असंभव प्रतीत होता है। अब समाज में एक किस्म का राजनीतिक 'ब्लैकमेल' शुरू हो गया है। यह हमारी राजनीतिक

व्यवस्था के पतन का एक चिह्न है। इस 'ब्लैकमेल' को स्वीकार करना उदारता का ही नहीं, निरीहता का लक्षण है। आरक्षण की दूषित राजनीति ने हमारे समाज में एक बुराई को जन्म दिया है। इसने समाज को दो हिस्सों में बांट दिया है। आपसी द्वेष व कलह का माहौल पैदा कर दिया है। गुजरात में तो आरक्षण-विरोधी दंगे हुए भी। सवर्णों को लग रहा है कि आरक्षण के नाम पर अनुसूचित जातियों को बेकार का लाभ दिया जा रहा है। योग्य सवर्ण नौकरी से वंचित हो रहे हैं तथा निम्न वर्ग के अयोग्य लोग मालामाल हो रहे हैं। इस तरह से सवर्ण, अवर्ण के बीच शीत-युद्ध की स्थिति बनी रहेगी और विभिन्न राजनीतिक दल इस चूल्हे पर अपनी चुनावी रोटी सेंकते रहेंगे। भले ही देश रसातल में चला जाए। अत: आरक्षण पर पुन: विचार की आवाज उठाना जरूरी है।

प्रति वर्ष १४ सितंबर को हम हिंदी दिवस मनाते हैं। गत ४३ वर्ष में हम अपनी राष्ट्रभाषा नहीं बना पाए। वैसे भारतीय संविधान में हिंदी को राष्ट्रभाषा मान लिया गया है परंतु अंग्रेजी का भारतीय मस्तिष्क के ऊपर पड़ा हुआ प्रभाव कम होने के बजाय वृद्धिगत ही हो रहा है। राष्ट्रभाषा का प्रश्न आज भी जटिल बना हुआ है। राष्ट्रभाषा को लेकर जब दक्षिण में हिंसा भड़क उठी थी उस समय संत विनोबा ने आमरण अनशन किया था। तत्कालीन गृहमंत्री गुलजारीलाल नंदा के सत्प्रयत्नों से तीन शर्तों पर समाधान हुआ था—(१) अंग्रेजी चाहनेवालों पर हिंदी लादने का प्रयास न किया जाए। (२) हिंदी चाहनेवालों पर अंग्रेजी न लादी जाए (३) आपस के मतभेद हिंसा से नहीं, बातचीत से हल किए जाएं। संत विनोबा का सुझाव था कि हिंदी भाषा के लिए हिंदी नाम चलता रहे। राष्ट्र-भाषा का नाम भारती किया जाए। राष्ट्रभाषा भारती का गठन करने हेतु हिंदी भाषा का शब्द-भंडार, वाक्य-रचना और व्याकरण लिया जाए। उन्होंने और अनेक सुझाव दिए थे। उर्दू के प्रचलित ३,००० शब्द तथा अंग्रेजी के चुने हुए ४,००० शब्द शामिल किए जाएं परंतु नए शब्द संस्कृत से बनाए जाएं। इन पर आज भी सोचने की आवश्यकता है। प्राथमिकता के आधार पर राष्ट्रभाषा की समस्या को हल करना है। पूरे विश्व में बिना राष्ट्रभाषा के हमारा देश अपने को छोटा महसूस करता है। यदि कुछ समय के लिए हिंदी विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं की लिपियों में तथा रोमन लिपि में भी लिखी जा‹ तो इससे उसकी ग्राह्यता व्यापक होगी जो अंततोगत्वा राष्ट्रभाषा के रूप में उसे स्वीकार किए जाने का मार्ग प्रशस्त करेगी। योरोप के अनेक देशों में लोग अक्सर दो या तीन भाषाएं सीख और बोल लेते हैं क्योंकि हर भाषा के लिए एक ही रोमन लिपि का प्रयोग किया जाता है। क्यों न हम भी देश की समस्त भाषाओं के लिए एक ही देवनागरी लिपि का प्रयोग करें? एक लिपि के लिए प्रयास जारी रखना चाहिए, भले ही इसमें अधिक समय लग जाए। अहिंदीभाषी प्रदेशों में विरोध शायद इसलिए है

कि उनका प्रांतीय कार्य केवल उनकी मातृभाषा में चल रहा है। उन प्रदेशों में जो केंद्रीय कार्यालय हैं उनका कार्य अंग्रेजी में होता है। उदाहरण के लिए गुजरात में प्रादेशिक कार्य गुजराती में और केंद्रीय कार्य अंग्रेजी में होता है। इसी तरह महाराष्ट्र में भी कार्य किया जा रहा है।

ऐसी व्यवस्था में फिर उन्हें हिंदी भाषा की आवश्यकता ही कहां पड़ती है? अहिंदी प्रदेशों में हिंदी केवल संपर्क भाषा के रूप में उपयोग में लाई जाती है। त्रिभाषा सूत्र भी असफल हो रहा है। दक्षिण भारत के सभी प्रांतों में मातृभाषा, राष्ट्रभाषा और अंग्रेजी की शिक्षा अनिवार्य कर दी गई है परंतु उत्तर भारत के प्रांतों में केवल दो भाषाएं हिंदी और अंग्रेजी सिखाई और पढ़ाई जाती हैं। अन्य प्रांत की किसी भाषा को सीखना या सिखाना अनिवार्य नहीं है। उत्तर भारत में कुछ लोग संस्कृत भाषा की आड़ में अपनी इस कमजोरी को छिपा लेते हैं। मध्य-प्रदेश में मराठी तीसरी भाषा के रूप में आसानी से सीखी जा सकती है। पर हम अपेक्षा करते हैं कि अहिंदी प्रदेश के लोग हिंदी सीखें। मेरी राय में हम सब यह संकल्प करें कि हम कोई पड़ोसी भाषा अवश्य ग्रहण करेंगे। उसी हालत में कोई सर्वमान्य हल निकल सकेगा।

हमारा लोकतंत्र आदर्श लोकतंत्र है। यह दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। इस लोकतंत्र ने सबको पूरी छूट दी है। चिल्लाने की भी छूट है। बाहर चिल्लाओ या विधानसभा में चिल्लाओ या संसद् सदन के अंदर चिल्लाओ। आम रास्ते पर देवता की तसवीर बनाकर कमाने की छूट है और सदन के अंदर तसवीर बिगाड़ने की भी छूट है। धार्मिक चौपाई का आशय भीख मांगने की छूट है। और सदन के अंदर उस चौपाई पर बहस की भी छूट है। छवि बनाने और छवि धूमिल करने की छूट सबको है। जो सदस्य विधान सभा में या संसद् में चुनकर भेजे जाते हैं उन्हें नालायक कहने की भी पूरी छूट है। विधान सभा में जूते-चप्पल फेंकने की भी अब छूट प्रारंभ हो गई है। हमारे चुने हुए सदस्यों को बदनाम करना ठीक नहीं। लेकिन जनता की तकलीफ देखकर सदस्य चिल्लाए बिना नहीं रह सकते। जब एक सदस्य चिल्लाता है तो दूसरा देश की अच्छी हालत की तसवीर पेश करता है। दोनों को चिल्लाए बिना काम नहीं चलता। एक जोर से आवाज देता है, देश की हालत गड़बड़ है और दूसरा उससे भी जोर से चिल्लाता है, देश की हालत अच्छी है। कोई कहता है देश में गरीबी बढ़ी है। कोई फौरन जवाब देता है कि देश में अमीरी बढ़ी है। कोई कहता है देश में भ्रष्टाचार बढ़ा है, चारों तरफ फैल गया है। तो उसे यह भी सुनने को मिलता है कि अब यही शिष्टाचार हो गया है। एक तरफ महंगाई बढ़ी है की आवाज बुलंद है तो दूसरी तरफ महंगाई कम हुई की आवाज आती है। तात्पर्य यह कि किसी की भी वाणी सच नहीं है। सब एक-दूसरे को धोखा दे रहे हैं।

हमारे महान् देश के राष्ट्रीय ध्वज में अशोक का धर्मचक्र इस बात का प्रतीक है कि जीवन गतिशील है। हमारे राष्ट्र की कार्यप्रणाली के लिए 'सत्यमेव जयते' एक महान् आदर्श है। वह चक्र कालचक्र भी कहलाता है। जीवन की प्रगति का वह द्योतक है। लेकिन आज हमारे देश के जीवन में सब तरह के दुष्चक्र चल रहे हैं। आदमी की आवाज और वाणी में भी दुष्चक्र देखा जा सकता है। राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दुष्चक्र की ही प्रधानता है। यह दुष्चक्र कैसे पैदा हुआ, इतनी तेजी से यह क्यों बढ़ रहा है यह जानने की सबकी इच्छा है। कभी इस दुष्चक्र का अंत होगा भी क्या ?

वर्तमान वैज्ञानिक प्रगति की गति को आधार मानकर इक्कीसवीं शताब्दी के ताने-बाने में गुंथे हुए जीवन की कल्पना की जा रही है। कहा जा रहा है कि २१वीं सदी कंप्यूटर की होगी। 'रोबोट' सब काम करने लगेंगे। प्रत्येक वस्तु के स्थापित मूल्य बदल जाएंगे। ईश्वर जाने इक्कीसवीं सदी के अंत तक हमारे देश में और कितने विनाशकारी परिवर्तन होंगे। हमारी आवाज और वाणी टी० वी० सभ्यता के प्रभाव में न केवल विकृत होगी पर वह और भी अधिक कृत्रिम हो जाएगी। वह समय दूर नहीं जबकि किसी की सदाशयता भी संदेहों के दायरे में दाखिल होने लगेगी। इनसानियत नाम की कोई चीज ही नहीं रह जाएगी, आपस का प्रेम, सद्भाव और विश्वास क्षीण होते चले जाएंगे।

१३

विभिन्न कलाएं और उनकी आवाज

कला ही जीवन है। कला की तुलना में साधारण जीवन और मृत्यु नगण्य प्रतीत होते हैं। कला की साधना में जो आनंद कलाकार को मिलता है उसी आनंद को वह अपनी कला में प्रदर्शित करता है। जीवन के उदात्त आदर्शों से आनंदानुभूति से उत्पन्न आनंदातिरेक से कला का जन्म होता है। मूर्तियां गूंगी नहीं होतीं। चित्र बोलते हैं। चिंतन अपने सर्वोपरि स्वरूप में इन मूर्तियों में, इन चित्रों में विद्यमान रहता है। जब कोई नहीं बोलता रहता, तब ही वह सबसे अधिक मुखर रहता है। योगमुद्रा, गौतम बुद्ध की शांति मुद्रा देखने में शांत दिखती है, पर उनकी आवाज सुनाई पड़ती रहती है।

कलाकार अपने विचार, अपनी जरूरतों को दूसरों के बताने के लिए कुछ सृजन करता है। कला और सौंदर्य को परिभाषित करना आसान नहीं। फिर भी महान् कलाकारों ने कहा है कि चिरस्थापित मानवीय मूल्यों का प्रदर्शन ही कला का मुख्य उद्देश्य है। इसके माध्यम भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। इसके सृजन के लिए सृजनात्मक प्रवृत्ति, सही परिप्रेक्ष्य में किसी वस्तु को देखने की शक्ति, सौंदर्य-बोध की भावना तथा आत्मसात कर लेने का सामर्थ्य होना चाहिए। कला के सृजन के लिए ऊपर लिखे चार तत्त्व, चार सोपान जैसे हैं। महान् कलाकार लियोनार्द दी विंसी कला को प्रकृति की देन मानता था, प्रकृति और कला के अटूट संबंध का कायल था। बाइलियो, जो एक महान् कलाकार था, उसने कोशिश की थी कि कला का क्या आधार और क्या स्तर होना चाहिए। बाउम मारेटेन नामक चित्रकार ने कहा कि सांसारिक, दैहिक वासनाओं को कला के द्वारा दर्शाया जाए।

एक कलाकार जो कुछ भी सृजन करता है वह उसके अंदर की भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है। जीवन के किसी सत्य को वह अपनी रेखाओं से उजागर करना चाहता है। प्रत्येक कलाकार के अंदर एक अपरिभाषित जिज्ञासा रहती है जो उसे कलाकार बना देती है। महान् संगीतज्ञ कलाकार बिथोबिन ने कहा था

—"यह दुनिया उस राजा के समान है जो बिना चापलूसी के किसी पर भी मेहरबानी नहीं करना चाहता।" कहने का तात्पर्य यह है कि सच्ची कला स्वनिर्मित होती है, उसमें चापलूसी की गंध नहीं आती। एकदम नई कल्पना, नई अनुभूति को एक कलाकार अपनी कृतियों में व्यक्त करता है। इसके द्वारा कला को एक दिशा मिलती है। एक नई परिधि का आभास मिलता है। हमारे अनुभव गहरे और गहन बनते हैं। कलात्मक मूर्तियां जीवन में आनंद लाती हैं और जीवन की भिन्न-भिन्न अनुभूतियों से मिलन कराती हैं। कला ही सच्चे अर्थों में सतत जीने की प्रेरणा देती है। डॉ० राधाकृष्णन् ने कहा था, एक व्यक्ति जीना चाहता है। अधिक दिन तक जीना चाहता है। उसकी दीर्घजीवी होने की प्यास कभी कम नहीं होती। यहां तक कि वह जीवन की, जीवित रहने की अवधि को भी बांध लेना चाहता है, ताकि वह जीवन के रहस्यों को समझ सके। ये कलात्मक मूर्तियां लघु तथा चित्रकला मानव के जीवन को सुखमय तो बनाती ही हैं, साथ हो साथ अधिक दिन जीने की प्रेरणा भी देती हैं। इसके अलावा जीवन के उस पार के तत्त्वों की ओर इशारा भी करती हैं जिसके कारण उनके अनुभव अधिक गहरे तथा घने हो जाते हैं।

इतिहास के पृष्ठों से यह स्पष्ट है कि हड़प्पा तथा मोहन-जोदड़ो की सभ्यता हिंदुस्तान और सुमेरिया के बीच आपसी संबंध के कारण विकसित हुई थी। अलेक्जेंडर ने जब हिंदुस्तान पर धावा किया उसके बाद ग्रीक सभ्यता का प्रभाव हमारे देश पर पड़ा तथा गांधार कला का जन्म हुआ। बौद्ध तथा हिंदू की मिली-जुली शिल्पकारी के अद्भुत नमूने हमारे देश में बिखरे पड़े हैं। मुगल काल में तो वास्तव में भारतीय कलाओं का पतन ही हुआ, केवल वासना और शराब का आधिक्य हुआ।

वर्तमान समय में जो भिन्न-भिन्न देशों में कला-प्रदर्शनियां आयोजित हो रही हैं, उनका बड़ा अच्छा असर पड़ रहा है। फ्रांस, रूस व जापान में भारत महोत्सव जैसे आयोजन अभूतपूर्व माने जाते हैं। एक कलाकार जो कुछ भी सृजन करता है वह उसकी अपनी एक विशेष अनुभूति ही होती है। जीवन के किसी सत्य को वह अपनी तूलिका से उजागर करता है।

प्रत्येक कलाकार के अंदर कुछ-न-कुछ मौलिक विचारधारा रहती है। मानव-अनुभूतियों की अभिव्यक्ति कई तरीकों से की जाती है। कवि अनुभूतियों को कविता के रूप में कागज पर उतारता है। एक अभिनयकर्ता अपने अभिनय में अनुभूतियों का प्रदर्शन करता है। एक संगीतकार भिन्न-भिन्न लय तथा रागों द्वारा अनुभूतियों को दर्शाता है। उस आवाज में ऐसी सरिता प्रवाहित हो उठती है जिसे सुनकर जीवन की सार्थकता का अनुभव होने लगता है। वैसे ही एक कलाकार अपनी मूर्तियों में, अपने चित्रों में अपने सौंदर्य-बोध का ज्ञान कराता है।

ये प्रदर्शित अनुभूतियां उसी क्षण मर्मस्पर्शी बनती हैं जबकि उनको जन्म देनेवाले व्यक्ति ने भी उन अनुभूतियों को अपने मर्मस्थल से निकाला हो या हृदय से अनुभव किया हो।

प्रश्न यह उठता है कि इन कलात्मक मूर्तियों की आवाज पहचानी कैसे जाए। व्यक्ति विशेष की सौंदर्य-बोध तथा विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति से ही उनका आनंद लिया जा सकता है। संवेदनशीलता ही मुख्य आधार है। सच्ची कला में आत्मा की अभिव्यक्ति होनी चाहिए।

हमारे देश में एक से एक कलाकार हो गए हैं। जैसे—रवि वर्मा, नंदलाल दास, रवीन्द्रनाथ टैगोर, महादेवी वर्मा, एम० एफ० हुसैन, रजा आरा आदि। कई कलाकार वर्तमान समय में अपनी-अपनी कलाओं के सृजन में व्यस्त हैं। विदेश के कुछ विश्वविख्यात कलाकार निम्नलिखित हैं—माइकेल एंजिलो रोम के थे। फ्रांस के लियोनार्द दि विंसी, रोदां, पालगोगेन, वेनगाक, पिकासो, राफेल, डेगा। ये सब कलाकार अपने-अपने क्षेत्र में अद्वितीय माने जाते हैं। इनकी कलाकृतियों का सही-सही मूल्यांकन आज तक नहीं हो पाया है। इनके द्वारा बनाए गए चित्रों को देखकर उसी माध्यम से मानव अपने अंदर की ओर झांकता है, अपने को टटोलना चाहता है।

लियोनार्द दी विंसी द्वारा निर्मित मोना लिसा की पेंटिंग आज भी रहस्यमय बनी हुई है। उस कलाकार ने तूलिका के द्वारा सौंदर्य का सृजन किया है। एक साधारण नागरिक की पत्नी को बैठाकर नारी-मात्र के चिरंतन रहस्य को उसने इस चित्र में पुंजीभूत कर दिया है। सृष्टि के प्रारंभ से ही औरत के शरीर और आंसुओं को कलाकार ने खूब भुनाया है। पुरानी लकीर को छोड़कर इस कलाकार ने अपनी इस पेंटिंग में औरतों की मुसकान को दिखाया है। इस अद्भुत कलाकृति की विशेषता यह है कि आप एक खास कोण से उसके चेहरे को देखें तो एक तरफ हंसी, मुसकान दिखती है और दूसरे हिस्से में उबासी तथा मायूसी व्यथा का भान होता है।

यह मुसकान क्या है ? क्यों है ? और क्या चाहती है ? आज तक कला के पारखी भी इस रहस्य को नहीं समझ पाए। यह रहस्यमय क्यों है ? इसमें कोई वेदना छिपी है क्या ? यह वही मुसकान है जो पत्थर को भी पिघला देती है। उसमें एक ऐसा खुला आमंत्रण है जिसे कोई भी पुरुष मना नहीं कर सकता। सभी ललक-ललककर लालायित मन से पूछते हैं, तुम क्या चाहती हो ? यह हम तुम्हें दे सकते हैं क्या ?

आज तक इस मुसकान की आवाज को कोई भी नहीं समझ पाया है। उसके होंठों पर मुसकान है लेकिन गर्व और आत्मविश्वास की झलक भी स्पष्ट है। वह एक महान् संभ्रांत महिला थी। उसके चेहरे पर शालीनता विराज रही है। इस

कलाकृति के रहस्य को सुलझाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शोध भी हो रहा है। रहस्यमय नारी सौंदर्य की यह कलाकृति एक चरम उपलब्धि की प्रतीक है। वह जो परिधान ओढ़े हुए है उसमें इंद्रियजन्य सुरुचि का ऐसा उत्कर्ष दिखता है कि कोई भी श्रेष्ठतम कलाकृति से उसकी तुलना की जा सकती है। आगामी पीढ़ियों के लिए यह एक समृद्ध धरोहर है।

अजंता गुफा में जो भित्तिचित्र बने हैं वे भी कलाकारों के समर्पित जीवन के उदाहरण हैं। एक जगह दिखाया गया है कि पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के बाद गौतम बुद्ध अपनी पत्नी से भिक्षा लेने आए। अपने महल में ही आकर वे भिक्षा मांग रहे थे। उनका वह दमकता हुआ शांतिमय चेहरा, वह अद्‌भुत वैराग्य और उनके सामने खड़ी हुई उनकी पत्नी तथा पुत्र, कलाकार ने गौतम बुद्ध की आध्यात्मिक ऊंचाई दिखाने के लिए उनके पूरे शरीर के आकार को बड़ा बनाया है और उस शरीर की तुलना में यशोधरा के शरीर को छोटा दिखाया है। पुत्र तो छोटा था ही।

इस चित्र की मुखर आवाज यह है कि मानव त्याग, तपस्या तथा समर्पण से कहां से कहां पहुंच सकता है। सारी इच्छाओं, अभिलाषाओं, प्रलोभनों को जीते-जी भुलाकर छोड़ देना ही निर्वाण है। गौतम बुद्ध का यही शाश्वत संदेश है।

पंडित जवाहरलाल नेहरू, गौतम बुद्ध के चित्र को हमेशा अपने पास रखते थे। रात को सोते समय भी अपने तकिए के नीचे उस चित्र को रखकर आराम करते थे। पंडित नेहरू उस चित्र से सदैव सुनते रहते थे कि जीवन क्या है? इसका अर्थ क्या है? और जीवन कैसे जीना चाहिए? उनका हेतु-कारणवादी मस्तिष्क बुद्ध की छाया में तुष्टि का अनुभव करता था। उनका वैज्ञानिक मानवतावाद तथागत की करुणा और अहिंसा से पोषित था। पंडित नेहरू के पंचशील में भी बुद्ध-वाणी की प्रतिध्वनि स्पष्ट सुनाई देती है। १९८६ शांति वर्ष के रूप में मनाया गया था। शांति वर्ष की मंजिल बुद्ध द्वारा दर्शाए मार्ग पर चलकर ही सफल हो सकेगी। उनका आष्टांगिक मार्ग मन, वचन और कर्म में सम्यकता की ओर ले जाना था। उनका चित्र कहता है कि मेरे उपदेशों को बुद्धि से समझो, उन्हें अपने जीवन में उतारने की कोशिश करो, पवित्र जीवन बिताओ और नियमित रूप से ध्यान और समाधि लो। उससे न केवल तुम्हारे अंदर शांति रहेगी वरन् पूरे विश्व में भी शांति फैलेगी।

चित्रकारों के संग उमंगों का रंग देखते ही बनता है। कुछ पेंटिंग में सुन्दरता, सहजता के अतिरिक्त जीवन की विषमताओं और वैचारिक संघर्ष का निरूपण भी मिलता है। कलात्मक अभिरुचि के प्रति उदासीन कोई नहीं रहता। कलात्मक चित्रों तथा कृतियों का समय-समय पर प्रदर्शन होते रहना चाहिए। शहरी भीड़-भाड़ से दूर गांव का सहज-सरल जीवन, कठोर परिश्रम करती ग्रामबालाएं,

चारों ओर फैली प्राकृतिक सुन्दरता अनायास ही ग्राम्य-दृश्य को प्रकृति के अधिक निकट पहुंचा देती है। चित्रकला व्यक्ति में रागात्मक संवेदनशीलता को जाग्रत् कर उसके रूप को ग्रहण करने और उसको व्यक्त करने की क्षमता देती है। आनंद का एक सुंदरतम क्षण ग्रहण कर औरों में इसे बांट सकना कला की बहुत बड़ी उपलब्धि है। आम तौर पर उल्लास और उमंग का तत्त्व प्रत्येक चित्र में झलकता रहता है।

कौन-सी कला या साहित्य अश्लील है, यह कहना आसान नहीं। कोई सार्व-भौमिक मापदंड नहीं है। रूढ़ियां, नैतिकता व पारंपरिक विचारधारा सभी स्थान व देशकाल पर एकसमान नहीं होतीं। हमारे पूर्वजों ने जिसे अश्लील कह दिया उसे हम भी अश्लील मानें, यह जरूरी नहीं। अश्लीलता का प्रश्न तो पाठक की मानसिक स्थिति और विवेक पर निर्भर करता है। बहुत-सी महान् कलाकृतियां प्रथम दृष्टि में अश्लील लग सकती हैं, पर जीवन के कुछ ऐसे तत्त्वों का दिग्दर्शन कराती हैं जिनकी उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता। 'संभोग के बाद निद्रा', आत्मीय चुंबन, घनघोर भावावेश का आलिंगन आदि की मार्मिक अभिव्यक्ति कई चित्रों में रहती है।

पिकासो, जो स्पेन का एक महान् कलाकार था, क्यूबिस्म शैली की कला का जन्मदाता माना जाता है। वह अत्यंत प्रतिभासंपन्न कलाकार था। उसका जन्म १८८१ तथा मृत्यु १९७३ में हुई। मृत्यु के समय वह विश्व का सबसे धनी व्यक्ति था। उसके पास १,१०० करोड़ रुपए थे। उसने अपनी प्रथम पत्नी रसियन नर्तकी आल्गा का एक अनुपम चित्र बनाया था। उस चित्र में कोमलता, कमनीयता तथा नारी सौंदर्य छलकता-सा महसूस होता है। वह जीवन-भर असंतोष एवं व्यथा की अनुभूतियों से तड़पता रहा।

इसीलिए अपने जीवन के चतुर्थ अध्याय में उसने मानवीय शरीर की विकृतियों तथा मन की उलझनों को अपने चित्रों में अभिव्यक्त किया है। इसका सीधा अर्थ यह है कि चुनौतीपूर्ण, संघर्षशील जीवन का इतना कुप्रभाव मानव-शरीर और मन पर पड़ता है कि वह जर्जर हो जाता है।

पेरिस में होटल साले एक म्यूजियम है। अब उसमें उसकी सारी कलाकृतियां संजोकर रखी गई हैं। बीसवीं सदी में उसके अनुसार, कला के क्या रूप हैं, इसका अंदाज उसके जीवन के चार हिस्सों से पता चलता है। पहला 'ब्लूपीरियड' अर्थात् सर्वोत्कृष्ट कृतियां—जो कुछ भी उसने देखा और समझा उसकी झलक। दूसरा 'पीक पीरियड' अर्थात् मधुरता-सरसता का दिग्दर्शन। तीसरा 'क्लासिकल पीरियड' अर्थात् क्यूबिजम की अत्यंत आकर्षक पद्धति। चौथा मानव-शरीर-मन के विकृत रूप का दिग्दर्शन। तत्कालीन कलाकारों ने उसकी चतुर्थ भाग की कला का जमकर विरोध किया था। मानव-जीवन के असंतोष की अभिव्यक्ति भी कला

की परिधि में आती है। इस तथ्य को सबने स्वीकार किया है। यद्यपि वह सर्वमान्य नहीं है। कला अर्थात् आनंद का स्रोत यह सर्वमान्य है।

पिकासो की सर्वोत्तम कलाकृति 'ग्वेरनिका' माना जाता है। द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद युद्ध की विभीषिका का चित्रण उसने इसमें किया है। हिटलर व मुसोलिनी के फासिज्म को अपनी तूलिका द्वारा धिक्कारा है। उस कलाकृति में समाज छिन्न-भिन्न हुआ दिखता है। मानसिक आघात न केवल पुरुषों और नारियों में हुआ बल्कि सारा पशु-जगत्, पक्षियों का समुदाय भी उससे त्रसित हुआ। जीवन के सारे मूल्य ध्वस्त हुए दिखाई दिए हैं। उसके बाद मानव, पशु-पक्षी सबकी आत्माओं को कैसे शांति मिली, इसका संकेत उसमें निहित है।

माइकल एंजिलो (इटली का प्रसिद्ध शिल्पी) के बारे में मैं कुछ उदाहरण दे चुका हूं। उसकी 'पियेटा' नाम की कलाकृति तथा वर्जिन ऑफ दी रॉक भी अद्वितीय सृजन माने जाते हैं। उसकी कलात्मक स्फूर्ति अपने चरमोत्कर्ष पर है। सन् १८०६ ई० में पेरिस शहर में जीन हानरो फ्रेगोनार्ड नामक कलाकार ने बोल्ट शीर्षक में एक पेंटिंग बनाई है जिसमें एक अंधेरे कमरे में एक पुरुष एक नवयुवती से बलात्कार करना चाह रहा है। पृष्ठभूमि में मोमबत्ती की हलकी-सी पीली लालिमा लिए हुए रोशनी चमक रही है। नारी के चेहरे का वह द्वंद्व, वह बेबसी, लाचारी इतने जीवंत तरीके से अभिव्यक्त किए गए हैं कि पूरी कलाकृति सजीव हो उठती है। पुरुष की पाशविक मुद्रा तथा नारी की दयनीय लाचारी, दोनों मुद्राएं झलक रही हैं। पुरुष की आंखों में दैहिक प्यास लेकिन नारी की आंखों की घृणा व वितृष्णा उसे धिक्कार रहे हैं।

कलात्मक कृतियां जीवन की प्रखर, तीक्ष्ण अनुभूतियों की झांकी देती रहती हैं। ये कृतियां एक ही साथ यथार्थता तथा अनिश्चितता एवं ठोसपन का पर्याय बन जाती हैं। कलाकार की अंत:प्रज्ञा (सहजबोध) तथा संवेदनशीलता की झलक इन कृतियों में रहती है। बॉम गारटेन कलाकार ने कला के द्वारा विश्व की विषयासक्त पक्ष की पहचान तथा जानकारी दी है। इन सबका विशद् वर्णन संभव नहीं है। हरएक मानव के अंदर सौंदर्य-बोध का एक विशिष्ट स्तर होता है। उसी के मुताबिक वह किसी लावण्यपूर्ण वस्तु या प्राणी का आनंद लेता है। किसी-किसी व्यक्ति में यह स्तर साधारण होता है और किसी-किसी में विलक्षण होता है। यदि किसी का सौंदर्य-बोध सतही है तो महान् कलाकृति भी उसे फीकी लगेगी। यदि उसके सौंदर्य-बोध में गहराई है तो सहजबोध, संवेदनशीलता एवं दृष्टि से एकरूप होने पर ही उसकी कलाकृति का संपूर्ण आनंद प्राप्त होता है।

अजंता-एलोरा, बाघ की गुफाएं, खजुराहो, कोनार्क के मंदिर आदि ऐसे स्थल हैं जहां कलात्मक मूर्तियां तथा चित्र भरे पड़े हैं। जो भी वहां जाता है वह अपनी शक्ति के अनुसार उन चित्रों से संदेश लेता है। उन सब पुराने कलाकारों

में अमर होने की तमन्ना नहीं थी। किसी भी जगह किसी भी कलाकार का नाम नहीं मिलता। हमारे हिंदू दर्शन के अनुसार कोई भी कलाकार अपना नाम नहीं देना चाहता था। वे अपनी कलाकृति को ईश्वर के प्रति पुष्पांजलि मानते थे, जीवन को धन्य हुआ समझते थे। और आज जिसे देखिए वही अमर होने की तमन्ना लिए घूम रहा है। मामूली से मामूली कलाकार नाम तथा विज्ञापन के लिए आतुर रहता है। आज के जीवन में विज्ञापन का बड़ा स्थान है। कलात्मक मूर्तियों तथा कलापूर्ण चित्रों में मुद्राएं होती हैं। मुद्राओं की भी भाषा होती है। मौन जब शब्दातीत होकर व्यंजित होता है तब मुद्राएं बनती हैं। अपने शिशु के प्रति मां का वर्जना, कर्जना, ललकना उन्हें मुद्राओं की भाषा सिखाता है। वैसे ही यौवनावस्था में सारी मुद्राएं अपने-आप में विशेष रूप से मुखर हो उठती हैं। कुछ कलाकार केवल प्रतीकात्मक भावनाओं का ही उद्रेक करते हैं। कुछ प्राकृतिक दृश्यों में जीवन को निहारते हैं और कुछ मानव-जीवन की अनुभूतियों को ज्यों-का-त्यों वास्तविकता के साथ दिखाना चाहते हैं। उनका मत है कि वास्तविकता में ही सौंदर्य का जन्म होता है। कुछ वर्ष पूर्व उदयशंकर भट्ट की नृत्य मुद्राएं देखते ही बनती थीं। अब उनकी वे मुद्राएं कलाचित्रों में सुरक्षित हैं। सांध्य नृत्य मूर्तियां कांचीपुरम में कैलाशनाथ मंदिर में एक से एक नृत्य मुद्राएं देखकर मन प्रफुल्लित हो उठता है। भरत मुनि का नाट्यशास्त्र पढ़ने योग्य है। नाटक, संगीत और नृत्य ये तीनों कलाएं मानव के अंदर की दिव्य अनुभूतियों का दिग्दर्शन कराती हैं। तीनों कलाओं में ध्वनि का विशेष स्थान है। दिव्य भावनाओं को लेकर नृत्य की उत्पत्ति हुई। इन तीनों कलाओं में हिंदू दर्शन की झलक तो मिलती ही है, इसके साथ-ही-साथ जीवन-तत्त्वों का सौंदर्य घनीभूत लय भी उसमें सन्निहित है। मानव का अहंकार कभी नहीं जाता। फिर भी पवित्र ज्ञान तथा जीवन का आनंद पाने की ललक उसमें भी रहती है। दिव्य नृत्यों की मानसिक छटा नर्तकों की कलात्मक मूर्तियों में सदैव विद्यमान रहती है। इन पत्थरों में कलाकारों ने अपने उदात्त आध्यात्मिक अनुभूतियों को अमर बना दिया है।

मानवीय अनुभूति, जिज्ञासा, सौंदर्य-बोध तथा पैनी निगाहवाला व्यक्ति ही कला का सृजन कर सकता है। एक आम आदमी में ये सब अनुभूतियां विद्यमान रहती हैं। उन्हें जगाना पड़ता है। एक कलात्मक चित्र—'पलंग पर सोए हुए पति-पत्नी तथा दूसरे पलंग पर सोया हुआ एक छोटा शिशु'। पत्नी का ऊपर का आधा हिस्सा नग्न जिसमें उसके दो सुडौल सुंदर उरोज दिख रहे हैं, उसकी आंखें पूर्ण तृप्ति से मुंदी हुई हैं और पूरे चेहरे पर अपूर्व शांति बिखर रही है। पति का चेहरा भी शांत है पर कुछ अजीबोगरीब चिंता की रेखाएं दीख रही हैं। इस कलात्मक चित्र का संदेश प्रत्येक व्यक्ति अपनी मनोभूमि के अनुसार पाएगा।

आदर्श की प्रतीक प्रतिमाएं और उनकी आवाज—देश की आज सबसे बड़ी

बीमारी यह है कि देश के प्रति किसी के भी मन में श्रद्धा और भक्ति-भावना बहुत कम रह गई है। राष्ट्रीयता और देश-प्रेम को कोई नहीं अपनाना चाहता। हमारे देश में हर महापुरुष, उच्च विचारक के साथ यही होता है कि शहरों में, नगरों में, चौराहों पर इन लोगों की प्रतिमाएं लगा दी जाती हैं। उन्हें भगवान् बना दिया जाता है पर उनके विचार, उनके आदर्श एक कोने में पड़े रहते हैं। यह हमारे राष्ट्रीय चरित्र की विडंबना है। हम वीर-पूजा में केवल ऊपरी श्रद्धा दिखाते हैं। उन महान् आत्माओं के आदर्शों का पालन हम नहीं करते। हमारे राष्ट्रीय चरित्र की यह महान् गिरावट है कि हमारी कथनी और करनी में जमीन-आसमान का अंतर रहता है। हमारे देश में एक से एक विद्वान्, राष्ट्रभक्त तथा राजनीतिज्ञ हो गए हैं। संत तथा साधुओं की कतार तो इतनी लंबी है कि उन्हें लिखना संभव नहीं है। इन लोगों की प्रतिमाएं उनके जीवन-मूल्यों की प्रतीक हैं। उनमें से निकलती आवाज को आज की पीढ़ी न तो सुनना चाहती है और न ही सुनकर उनके संदेश को कार्यरूप में परिणत करना चाहती है। ये सब मूर्तियां खड़ी हैं, उदास होकर खड़ी हैं तथा सबके चेहरे से दुःख और व्यथा निकल रहे हैं।

मूर्तियां कभी गूंगी नही होतीं। उनकी भाषा हम नहीं समझते हैं। लेकिन समय उनकी भाषा अवश्य समझता है। और तब हमारी आंखें खुलती हैं।

गांधीजी की प्रस्तर मूर्तियां सभी प्रमुख स्थानों पर स्थापित कर दी गई हैं। वह हमारे राष्ट्रपिता थे। लेकिन आज स्वर्ग में बैठे-बैठे वे आस्कर वाइल्ड की कहानी के पात्र 'सुखी राजकुमार'-जैसे दुनिया के दृश्यों और सर्वत्र फैली हुई अनैतिकता को देखकर आंसू बहाते होंगे। लोग बजाय उनके संदेश को सुनने के केवल २ अक्टूबर तथा ३० जनवरी को उन्हें मामूली-सी श्रद्धांजलि अर्पित कर देते हैं। जीवन के किसी क्षेत्र में उनके किसी भी आदर्श या सिद्धांत को नहीं अपनाया जा रहा है। यही बरताव अन्य महान् आत्माओं के साथ भी किया जा रहा है। आज सरदार पटेल की मूर्ति से शिक्षा लेनी चाहिए—अनुशासन, देश-प्रेम तथा प्रशासन में जो शिथिलता आ गई है उसे दूर करने की। उसी तरह से अन्य महापुरुषों जैसे राजेंद्र बाबू, डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी, डॉ० अंबेडकर, पंडित जवाहरलाल नेहरू आदि की भी प्रस्तर मूर्तियों से बहुत-सी बातें सुनी जा सकती हैं तथा जीवन में उतारी जा सकती हैं। इन आदर्श पुरुषों की प्रतिमाएं इसलिए खड़ी की जाती हैं कि जनता उनकी आवाज को सतत सुनती रहे। उनके संदेशों के अनुसार जीवन तथा समाज को चलाती रहे। पर वर्तमान में ऐसा कुछ नहीं हो रहा है। आज के मनुष्य का आत्म-केंद्रित स्वार्थपरक जीवन ही उसे इन सबों की आवाज सुनने नहीं देता।

हर एक व्यक्ति की दृष्टि में किसी वस्तु को परखने के दृष्टिकोण में अंतर

रहता है। यह अंतर उसके संस्कार, ज्ञान तथा सभ्यता पर आधारित है। कनफ्यूसियस महान् दार्शनिक थे। उनका कथन है कि दुनिया में एक-से-एक सुंदर वस्तुएं हैं, प्रकृति की छटा भी है। लेकिन कुछ लोग केवल अपने पड़ोसी के टूटे हुए पैर को ही देखना चाहते हैं। यह मानव प्रकृति है। इसी दृष्टिकोण को बदलने का प्रयास करते रहना चाहिए। सुकरात एक महान् दार्शनिक थे। वे एक दिन अपने कक्ष में टंगे दर्पण में अपना चेहरा देख रहे थे। इसी बीच उनका एक शिष्य कमरे के अंदर आया और उसने पूछा कि आप अपने इस चेहरे को दर्पण में क्यों देख रहे हैं। (सुकरात बहुत कुरूप थे) सुकरात ने तुरंत जवाब दिया कि दर्पण में अपनी कुरूपता देखकर मुझे इस बात की चेतना मिलती रहती है कि मन को सुंदर बनाओ, जो तुम्हारे अधिकार की बात है। और तब ही तुम सच्चे सौंदर्य को समझ सकोगे। कोई भी व्यक्ति जब तक अपने मन में उज्ज्वल, पुनीत, परोपकारी भावनाओं को नहीं पालेगा तथा सच्चे सौंदर्य-बोध को नहीं समझेगा तब तक वह इन कलाकृतियों की आवाज को समझ ही नहीं सकता। फिर भी ये कलाकृतियां इतनी मुखर होती हैं कि किसी को भी एक क्षण के लिए प्रभावित कर सकती हैं। उनके अंतःस्थल में छिपे सौंदर्य को जगा सकती हैं। कुछ लोग दुर्गुणों तथा उन सब वस्तुओं के प्रति जो गलत होती हैं, असहिष्णु रहते हैं। ऐसे ही समूह के लोग या तो कलाकार हो जाते हैं या आदर्शवादी बन जाते हैं। कला की चेतना ऐसी अनुभूतियों में ही जन्म लेती है। मानव-सुलभ कमजोरी, खामियां तथा दुर्गुणों के प्रति सहिष्णु होना मुश्किल है। किसी के प्रति दया दिखाने के बजाय कठोरता दिखाना आसान है। किसी की गलती के लिए किसी को क्षमा कर देना मुश्किल है। लेकिन उसे दंडित कर देना आसान है। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि मनुष्य अपनी अंतरात्मा की आवाज सुने, सही तथ्यों को समझे और सही वाणी बोले तो वह दयावान् भी बन सकता है। श्रेष्ठता की ओर भी अग्रसर हो सकता है। प्रतिभा और दुष्टता कभी भी एक साथ नहीं रह सकते।

कला अपने-आप में साधन तथा साध्य है। उपयोगितावाद की बू आते ही वह कला नहीं रह जाती। कला का सृजन होते ही उसका उद्देश्य पूरा हो जाता है। कलाकार को पूर्ण संतोष होना चाहिए। उसे यह भान होना चाहिए कि उसने अपने अंदर की सर्वश्रेष्ठ संवेदनाओं को दिखाया है। कला की पूर्ववर्ती परंपरा में इसके दो उद्देश्य बताए जाते हैं। आनंद को जन्म देना तथा मानव को कुछ शिक्षा देना। कवि शेली एवं कीट्स जैसे कवियों (महान् कवियों) ने कला को आनंद का सतत स्रोत निरूपित किया है। जबकि विलियम वर्ड्सवर्थ ने कला को आनंद के साथ-ही-साथ शिक्षा का भी माध्यम माना था। परंतु आस्कर वाइल्ड जैसे चिंतक ने 'कला कला के लिए' वाला सिद्धांत प्रतिपादित किया है।

आस्कर वाइल्ड की एक प्रसिद्ध कहानी है 'हैप्पी प्रिंस'। इसमें उसने यह

प्रतिपादित किया है कि प्रस्तर मूर्ति भी मानवतावाद तथा मानवीय अनुभूतियों से पूर्ण होकर गरीबों की, शोषितों की, विकलांगों की सहायता कर सकती है। यह कहानी लाक्षणिक होते हुए भी महान् शिक्षाप्रद है। एक गांव में एक बहुत बड़ी तथा ऊंची प्रस्तर की मूर्ति बनाई गई। वह तत्कालीन राजकुमार की मूर्ति थी। उसके पूरे शरीर के भिन्न-भिन्न हिस्सों में कीमती पत्थर जड़ दिए गए थे तथा उसकी दो आंखों में दो चमकते हुए हीरे रख दिए गए थे। एक शाम एक पक्षी उस मूर्ति के निकट आराम करने हेतु बैठा। कुछ देर के बाद पानी की एक बूंद उस पक्षी के ऊपर पड़ी। पक्षी ने सोचा कि आसमान में बादल नहीं हैं; यह वर्षा की बूंद कहां से आई। थोड़ी ही देर बाद पुनः पानी की दूसरी बूंद उसके ऊपर आ टपकी। जिज्ञासावश पक्षी ने ऊपर उड़कर देखा कि मूर्ति की आंखों में आंसू हैं।

पक्षी के पूछने पर मूर्ति ने बताया कि मैं यहां खड़े-खड़े सब तरफ देखता रहता हूं। इस गांव में एक बुढ़िया है। उसे यहां के राजा ने कुछ काम करने को दिया है। वह बुढ़िया पैसों की कमी के कारण उस काम को पूरा नहीं कर पा रही है। वह दुःखी है। तुम जाकर उस बुढ़िया को यह कीमती पत्थर दे आओ। पक्षी ने जाकर उस कीमती पत्थर को उस बुढ़िया को दे दिया।

इसी तरह मूर्ति ने कई जरूरतमंदों के हाल सुनाए और पक्षी के द्वारा उसने उन सबों की सहायता की। एक दिन मूर्ति ने अपनी एक आंख में जड़े हुए हीरे को एक गरीब के पास भिजवाया। पक्षी ने उसे भी जाकर दे दिया। लेकिन जब मूर्ति ने दूसरी आंख का हीरा भी भेजना चाहा तो पक्षी ने यह कहकर मना कर दिया कि फिर आप इन गरीबों की हालत को कैसे देख पाएंगे।

इस कहानी में कितना बड़ा सत्य एवं मर्म छिपा हुआ है। नौबत यहां तक आई कि जब मूर्ति के शरीर के सारे कीमती पत्थर समाप्त हो गए, मूर्ति का केवल ढांचा रह गया तब गांव के मुखिया ने मूर्ति को निरुपयोगी समझकर गिरवा दिया। उसने कहा, इस कुरूप मूर्ति को खड़े रहने नहीं दिया जा सकता।

सर फिलिप सिडनी ने कहा है कि ब्रह्मा द्वारा सृजित वस्तुएं कांस की तरह होती हैं और कलाकार द्वारा सृजित कृतियां स्वर्णिम होती हैं। इस तथ्य को हमारे मनीषियों ने भी अपनी भाषा में इस तरह कहा है कि ब्रह्मा द्वारा सृजन किए हुए पदार्थों में केवल छः रस होते हैं—मधुर, अम्ल, लवण, तिक्त, कटु एवं कषाय, लेकिन कलाकार अपने सृजन के द्वारा नौ रसों का सृजन करता है—अद्भुत, हास्य, शांत, करुण, वीर, वीभत्स, शृंगार, रौद्र तथा भयानक। कहने का तात्पर्य यह है कि कलाकार की सृष्टि अधिक श्रेष्ठ होती है। ये नौ रस किसी न किसी रूप में आनंददायक हैं। करुण रस में भी सुख की अनुभूति उद्दीप्त होती है। व्यथा से पूर्ण भाव ही हमारे मधुरतम संगीत माने जाते हैं। कलाकार की सृष्टि सदैव सुखात्मक होती है। वह नवरसा और रुचिरा होने के कारण अधिक

उत्कृष्ट है ।

हमारी सभ्यता में ईश्वर के तीन तत्त्व सत्, चित्त, आनंद सर्वमान्य हैं । इसी अर्थ में सौंदर्य आनंद उद्भूत करता है और ईश्वर के एक स्वरूप का आभास देता है । हमारे राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण ने कला के संबंध में कहा था—"कला सुंदर को सजीव करती है । भीषण, निर्जीव, अनाकर्षक व वीभत्स को भी कला दर्शनीय तथा ग्राह्य बनाती है । कला उन तत्त्वों के विकर्षण को दूर रखती है । मानव के स्वाद और सौंदर्य की भूख कभी नहीं मिटती । परिष्कृत तथा संयमित रूप में उचित मात्रा में उसका आनंद लेना सदैव श्रेयस्कर है ।"

जीवन समग्र कला से भी अधिक महान् है । कला को उपयोग से अलग नहीं किया जा सकता लेकिन 'कला कला के लिए' वाले कलाकार इस मूलभूत सिद्धांत को भूल जाते हैं । जो कला आत्म-दर्शन की शिक्षा नहीं देती वह कला ही नहीं है । कला का एक शत्रु है जिसका नाम है अज्ञान । कला की कीमत परिभाषा से नहीं, उसके कलात्मक गुणों से आंकी जाती है ।

१४

अपराध-बोधजनित आवाज

कानून के अंतर्गत अपराधकी परिभाषा उतनी व्यापक नहीं है जितनी होनी चाहिए। अपराध की संभावनाएं तथा क्षेत्र अनगिनत हैं। चोरी, डकैती, लूटमार, हिंसा, बलवा, बलात्कार, ठगी, नकबजनी आदि कानून के तहत दंडनीय अपराध हैं। ये देश के कानूनों के विरुद्ध आचरण करने के अपराध माने जाते हैं। ऐसे लोग भले ही जोर-जोर से बोलते हैं, आगे-पीछे दंडित भी होते हैं परंतु दुःख इस बात का है कि उनमें से कितने प्रतिशत दंडित होते हैं। इसका उत्तर बहुत ही सोचनीय है। ये सब अपराध जानबूझकर किए जाते हैं। अपराध-बोध उन्हें होता रहता है परंतु उनमें से अधिक-से-अधिक लोग कानून की निगाह से बच जाते हैं और कोई विशेष दंड उन्हें नहीं मिलता, इसलिए अपराधों का सिलसिला जारी रहता है।

अपराध-बोध से पीड़ित व्यक्ति डरा-डरा तथा सहमा-सहमा-सा रहता है। अपने द्वारा किए गए अपराध के प्रति वह प्रतिक्षण सजग रहता है। अवैध हानि-कारक शराब निर्माण, नेपाली गांजे की तस्करी तथा नशीली दवाइयों का व्यापार करनेवाले डंके की चोट निर्भय घूमते रहते हैं। समाज उन्हें सहता रहता है। यह समाज का अपराध है।

उन अपराध-वृत्तियों का क्या होता है, जो मानव पाले रहता है तथा मौके-बेमौके उनका शिकार हो जाता है। छिपे-छिपे दूसरों को नुकसान पहुंचाना, दूसरों का गला घोंटना, अंदर-ही-अंदर किसी की बुराई सोचना, दूसरे के लिए गड्ढा खोदना, किसी का जानबूझकर हक मारना, ये सारे-के-सारे अपराध नहीं हैं तो क्या हैं ? इन प्रवृत्तियों से पीड़ित व्यक्ति की आवाज सामान्य नहीं रहती। उसका व्यक्तित्व उसे स्वयं धिक्कारता रहता है। वह बोलता भी है तो डरा हुआ, सहमा हुआ-सा बोलता है। एक व्यक्ति जो आत्म-प्रवंचना का शिकार है, उसकी मन:स्थिति बड़ी अजीब-सी रहती है। उसे अपराध-बोध होता ही नहीं। वह

जागा हुआ भी सोया-सा रहता है। नसकी आवाज में आत्म-विश्वास की कमी रहती है। वह खूब सोच-समझकर चौकन्ना रहते हुए संभल-संभलकर बोलता है। सहसा यदि कोई जानकार व्यक्ति उसे टोक दे या वास्तविकता बता दे तो वह अवाक् हो जाता है। उसे भागते नहीं बनता। उसके पास कोई उपाय नहीं रहता सिवाय क्षमा मांगने के या गिड़गिड़ाने के या चुप हो जाने के।

आत्म-प्रवंचना एक ऐसा अपराध है जिससे हम-आप सब त्रस्त हैं। ऐसे लोग एक काल्पनिक दुनिया में रहते हैं। आगे-पीछे ठोकर खाते हैं। कामनाओं की पूर्ति न होना ही अपराध-प्रवृत्ति की जननी है। छोटे बच्चे तथा किशोर अपनी रुचि के अनुसार कुछ चीजें चाहते हैं। न मिलने पर, किसी भी तरह उन पदार्थों को पाने का प्रयत्न करते हैं। क्रमशः अनुचित काम करके भी इच्छा की पूर्ति करते हैं और साथ ही उनके अंदर अपराध-भावना भी जन्म लेती रहती है।

कुछ किशोर जन्मांतरीय संस्कारों के कारण अपराधी प्रवृत्ति के होते हैं। अर्थात् पूर्वजन्म के फल उनपर हावी रहते हैं। कुछ बालक अपने मां-बाप के उदासीन रवैए से अप्रसन्न रहते हैं।

एक पिता के चार बच्चे हैं; यह स्वाभाविक है कि उन पुत्रों में से किसी एक को पिता अधिक चाहे और किसी दूसरे की अवहेलना करे। जिस बालक की अवहेलना की जाती है वह अपनी इच्छाओं की पूर्ति करने के लिए एक अजीब रवैया अपनाता है और वह ढीठ व निर्भीक हो जाता है। निरपेक्ष रूप से नहीं कहा जा सकता कि अपराध-प्रवृत्ति आम आदमियों में क्यों जन्म लेती है। जहां तक बालकों का प्रश्न है, शालाओं में गुरु-शिष्य-संबंध यदि कटु हुए तब बालक में हीन भावना पैदा होती है और वह अपने को अन्य तरीकों से श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए जुगाड़ करता है।

आमतौर पर अशिक्षा, बेरोजगारी, आर्थिक संकट, भौतिकवाद का आकर्षण, जो पश्चिमी सभ्यता की देन है, ये सब मिलकर एक किशोर को बाध्य करते हैं कि वह अपनी जरूरतों की पूर्ति किसी भी तरह करे। हर एक इनसान में अपराध करने के कारण अलग-अलग होते हैं। कुछ तो ऐसे भी उदाहरण मिलेंगे जहां बच्चे अपराध में पैदा होकर अपराध में ही जीते हैं तथा उनका लालन-पालन भी उसी माहौल में होता है। ऐसे बच्चे अपराध-बोध से सदैव ग्रस्त रहते हैं और उन्हें जब यह बताया जाता है कि वे गलत रास्ते पर हैं तो सहसा उन्हें विश्वास ही नहीं होता।

अपराध करनेवालों का विभाजन निम्न प्रकार से किया जा सकता है—महिला वर्ग, बाल अपराधी तथा किशोर अपराधी, पेशेवर अपराधी, गुंडे तथा असामाजिक तत्त्व और अंत में सफेदपोश अपराधियों की दुनिया।

वर्तमान समय में महिला जगत् में भयंकर उथल-पुथल मची हुई है, कालगर्ल

की दुनिया, महिला जासूसी, दैहिक व्यापार तथा बड़े-बड़े परिवारों की संभ्रांत महिलाओं का स्वतंत्रता के बारे में गलत विचार। दैहिक व्यापार को लेकर जो अपराध हमारे देश में हो रहे हैं उन्हें नई पीढ़ियों का करिश्मा ही माना जाएगा। आज का समाज ही नारियों को नारीत्व से भ्रष्ट कर रहा है। वर्तमान सामाजिक संरचना कुछ ऐसी विश्रृंखलित हो गई है कि नारियों को लोग केवल भोग का ही विषय समझते हैं। हमारे देश में आर्थिक समृद्धि उतनी नहीं है जितनी पश्चिम के देशों में है। फिर क्या कारण है कि पश्चिमी देशों में यौन-अपराध और अधिक तीव्रता से बढ़ते जा रहे हैं। इसका एकमात्र कारण है कि वहां के लोगों में एक अनैतिकता तथा अशांति का वातावरण है। हमारे देश में भी नैतिक पतन इतना हो गया है कि हर स्तर पर, हर क्षेत्र में जुठाई पनप रही है। आदर्श जीवन नाम की अब कोई चीज ही नहीं है। यदि है भी तो केवल दूसरों को बताने व समझाने के लिए। स्वयं अपने जीवन में उन आदर्शों को कोई नहीं उतार रहा है। पूछा जा सकता है कि आखिर इस निरंतर बढ़ती हुई अपराध-प्रवृत्ति को रोकने का कोई उपाय है क्या ?

सेना का एक सेवा-निवृत्त ऑफिसर यदि धोखेबाजी के लिए गिरफ्तार होता है तो क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है ? यह बंबई की एक सत्य घटना है कि कुछ लोगों ने इस गिरफ्तारी को रहस्यमय कहना शुरू कर दिया था। लेकिन सचाई कुछ और है। पूछताछ के समय पारिवारिक सूत्र, जिसने अपनी पहचान न बताने की इच्छा व्यक्त की है, कुछ लोग बोल रहे हैं, दस्तावेज कुछ और बोल रहे हैं, सचाई कुछ और है तथा संबंधित अधिकारी मौन साधे हुए हैं। आखिर क्यों ? क्या वह अधिकारी अपराध-बोध की अनुभूति से दबा हुआ है ? या उसकी आवाज दबा दी गई है ? यदि वह अफसर सचमुच अमेरिका यूनिवर्सिटी का दौरा करने और किसी पद के लिए प्रयास करने जा रहा था तो उसने वैसा बयान क्यों नहीं दिया ? उसने अपने दस्तावेज क्यों नहीं दिखाए ? भारत की न्यूट्रियिल पावर्ड सब मेरिव प्रोग्राम के दस्तावेजों की तस्करी की कोशिश करने के आरोप में उसे गिरफ्तार किया गया है। सहार अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे पर उसकी गिरफ्तारी उस समय हुई जब वह न्यूयार्क जा रहा था। यह एक ऐसी घटना है जिससे अपराध-बोधजनित आवाज निकलती ही नहीं। अफसर की आवाज दबा दी जाती है।

किशोर अवस्था के बालकों द्वारा किए गए वे सभी व्यवहार जो कानूनी ही नहीं वरन् किसी भी दृष्टि से समाज तथा व्यक्ति के लिए अहितकर हों, किशोर अपराध की सीमा में आते हैं। किशोर अपराध की सीमारेखा अब स्कूलों की चहारदीवारी से भागकर सिनेमा देखना, अध्यापकों के साथ अभद्र व्यवहार करना, परीक्षा में असफल होने पर आतमहत्या करने की कोशिश करना, आपस

में मारपीट करना, बीड़ी-सिगरेट पीना, छोटी-मोटी चोरी करना, रेल या बस में बिना टिकट यात्रा करना, छोटे-मोटे नियमों का उल्लंघन करना एक साधारण-सी बात हो गई है। इस प्रवृत्ति का विस्तार द्रुत गति से हो रहा है। मादक तथा नशीले द्रव्यों का सेवन, यौन-अपराध, तस्करी इतने होने लगे हैं कि समझ में नहीं आता कि नवयुवकों और नवयुवतियों को हो क्या गया है? समाज की सारी परंपराएं, सारे अच्छे संस्कार लुप्त हो चले हैं।

इन किशोरों के लिए सुधार-गृहों की व्यवस्था की गई है। लेकिन सुधार-गृहों का माहौल न केवल सोचनीय है वरन् दयनीय भी है। वहां पर बालक जा कर सुधरने के बजाय और अधिक बिगड़ जाता है। इन गृहों में अपराध-प्रवृत्तियां जाग्रत् की जाती हैं। इन सुधार-गृहों के बारे में काफी कुछ छपता रहता है। पर आज सारा समाज ही अपराध-बोध से पीड़ित है। सुधार-गृहों में होनेवाली हरकतों की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। यह एक अपराध नहीं है तो और क्या है? पूछा जा सकता है कि आखिर इस निरंतर बढ़ती हुई अपराध-वृत्ति को रोकने का कोई उपाय है? मेरी राय में इसका एकमात्र इलाज हमारे पूर्वजों की रहन-सहन की प्रणाली में निहित है। उस ओर पुन: जाना पड़ेगा। त्याग तथा संयम में ही जीवन की सार्थकता है। भोग में नहीं है। इस तथ्य को परिवार से लेकर स्कूल-कॉलेज तथा समाज में सर्वत्र बताना पड़ेगा और उसको कार्यरूप में परिणत करने के लिए ठोस कदम उठाने पड़ेंगे। आज से कुछ दशक पूर्व हमारे जीवन के दो प्रमुख आधार माने जाते थे—देह और गेह। देह के प्रति अब आकर्षण इतना बढ़ गया है कि आत्मा की कोई परवाह ही नहीं करता। जहां तक गेह का प्रश्न है, सगे-संबंधियों के प्रति मोह अपनी चरम सीमा पर है। लोग इस जीवन के लिए नहीं, अगली तीन पीढ़ियों के लिए संपदा एकत्रित कर मरना चाहते हैं और इसी पृष्ठभूमि में सारा समाज अपराध की भावना से ओत-प्रोत है। यही एकमात्र कारण है कि अनैतिकता भी फैल रही है।

वर्तमान समय में अपराध अनुसंधान के जितने तकनीकी पहलू हैं सब पर विचार हो रहा है। लेकिन सारे अपराध चारों तरफ नित्यप्रति बढ़ते ही जा रहे हैं। मेरी मान्यता है कि आज का सिनेमा जगत्, ब्लू फिलम तथा राजनीतिक दूषित वातावरण इसके मुख्य कारण हैं। एक विद्यार्थी इन फिलमों में जैसी हिंसा, यौन-अपराध, चोरी, नकबजनी, लूट आदि का दृश्य देखता है तो वह उन्हें अपनाना चाहता है। बिना किसी परिश्रम के किसी बैंक को लूटकर लाखों रुपए का मालिक बनना चाहता है।

अपराध विज्ञान के साहित्य में इन सब तत्त्वों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण मिलता है। समाजशास्त्री भी किसी-न-किसी अपराध-भावना से अछूता नहीं रह गया है। यह सभी मानते हैं कि अपराध-वृत्तियों का जन्म बचपन में होता है।

मानवशास्त्रियों का कथन है कि अपराध का संबंध वंशानुगत शारीरिक बनावट एवं जातिगत विशेषताओं से है। जिसकी जैसी भावना तथा आकांक्षा रहती है उसी के अनुसार बुद्धि भी बन जाती है। इस उम्र में बुद्धि अपरिपक्व होती है। उसे सही मार्गदर्शन तथा सही वातावरण चाहिए।

कुछ समय पूर्व कलकत्ता में एक स्कूली बच्चे ने अपने सहपाठी और घनिष्ट दोस्त की जिस प्रकार से हत्या की, वह किशोर-अपराध के इतिहास में एक अपूर्व घटना है। आखिरकार किन हालातों के कारण सत्रह वर्ष का किशोर शांतन मित्रा ने अपने उस दोस्त सुमित चटर्जी को अपने घर में बुलाकर, उसे धोखा देकर हत्या की, जबकि वह उसे बेहद प्यार करता था। दोनों ही बच्चे अच्छे परिवार से संबंधित थे। परिवार के सदस्य भी उनमें किसी प्रकार का मानसिक दोष या विकृति नहीं देखते थे। दिसंबर, १९८७ में कटक (उड़ीसा) में तीन स्कूली बच्चों ने अपने ही बीच के दोस्त की इसलिए हत्या कर दी कि मृतक बच्चे ने अपनी मां के चुराए जेवरात के बदले में एक सौ रुपए की मांग की थी। इसी तरह से थोड़े से पैसों के लिए किशोरावस्था वाले चाहे जिसकी भी हत्या कर देते हैं। मानव-जीवन की पवित्रता का उन्हें कोई ज्ञान नहीं कराया जाता। इन उदाहरणों से यह प्रतीत होता है कि इन बच्चों में संस्कार की तथा अच्छे वातावरण की कमी थी। हम जब बच्चे थे तब हमारी नानी, मां तथा पिताजी आदि ऐसी कहानियां सुनाते रहते थे कि क्या सही है और क्या गलत है। आदमी भगवान् का रूप है। और धीरे-धीरे इन सब तथ्यों का बोध होता चला जाता था। वातावरण उन दिनों दूषित नहीं था। आज की तरह गंदी-गंदी, मारकाट, हिंसा आदि से भरी फिल्में नहीं देखने को मिलती थीं। गंदी फिल्मों का यह विनाशकारी परिणाम है कि आज किशोर मारकाट तथा धोखाधड़ी में विश्वास करके उसमें रुचि लेने लगते हैं। आज परिवार में, समाज में असंतुष्टि का बोलबाला है। असंतोष का संबंध मन से जुड़ा होता है। बालक का मन जितना कमजोर होता है वह उतना ही अधिक असंतुष्ट रहेगा और अपराध की तरफ आकृष्ट होगा। मन को किस तरह प्रफुल्लित तथा ताजा रखें, यही मुख्य विषय है। दुःखी, निराश, असंतुष्ट मन सदैव अपराध की ओर प्रवृत्त होता है तथा अपराधबोध-जनित वाणी भी बोलने लगता है।

सन् १९८८ में समाज में अपराध-बोध की भावना से पीड़ित लोगों की संख्या इतनी अधिक हो गई थी कि किसी फिल्म डायरेक्टर को 'आइए साथ-साथ चलिए' नामक फिल्म बनानी चाहिए थी। दूसरा तरीका यह है कि 'खुद घूस खाइए तथा सबको खाने दीजिए' यही सिद्धांत आजकल कारगर हो रहा है। सभी लोग उत्सुक हैं ऐसे अपराधियों के समूह में सम्मिलित होने के लिए। वहां पूरा संरक्षण है तथा पूरी निगरानी रखी जाती है कि कोई किसी पर शक न करे। एक-दूसरे को संदेह

की निगाह से न देखा जाए। वहां पर सभी लोग जानते हैं कि क्या हो रहा है? क्यों हो रहा है? और यदि किसी को कुछ मालूम भी हो जाए तो उसकी आवाज फौरन दबा दी जाती है। इसीलिए तो सबकुछ जानते-समझते हुए भी वे आवाज नहीं निकालते, बल्कि धीरे-धीरे उस गिरोह के सदस्य बन जाते हैं। आज देश में यही हो रहा है। जो जितना चालाक है वह उतने ही अपराध करने के लिए तत्पर रहता है। उसके सब तरीके सभ्य माने जाते हैं। और जब उसकी कलई खुलती है तो वह बजाय अपराध-बोध दिखाने के जीवन की लाचारी बताने लगता है। अपराध-बोध की आवाज को आत्म-सुधार के लिए कोई नहीं सुन रहा है। समाज में अपराध ही अपराध का वातावरण है।

वर्तमान समय में नारी स्वतंत्रता आंदोलन, महिला विकास समिति, महिला सुरक्षा समिति, दहेज प्रतिबंधक संगठन आदि की ध्वनियां चारों तरफ उठती रहती हैं। लेकिन सचमुच नारी स्वतंत्र हुई है क्या? उसका अपना स्वयं का कोई अस्तित्व निर्मित हो पाया है क्या? अपने पैरों पर वह खड़ी हो सकी है क्या? मेरी तो यह धारणा है कि वर्तमान समय में समाज में नारियों का जीवन और अधिक असुरक्षित हो गया है। परिवारों का आर्थिक ढांचा चरमरा रहा है। महिलाएं शिक्षित होकर नौकरी के लिए भाग-दौड़ कर रही हैं। और उस भाग-दौड़ में उन्हें नाना प्रकार की अपराध-प्रवृत्तियां आ घेरती हैं। उस अपराध-बोध से ग्रसित होकर महिलाएं सुखमय जीवन नहीं बिता सक रही हैं। उन्हें कहीं भी शांति नजर नहीं आती। उनकी आवाज उन्हीं तक रहती है।

समाज में कालगर्ल का एक नया धंधा विकसित हुआ है। यह पूरे महिला वर्ग को अनैतिकता की ओर ले जा रहा है। ऐसी नवयुवतियों में अपराध की भावना जन्म लेती है और वे उस भावना को दबाने के चक्कर में अन्य कई गलतियां कर बैठती हैं। यथार्थ में आज का महिला वर्ग चौराहे पर आ खड़ा हुआ है। पारिवारिक जीवन में उथल-पुथल, समाज में हो-हल्ला तथा चरित्र-हनन एक साधारण घटना मात्र माना जा रहा है। आज की नारी को समाज में कोई प्रतिष्ठा नहीं मिल पा रही है। बड़े-बड़े विकसित समाज में महिलाएं जासूसी जैसे काम में मन लगा रही हैं। यह केवल इसलिए है कि विदेशी महिलाएं इस कला में खूब नाम कमा रही हैं। यह तय है कि महिलाएं अब हमारे देश में भी जासूसी करने लगी हैं। इस पेशे में लगी हुई नारी का पूरा ढांचा बदल जाता है। उनकी आवाज कितनी बिखरी-बिखरी, बनावटी तथा सहमी-सी रहती है, उनके व्यवहार में चालाकी, चतुरता, वाक्पटुता सतह में आ जाती है। बनावटी हाव-भाव, भृकुटि संचालन तथा झूठी हंसी उनके अंदर के अपराध-बोध को बिना उनके जाने बाहर निकालती रहती है।

नारी को लेकर समाज में एक दु:खद अंतर्द्वंद्व चल रहा है। वह आगे-पीछे

विस्फोटक होनेवाला है। आज के माहौल में महिला का पुरुष वर्ग के ऊपर हावी होना आश्चर्य की बात है। सामूहिक परिवार नष्ट हो चुके हैं। कुछ दशक पूर्व शादियां पवित्र संबंध के आधार पर होती थीं लेकिन अब उन्होंने ठेके का रूप ले लिया है। शुचिता, पवित्रता की साकार रूप नारियां पहले गृहलक्ष्मी के रूप में पूजी जाती थीं और कहा जाता था कि जहां नारी की पूजा की जाती है ऐसे परिवारों में देवताओं का वास होता है। लेकिन आज पारिवारिक कलह अपनी चरम सीमा पर है। समझ में नहीं आता कि नारियां इतनी विचलित क्यों हो गई हैं। नई पीढ़ी की शिक्षित नवयुवतियों में कुछ एक अजीब-सी अपराध-बोध की भावनाएं पनपती रहती हैं। वे अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए कुछ भी करने को लालायित रहती हैं।

पेशेवर अपराधियों में अपराध-बोध की कोई भनक भी नहीं रहती। चार्ल्स शोभराज की आवाज और वाणी भले ही आपने न सुनी हो परंतु उसके बयान आपने अवश्य पढ़े होंगे। उन बयानों में उसकी धूर्तता तथा छल-कपट का कोई अंदाज ही नहीं लगता। जो पेशेवर अपराधी होते हैं उनका सारा विवेक, सारी सचाई बार-बार अपराध करते रहने के लिए उन्हें बाध्य करती है। ऐसे व्यक्तियों में विवेक नाम की चीज मृतप्राय हो जाती है। समाज में ऐसे लोग कुछ भी कुकृत्य तथा जघन्य कृत्य करने के लिए हर क्षण तत्पर रहते हैं। आखिर कोई व्यक्ति पेशेवर अपराधी बनता कैसे है ? शुरू-शुरू में महज लाचारी के कारण वे अपराध करना प्रारंभ करते हैं। लेकिन धीरे-धीरे यह उनका स्वभाव बन जाता है। सरकार के पास ऐसे वर्ग के अपराधियों के लिए कोई विशेष असरकारक कानून नहीं हैं। वे आमतौर पर साधारण अपराधी की तरह सामान्य प्रक्रिया से दंडित होते हैं और दस में से आठ बार साफ-साफ छूट जाते हैं। यही कारण है कि समाज में अब पेशेवर अपराधी मिलने लगे हैं। आज का विद्यार्थी ऐसे पात्रों की जीवनी को पढ़कर ही चार्ल्स शोभराज बनने की कोशिश करता है। वह समझता है कि यदि वह पकड़ा भी गया तो छूट जाएगा। अभिभावकों को चाहिए कि वे अपने बच्चों को चार्ल्स शोभराज बनने से रोकें।

असामाजिक तथा गुंडा तत्त्वों का भी जन्म हमारी गलतियों के कारण होता है। कोई भी नवजवान वर्तमान माहौल में अपने को चाहे जो कुछ भी कर लेने के लिए स्वतंत्र समझता है। राजनीतिक दांव-पेच, संस्कारविहीन समाज, अनैतिकता का वातावरण उसे संरक्षण प्रदान करते हैं। सत्ताधारी वर्ग के लोग, तथाकथित सामाजिक कार्यकर्ता एवं समाज के प्रबुद्ध वर्ग सबके सब किंकर्तव्यविमूढ़ होकर यह सारा विनाश देख रहे हैं लेकिन ठोस असरकारक कदम कोई नहीं उठा पा रहा है। ऐसे गुंडा तत्त्व किसी भी युवती का शील-हरण कर देते हैं, बसों में आग लगा देते हैं तथा अच्छे-से-अच्छे आदमी को डराकर रखते हैं। जब हमारा

समाज ही अपराध-बोध की भावना नहीं सुन रहा है तो अंतिम नतीजा क्या होगा यह सोचने की बात है।

संघर्ष, चुनौती, महंगाई एवं पाखंड, धोखा इन सबकी आवाजें मनुष्य को निराश कर उसे आत्महत्या की ओर अग्रसर करती हैं। किसी भी मनुष्य को इस तरह की आवाजें निकालते सुनकर सगे-संबंधी तथा प्रियजनों को सतर्क हो जाना चाहिए। अपराध-बोध की भावना जब मस्तिष्क में छा जाती है उसी क्षण से मानव आत्महत्या की सोचने लगता है।

किसी भी आदमी के मानवोचित गुण उसी समय निखरते हैं जिस समय कि वह अपने अंदर की आवाज को सुनता है तथा उसके अनुसार कार्य करता है। इनसान को हर कदम पर क्या सही है और क्या गलत है, इस पर सोच-विचार करते रहना चाहिए। उसी मनोभूमि में वह अपने मनुष्यत्व को कायम रख सकता है।

प्रारंभिक अवस्था में अपराध-बोध की भावना यदि प्रबल हो उठे तो हृदय-परिवर्तन संभव है। यह वही क्षण है जब विवेक की आवाज आदमी को कचोटती है और वह सुधर जाता है।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड का कहना है कि अपने-आपमें अपराध को महसूस करना एक बात है और दूसरों द्वारा अपराध-बोध को महसूस करना दूसरी बात है। उनकी एक पुस्तक 'पैंसंस ऑफ दी माइंड' इसी सिद्धांत को प्रतिपादित करती है। पहले प्रकार में आदमी की अंतरात्मा की आवाज आती है और दूसरे प्रकार में सद्बुद्धि जागती है। बुद्धि और विवेक दोनों कार्यरत हो जाते हैं। एक किशोर पंद्रह या सोलह वर्ष की उम्र में स्वाभाविक रूप से हस्तमैथुन करता है। उसे आनंदानुभूति होती है। वह इस प्रक्रिया को किसी भी हालत में अपराध नहीं मानता लेकिन जब उसे दूसरे लोग बताते हैं कि इस आदत से उसकी तंदुरुस्ती बिगड़ जाएगी तब वह सोचने के लिए मजबूर हो जाता है। उसकी सद्बुद्धि जागती है और वह उस आदत को धीरे-धीरे छोड़ देता है। चिकित्सा जगत् में हस्तमैथुन को एक स्वाभाविक प्रक्रिया के रूप में माना जाता है। अधिक समझाने-बुझाने पर वह किशोर व्यर्थ ही अपराध-बोध का शिकार हो जाता है। अपने-आपको हीन समझने लगता है तथा उसका आत्मविश्वास कम हो जाता है। ऐसे अपराध-बोध की जागृति से उस किशोर का केवल नुकसान ही होता है। इस पुस्तक में लेखक ने अपराध-बोध कैसे पैदा होता है, कैसे विकसित होता है तथा उसके प्रतिफल क्या होते हैं, इस सब पर विस्तृत चर्चा की है।

मनोवैज्ञानिक जगत् में अपराध का क्षेत्र न केवल व्यापक है वरन् अत्यंत जटिल भी है। एक संवेदनशील व्यक्ति के मस्तिष्क में अपराध-बोध की प्रतिक्रिया गंभीर हो सकती है। यदि एक विवाहित नारी अपने पति से संभोग करते समय

अपने प्रेमी की याद करती रहे तथा यह सोचे कि वह उसी प्रेमी से संभोगरत है तो ऐसी नारी का अपने पति से तनिक भी मन-मुटाव होने पर क्या परिणाम होगा, यह सोचने की बात है। सिवाय तलाक के वह नारी और कुछ दूसरा सोच ही नहीं सकती। क्योंकि उस नारी का अपने प्रेमी पर इतना विश्वास है कि उसे अपराध-बोध आता ही नहीं। परिस्थितिवश वह अपने प्रेमी से अलग है। हू-ब-हू यही मानसिक अवस्था उस पति की रहती है जो अपनी पत्नी से संभोग करते समय अपनी प्रेमिका की याद करता है और मानसिक रूप से उस संभोग को अपनी प्रेमिका के साथ ही मानता है। इन दोनों उदाहरणों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण दिलचस्प है।

अपराध-बोध की भावना की प्रबल ठेस से प्रेरित होकर एक साधारण व्यक्ति कैसे महान् बन जाता है इसका एक उदाहरण मैं दे रहा हूं। जोसेफ कोनार्ड द्वारा लिखित 'लार्ड जिम' की जीवनी अंग्रेजी साहित्य में एक अनूठी अनुपम रचना है। जिम एक साधारण मानव था। समुद्र के किनारे एक गांव में रहता था। बचपन से ही उसकी यह इच्छा थी कि वह एक नाविक होकर दुखी तथा दुर्घटना से पीड़ित लोगों की सहायता कर सके। जब वह २० वर्ष का था तब उसने समुद्र में एक जहाज को डूबते देखा था। लोग विलाप कर रहे थे, चिल्ला रहे थे, अपनी-अपनी जान के लिए व्याकुल हो रहे थे। लेकिन जिम उस समय उनकी सहायता के लिए न जा सका। चाहते हुए भी वह नहीं गया। उसी दुर्घटना में जहां पर वह खड़ा था वहां से कुछ दूरी पर समुद्र में एक महिला डूब रही थी। वह उस डूबती हुई महिला की आवाज को सुनकर व्याकुल हो गया। लेकिन फिर भी उसे बचाने के लिए समुद्र में नहीं कूदा। पता नहीं क्यों, जिम उस क्षण उसकी सहायता के लिए क्यों नहीं जा सका। लेकिन बाद में जिम ने महसूस किया कि उसने नैतिकता का तकाजा तथा इनसानियत के तकाजे का अपमान किया है। उसे महसूस हुआ कि उसकी चिरसंचित आकांक्षा की पूर्ति नहीं हुई। उन सब भावनाओं का निरादर करके वह अपने को बहुत बड़ा अपराधी समझने लगा। लेकिन इसका चमत्कारिक असर जिम के हृदय पर हुआ। इसके बाद उसने जीवनपर्यंत दुःखी लोगों की, जरूरतमंदों की सहायता करने की ठान ली। वह धीर-स्थिर गंभीर और कर्तव्य-निष्ठ हो गया। उसने शादी तक नहीं की तथा मानव-सेवा को ही उसने अपना धर्म बना लिया। उसने इतनी महान् सेवाएं कीं कि उसके जीते-जी लोगों ने उसे लार्ड जिम की उपाधि से विभूषित किया। वह स्वयं को प्रताड़ित करता था और अपनी उस भूल के पश्चात्तापस्वरूप सब यातनाएं सहता था। उसके जीवन का सबसे उज्ज्वल पक्ष था उसका आत्मसंतोष।

अपराध-निवारण परिषद् की स्थापना हो रही है। पर अपराधों की संख्या बराबर बढ़ती जा रही है, अपराध-निरोधक सप्ताह मनाए जाते हैं, अपराध-

निरोधक समिति का गठन किया जाता है लेकिन समझदार लोग इस समिति का सदस्य नहीं बनना चाहते। इसके पीछे क्या कारण है ? यदि रक्षक ही भक्षक बन जाए फिर क्या होगा ? पुलिस की आम शोहरत उतनी अच्छी नहीं है जितनी कि चाहिए। किसी सप्ताह विशेष में अपनी पहचान करने के लिए वे कुछ अधिक जोशीले तथा संयमित बन जाते हैं परंतु मौका मिलते ही अपराधियों को संरक्षण देने में नहीं चूकते। पुलिसकर्मियों की छवि ऐसी धूमिल हो गई है कि एक विवेक-पूर्ण चतुर नागरिक उनसे कतराता है। पता नहीं किस समय किस रूप में पुलिस उस समझदार व्यक्ति को फंसाकर उसकी समझदारी का मखौल उड़ाने लगे। पुलिसकर्मियों का एक ऐसा जाल बिछा हुआ है कि किसी की समझ में नहीं आता।

बड़े शहरों में प्रति बीस मिनट में एक अपराध होता है। उन शहरों में जहां औद्योगीकरण अधिक है, वहां पर गुंडा तत्त्व मनमानी कुछ भी करते हैं।

बंबई शहर में स्थानीय माफिया का गिरोह बड़े पैमाने पर सक्रिय है। अंतर्राष्ट्रीय जगत् में भी प्रसिद्ध माफिया समुदाय सुने जाते हैं। इटली तथा अमेरिका में इनके कारनामे इतने प्रसिद्ध हो गए हैं कि उनकी नकल अब हमारे देश में भी होने लगी है। इन गिरोहों के सदस्यों में अपराध-बोध नाम की कोई चीज नहीं होती। उन लोगों की आचरण संहिता अपने किस्म की अनूठी होती है। गिरोह के किसी सदस्य के पकड़े जाने पर वह न तो अपनी पहचान बताता है और न ही उस स्रोत को बताता है जिसने उसका उपयोग किया है। भले ही उसे जान की बाजी लगानी पड़े। मरते दम तक वह चुप रहता है। आखिर वे सदस्य इतने कट्टर क्यों होते हैं ? इतना जघन्य अपराध करते हुए भी उनकी आत्मा, उनके अंदर की आवाज उन्हें कभी भी क्यों नहीं झकझोरती ? ऐसे लोगों को शिक्षा देने के लिए नियमित स्कूल चलाए जाते हैं। उन्हें रुपए-पैसे का इतना लोभ दिया जाता है कि वे उस चकाचौंध में बिलकुल विवेकशून्य हो जाते हैं। इस गिरोह के मालिक समाज के बड़े-बड़े धनवान लोग होते हैं। यह एक जाल है जो किसी को भी फंसाकर उसे नष्ट कर सकता है।

बंबई शहर में 'सुपारी' देने की एक प्रथा है। उस सुपारी को ले लेने से यह समझा जाता है कि जो कुछ भी आपस में बातचीत हुई है वह पक्की हो गई और जो कुछ भी काम कराना है वह निश्चित समय पर हो जाएगा। यह धंधा इतने परिष्कृत रूप से चल रहा है कि अच्छे-से-अच्छे लोग इन व्यक्तियों को नहीं पह-चान पाते कि आखिर वे किस समय किसका क्या अनर्थ कर दें।

बड़े-बड़े शहरों में ट्रक ड्राइवर किसी भी आदमी को दस हजार रुपया पाने के लिए सड़क पर अपनी गाड़ी के पिछले पहियों में कुचलकर मार सकते हैं। उनका कहना है कि यदि पकड़े भी गए तो 'रेस एंड नेग्लीजेंट' ड्राइविंग के तहत केवल तीन माह की सजा और तीन सौ रुपया जुर्माना ही तो होगा। आज से चार-

पांच दशक पूर्व ऐसे माफिया तथा ऐसे ट्रक ड्राइवर तथा ऐमे गुंडा तत्त्व समाज में नहीं पनपते थे। लेकिन अब यह आम बात हो गई है। समाज किधर जा रहा है, समझ में नहीं आता। एक साहित्यिक दूसरे साहित्यिक की रचना तथा उसके गुणों का सम्मान न करे तो यह एक सामाजिक अपराध है।

एक आम आदमी की बुद्धि गलत संपदा अर्जन तथा पाशविक शक्ति के प्रति जितनी मात्रा में जागरूक होती है उसी अनुपात में सभ्यता का विकास माना जाता है। इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि मानव-समाज की प्रगति ही सभ्यता की प्रगति है।

१५

पशु-पक्षी एवं जीव-जंतुओं की आवाज

मानव-जगत् में पशु-पक्षी एवं जीव-जंतुओं की आवाज का उतना ही महत्त्व है जितना कि मनुष्य के जीवन में मनुष्य की आवाज का। उनकी आवाज अधिक प्रभावशाली, स्वाभाविक और संवेदनशील होती है। उनमें सहिष्णुता, भाईचारा, दया, हम-आपसे अधिक है। वे न तो अन्याय करते हैं और न ही अन्याय सहते हैं। दूसरों को नुकसान पहुंचाने के इरादे से मानव जो अपने अंदर अशांति पालता है, वैसी अशांति पशु-पक्षी के जगत् में कल्पना के बाहर है। पशु-जगत् में प्रत्येक पशु अपने बीच में किस तरह एक-दूसरे को समझते हैं या समझाते हैं वह एक गूढ़ भाषा है जो आवाज के रूप में बोली जाती है। परिंदे, पक्षी आपस में कैसे अपनी अनुभूतियों का आदान-प्रदान करते हैं, यह एक मार्मिक विषय है।

पशु-पक्षी और जीव-जंतु जगत् की आवाज है—हमारी रक्षा करो, हमारे पीने के पानी की व्यवस्था करो। शिकारियों से हमें बचाओ तथा जो अभयारण्य बनाए गए हैं उनकी सुंदरता को नष्ट मत करो। हमें भी ठीक तरह से जीने दो, तो तुम्हारा भी भला होगा और प्राकृतिक पर्यावरण दूषित न होने पाएगा। जंगल और हरियाली में ही हम रहते हैं। पानी तथा जल-विहार हमारे लिए अत्यंत आवश्यक है। जंगलों को निर्दयता से न काटा जाए। सुंदरलाल बहुगुणा का 'चिपको-आंदोलन' भी इन पशु-पक्षियों की आवाज को बुलंद करता है। संभवतः पशु-पक्षियों की आवाज सुनकर ही बहुगुणा ने यह नारा शुरू किया है।

राजस्थान की सबसे बड़ी झील जयपुर में स्थित है। भीषण गर्मी से वह सूख गई थी। उस झील में रहनेवाले सैकड़ों कछुए धूप से मर गए थे। कछुओं का जीवन करीब एक सौ वर्ष का होता है। जमीन की नीचे की सतह में आर्द्रता होने से वे जमीन के नीचे भी रह लेते हैं। लेकिन गत वर्ष इतनी भीषण धूप थी कि जमीन में दरार पड़ गईं। कई झील तथा तालाब सूख गए और उनमें रहने-

वाले कछुओं की मृत्यु हो गई। यह एक अनहोनी घटना मानी जाती है।

इसी तरह भरतपुर में जो बहुत बड़ी झील है उसका पानी भी सूखने लगता है। वहां पर चिड़ियों की रक्षा के लिए एक बड़ा चिड़ियाघर बनाया गया है जिसमें कई प्रकार के पक्षी रखे जाते हैं। उनकी देखभाल की जाती है। इस क्षेत्र में पानी की विपुलता के कारण भिन्न-भिन्न जातियों के दूर-दूर के पक्षी यहां आते रहते हैं पर गत वर्ष इस झील के आसपास पानी की कमी हो गई थी। पहले साइबेरिया प्रांत से एक विशेष प्रकार के सारस (क्रेन) बगुले आते थे, अब उनका आना कम होता जा रहा है। यदि समय रहते इन पक्षियों की जरूरतों का खयाल न रखा गया तो उनकी जाति नष्ट हो जाने का डर है। हमारे देश में पाए जानेवाले सारस पक्षी का जीवन अत्यंत आकर्षक माना जाता है। सारस पक्षी संकोचशील होते हैं। ये अपनी जाति के नर या मादा के साथ नृत्य करना पसंद करते हैं। नर-मादा आपस में जब प्रणय नृत्य करते हैं, तो उसे देखकर आदमी का मन भी नाच उठता है। आस्ट्रेलिया की तथा हमारे देश की कुछ आदिवासी जातियों ने इन पक्षियों के प्रणय नृत्य को देखकर अपने कई त्योहारों में उसकी नकल की है। संगीत की मधुर ध्वनि के साथ एक लय में गोल-गोल घूमकर वे सारस पक्षियों की नकल करते हैं। प्रणय मुद्रा में जब नर-मादा एक-दूसरे का आलिंगन करते हैं तो उनके आत्म-समर्पण की पराकाष्ठा होती है।

'आई०सी०एफ०' (इंटरनेशनल क्रेन फाउंडेशन) एक संस्था है। इसके द्वारा इन सारस पक्षियों के जीवन को सुरक्षित बनाया जाता है। जब नर मादा को प्रेम के लिए आमंत्रित करता है उस क्षण मादा एक तीखी मधुर आवाज से अपनी स्वीकृति प्रदर्शित करती है। ऐसा भास होता है कि 'क्लेरिनेट' वाद्य की स्वर-लहरी गुंजित हो उठी है। एक बार नर और मादा ने एक-दूसरे का आनंद ले लिया, तत्पश्चात् वे जीवन-भर एक होकर रहते हैं तथा अपने किसी साथी के बिछुड़ने पर दूसरा साथी प्राण त्याग देता है।

विश्व में, विशेषकर हमारे देश में, पानी की कमी झीलों तथा सरोबरों के सूखने आदि के कारण वे अब बाहर देशों से हमारे देशों में कम आने लगे हैं। आई०सी०एफ० में १५ विभिन्न नस्ल के सारस पाले गए हैं। इन सबकी जातियों को बचाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय आवाज उठाई गई है। पूरे विश्व के लोगों ने सह-योग देना प्रारंभ किया है। सारस पक्षियों का संरक्षण करना अर्थात् देश के विभिन्न जल-स्थलों को बनाए रखना तथा जल के स्रोतों को न सूखने देना है। बिना पानी के विस्तृत क्षेत्रों के ये पक्षी पूर्णता के साथ नहीं जी सकते।

दो पक्षियों की आपस की बोलियां कितनी मधुर हो सकती हैं, इसका अंदाज तो उसी समय लग सकता है जब आप शांत चित्त होकर उस बोली को सुनें। उस क्षण भास होता है कि 'सुखी परेवा जगत् में तू ही एक विहंग।'

हमारे देश में ३६३ अभयारण्य हैं। उत्तरप्रदेश का कारबेट, मध्यप्रदेश का कान्हा तथा बिहार का पलामऊ। लेकिन ये राष्ट्रीय उद्यान अपनी व्यथा-कथा बताते नहीं थकते। कहीं पानी की कमी है तो कहीं पर्यावरण में प्रदूषण हो रहा है या कहीं की सुरक्षा-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो रही है। कहीं-कहीं लुके-छिपे शिकार किया जाता है। अवैध जंगलों की कटाई इन स्थानों में भी किसी-न-किसी रूप में चल रही है। विदेशी पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए देश के केवल बारह अभयारण्य ऐसे हैं जहां कुछ विशेष व्यवस्था की गई है। १९७२ के 'वाइल्ड लाइफ प्रोटेक्शन एक्ट' के तहत काफी मात्रा में इन अभयारण्यों को राहत मिलती है। राष्ट्रीय उद्यानों में प्राइवेट ओनरशिपराइट समाप्त कर दिए गए हैं।

१९७३ में 'प्रोजेक्ट टाइगर' जब शुरू हुआ तब हमारे देश में केवल २,००० शेर थे, लेकिन आज इनकी संख्या ५,००० है। भारत सरकार ने रणथंभौर अभयारण्य की इन सफलताओं को देखकर उत्तरप्रदेश में भी दूधिया नामक अभयारण्य आरंभ किया है। ऐसा मालूम होता है कि प्रांतीय सरकारों ने भी पशु-पक्षियों की आवाज सुन ली है।

महाराष्ट्र के सांगली ग्राम के संगारेश्वर मंदिर के इर्द-गिर्द एक बहुत बड़ा अभयारण्य बनाया जा रहा है जिसमें जंगली जानवर तथा पक्षियों को पालकर उनके संरक्षण का पूरा-पूरा इंतजाम रहेगा। यह मंदिर एक अति रमणीक स्थल पर स्थित है। साउथ सेंट्रल रेलवे के निराजपुर सेक्सन में टेकरी नामक एक रेलवे स्टेशन है। यह अभयारण्य उस स्टेशन से केवल चार कि०मी० दूर है। उस क्षेत्र में सन् १९७० से प्रयास किए जा रहे हैं कि एक बहुत बड़ा वन उगाया जाए। यहां पर एक बृहत् मृग-विहार की भी कल्पना है। यहां पर पर्यटकों, विशेषकर बालकों तथा बालिकाओं, के रहने आदि के लिए विशेष सुविधाएं दी जा रही हैं। यह पूरा क्षेत्र करीब ३४ हेक्टर जमीन में फैला हुआ है। प्रतिवर्ष स्कूलों के करीब ४० हजार बच्चे यहां पर पर्यटन हेतु आते हैं और इन पशु-पक्षियों की आवाज सुनते हैं तथा मुग्ध होते हैं। उन्हें ऐसी मानसिक शांति मिलती है जिसका वर्णन वे नहीं कर सकते। इस अभयारण्य के आसपास जो पहाड़ियां हैं उनमें पुरातन गुफाएं हैं। समझा जाता है कि ऋषि-मुनि उन गुफाओं में तपस्या कर अपने जीवन को धन्य बनाते थे तथा मौन की आवाज एवं अंतरात्मा की आवाज सुन-सुनकर सैकड़ों वर्ष जीवित रहते थे। ऐसे स्थानों पर प्राकृतिक छटा तो रहती ही है, उसके साथ ही साथ धार्मिक वातावरण होने के कारण एक आध्यात्मिक शांति भी मिलती है।

पशु-पक्षी, जीव-जंतु आपस में एक विशेष तरह की आवाज से संवाद करते हैं। समयानुसार, परिस्थितियों के अनुसार, जरूरतों के अनुसार उस आवाज में परिवर्तन होता रहता है। उनकी आवाज को समझना पड़ता है। प्रत्येक जानवर

की अपनी एक विशिष्ट आवाज होती है जो उनके समुदाय में मुखर बन जाती है। सारे पशु मनुष्य जाति के लिए कितने उपयोगी हैं इसको बताने की आवश्यकता नहीं है। शाम के समय जब एक गाय रंभाती हुई घर लौटती है और अपने बछड़े को दूध पिलाते हुए प्यार के साथ अपना दोहन कराती है, उस समय का दृश्य देखने योग्य होता है। जो दूध वह देती है वह अमृत-तुल्य रहता है। गऊ माता हमारी संस्कृति की एक विशेष पहचान है। आजकल गो-वध इस कदर हो रहा है कि गाय-बैल की पूरी जमात कराह रही है। गो-वध के विरुद्ध नारे लगाए जा रहे हैं पर सरकार पर कोई विशेष असर नहीं हो रहा है।

दृष्टि, गंध, स्पर्श, श्रवण जैसी कितनी ही क्षमताएं उनमें मनुष्य से अपेक्षाकृत अधिक विकसित होती हैं। इसी आधार पर वे बाढ़, भूकंप, आंधी, तूफान जैसी प्राकृतिक आपदाओं का पूर्वाभास प्राप्त कर अपने जीवन की रक्षा कर पाते हैं। कभी-कभी अपनी इस सामर्थ्य के आधार पर वे अपने मालिकों की भी सहायता करते देखे गए हैं। पशुओं, जानवरों में अतींद्रिय सामर्थ्य भी होती है।

कुछ जानवर पराशक्ति से संपन्न होते हैं। उनकी इस शक्ति के बारे में कई उदाहरण भी मिले हैं। अमेरिका में एक घोड़ी, जो अनहोनी घटना के बारे में सूचना दे देती थी, देश में 'लेडी-वंडर' के नाम से मशहूर हो गई थी। इस तरह का साहित्य अब उपलब्ध है।

रूस की एक घटना है। एक लेखक तीन मंजिलवाले मकान में रहता था। उसके साथ उसकी पालतू बिल्ली भी रहती थी। यह उसकी एकमात्र साथी थी। दोनों साथ-साथ भोजन करते, घूमने भी जाते थे। बिल्ली की म्याऊं की आवाज से लेखक महोदय बहुत परिचित हो गए थे। बिल्ली दरवाजे पर आकर म्याऊं की आवाज देती और उसके मालिक तुरंत दरवाजा खोल देते थे।

एक दिन की बात है, बाहर वर्षा हो रही थी, तेज हवा भी चल रही थी, और वह बिल्ली आकर घर में बैठ गई। मालिक जब घूमकर लौटा तो उसने बिल्ली को घर के अंदर पाया। उस रात अचानक बिल्ली जगी और जोर-जोर से म्याऊं-म्याऊं बोलने लगी। मालिक की नींद खुल गई। उसने रोशनी जलाई। बिल्ली ने उसकी ओर देखा जैसे वह उससे ऊपर की मंजिल से नीचे उतरने का आग्रह कर रही हो। मालिक ने ध्यान नहीं दिया। बिल्ली उसी के साथ उसी कमरे में रुक गई। मालिक जैसे ही पलंग पर लेटा बिल्ली ने पुनः म्याऊं-म्याऊं की रट लगा दी। मालिक ने दरवाजा खोल दिया पर बिल्ली बाहर नहीं गई।

तीसरी बार बिल्ली की आवाज इतनी तेज हो गई कि मालिक को जागना ही पड़ा। वह नाराज हो गया। लेकिन बिल्ली उसके पलंग के चारों तरफ चक्कर लगाने लगी। मालिक विवश होकर उठ बैठा और दरवाजे की ओर गया। इसी बीच बिस्तर के तकिए के ऊपर छत का एक बहुत बड़ा हिस्सा गिर पड़ा। उसे

देखकर मालिक को ज्ञात हुआ कि बिल्ली क्यों चिल्ला रही थी, क्यों पलंग का चक्कर काट रही थी। यदि वह पलंग पर सोया रहता तो अवश्यमेव उसे बेहद चोट आती।

इस घटना से पशुओं, जीव-जंतुओं के पूर्व भाव का पता चलता है। इसी प्रकार उनकी अन्यान्य इंद्रियां भी विकसित होती हैं। गिद्ध की दृष्टि, सांप की श्रवण सामर्थ्य, बिल्ली, हिरन, शेर आदि की गंध ग्रहण करने की क्षमता इतनी सुविकसित होती है कि मनुष्य भी उनसे इस क्षेत्र में पीछे छूट जाता है।

कुत्ते की सूंघने की शक्ति विलक्षण होती है। इसके स्वभाव में तीन विशेष गुण पाए जाते हैं—(१) रात को जागना (शब्बेदारी), (२) स्वामिभक्ति (वफादारी), (३) आत्म-संतोष (कनाअत)। तीनों गुणों के बारे में एक-से-एक किस्से हैं। एक कुत्ते ने अपने मालिक की रक्षा के लिए उन पर झपटते हुए सांप के गले/मुंह को अपने मुंह में दबोच दिया। उस प्रक्रिया में कुत्ते पर विष का असर तो हुआ और वह मर भी गया, लेकिन उसने अपने मालिक की जान बचा ली।

डॉक्टर जानसन कहा करते थे कि जितना ही अधिक मैं आदमी को पहचानने लगा हूं उतना ही अधिक मैं अपने कुत्ते को प्यार करने लगा हूं। पालतू कुत्तें और आवारा कुत्तों में जमीन-आसमान का फर्क रहता है। आवारा कुत्ते कुछ भी खा-पीकर जी लेते हैं पर पालतू कुत्तों में एक तरह का स्वाभिमान आ जाता है। उसका मालिक जब उसे प्यार से खाना देता है तो वह कुत्ता जो कुछ भी उस दिया गया रहता है उसे खा लेता है लेकिन यदि उसी घर का कोई दूसरा आदमी हिकारत की निगाह से कुत्ते को खाना दे या खाने की थाली को फेंककर उसके सामने रखे तो वह कुत्ता भोजन ही नहीं करता। भले ही उसकी जान चली जाए। जैसे ही उसका मालिक आता है और प्यार से उसी भोजन को दूसरे बरतन में रखकर उसे खाने को देता है तो वह पूरे संतोष के साथ भोजन कर लेता है। सुना गया है कि कुत्ते अपने मालिक के मरने के बाद खाना-पीना छोड़ देते हैं और अपनी जान कुरबान कर देते हैं। कुत्तों की नस्ल पर सारा दारोमदार रहता है। कुत्ते अपना प्यार उसी तरह जताते हैं जैसे मनुष्य अपनी प्रेयसी के साथ जताते हैं।

वर्तमान समय में अपराध का पता लगाने के लिए अच्छी नस्ल के कुत्तों का उपयोग किया जाता है। उनकी सूंघने की शक्ति इतनी विलक्षण होती है कि दूर-दराज की चीजों को वे सूंघकर वहां पहुंच जाते हैं। जीवित मनुष्यों को उनके शरीर की गंध से वे पहचान लेते हैं। प्रत्येक आदमी के शरीर से एक विशेष गंध निकलती रहती है। अपराध खोज शाखा में लगे हुए कुत्ते एक ही मालिक के द्वारा शिक्षित किए जाते हैं तथा उसी मालिक के हाथ का ही खाना भी खाते हैं। दूसरों

के द्वारा परोसा भोजन वे नहीं खाते। इसके पीछे कुत्त के स्वभाव का एक मनोवैज्ञानिक कारण है।

रात्रि में एक साथ कुत्तों का रोना महान् अशुभ का द्योतक है। वह एक ऐसी आवाज है जो भावी आपत्ति के बारे में सूचना देती है। जैसे भूकंप आदि। कुछ लोगों की मान्यता है कि रात्रि में जब प्रेत योनियां कुत्तों को दिखती हैं तो वे रोने लगते हैं।

उड़ीसा में नंदन कानन है। यह कानन भुवनेश्वर से करीब २० किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। उस कानन में एक चबूतरा बना हुआ है और उस पर दो-तीन छोटे-छोटे शेर के बच्चों की पत्थर की मूर्तियां भी बनी हुई हैं। उन मूर्तियों के नीचे वर्णन दिया हुआ है कि वे शेर के बच्चे उस कानन में कैसे पैदा हुए। कानन में एक शेर रहता था लेकिन शेरनी नहीं थी। एक रात शेर, शेरनी के साथ सहवास करने के लिए इतना अधीर हो गया कि वह जोर-जोर से दहाड़ने लगा। उसकी उस दहाड़ में निमंत्रण था, सहवास की भूख थी तथा एक अजीब बेबसी भी थी। वह शेर चारों तरफ तार के खंभों से घिरा हुआ था। पूरे कानन के चारों तरफ तार की बाड़ लगी हुई थी। रात-भर वह शेर दहाड़ता रहा। वह तार की फेंसिंग करीब आठ-दस फुट ऊंची थी। उस शेर की दर्दनाक दहाड़ को कानन के बाहर एक शेरनी ने सुना। शेरनी को तरस आया। वह भी सहवास के लिए आतुर हो उठी। तार के बाहर से शेर को देख-देखकर वह भी वैसी ही आवाज लगाने लगी जैसी शेर की आवाज थी। दोनों एक-दूसरे के प्रति इतने आकर्षित हो गए कि शेरनी से नहीं रहा गया। वह बहुत दूर से दौड़ती हुई आई और उन तारों के खंभों के ऊपर से कूदकर शेर के पास पहुंची। वह पहुंच तो जरूर गई पर चट्टान से टकराने के कारण उसके हाथ-पैर सब टूट गए। वह निःसहाय होकर दर्द-भरी आवाज निकालने लगी। सवेरा होते-होते कानन के कर्मचारी आए। उन्होंने शेरनी का इलाज कराया। वह ठीक हो गई। बाद में शेर और शेरनी एक साथ रहने लगे और उन दोनों के सहवास से कितने बच्चे पैदा हुए यह कहना बड़ा मुश्किल है। उनके इस अनुपम मिलन की याददाश्तस्वरूप चबूतरे पर इन्हीं बच्चों की प्रस्तर मूर्ति बनी हुई है। शेर का मर्मस्पर्शी निमंत्रण, शेरनी का जान पर खेलकर आत्मसमर्पण तथा अंत में दोनों का मिलन—एक अद्भुत घटना है। इस दृष्टांत से आवाज आती है कि सही-सच्चे सर्मपित सहवास में ही प्रजनन-क्रिया का आनंद है, अन्यथा वह यांत्रिक बनकर रसहीन हो जाती है। पशु-पक्षी अपने जीवन के इस तत्त्व को खूब निभाते हैं।

अच्छी नस्ल के घोड़ों की स्वामिभक्ति के एक-से-एक शिक्षाप्रद उदाहरण हैं। महाराणा प्रताप के चेतक का किस्सा सब जानते हैं। मैंने कई ऐसे उदाहरण देखे और सुने हैं कि एक प्रेमी मालिक के मर जाने पर घोड़ा खाना-पीना छोड़ देता है

और अपनी जान गंवा बैठता है। मरने के पहले वह जो हिनहिनाता है उसे उसका विलाप ही समझना चाहिए।

एक घुड़सवार बरसात के दिनों में रात्रि में कहीं बाहर जा रहा था। रास्ते में एक बड़ी नदी मिली। नदी के ऊपर एक सड़क बनी हुई थी। घोड़े ने सड़क के ऊपर से जाने से इनकार कर दिया। कई बार मालिक ने उसे आगे ले जाना चाहा पर वह आगे नहीं बढ़ा। हैरान होकर मालिक स्वयं सड़क के ऊपर आगे बढ़ने लगा। कुछ दूर जाने पर उसने देखा कि सड़क में छेद हो गया है और उस बड़े छेद के आसपास की जमीन धंस रही है। यदि घोड़ा उस पर से निकलने की कोशिश करता तो घोड़ा और उसका मालिक दोनों नदी में समा जाते।

अपने मालिक के हाथों को सूंघकर घोड़ा यह बताता है कि मैं खुश हूं। आप मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं क्या करूं। सांप-कोबरा, जंगली हिंसक जीव जैसे ही आस-पास में दिखते हैं घोड़े को आभास हो जाता है। वह सूंघते हुए धीरे-धीरे हिन-हिनाता है तथा अपने मालिक को आगे जाने से मना कर देता है। घोड़े की आवाज को उसके मालिक बखूबी पहचानते हैं।

मेढक किसानों के बहुत मददगार हैं। खेतों में मौजूद हानिकारक कीड़ों को खाकर मेढक पैदावार की रक्षा करते हैं। लेकिन पिछले कुछ वर्षों से मेढकों का भारी निर्यात किया जा रहा है। मेढक की पिछली टांगों के गोश्त की मांग अमेरिका और पश्चिमी देशों में निरंतर बढ़ रही है। हमारे देश के मुनाफाखोर लोग पर्यावरण और प्रकृति के बिगड़ते संतुलन की परवाह किए बिना अंधाधुंध लाखों मेढक रोज पकड़ रहे हैं। उनके निर्यात करने का विशेष धंधा शुरू हो गया है। मेढक की कमी से पर्यावरण में जो खामियां आएंगी उसकी कल्पना से पर्यावरण विशेषज्ञ सिहर उठे हैं। इस निर्यात को रोकने के लिए कलकत्ता में एक सम्मेलन भी हुआ था। भारत विश्व-भर में इस निर्यात में पहले स्थान पर है। यह निर्यात १९५७ से शुरू हुआ। १९६७ में यह निर्यात ७४० टन का हो गया। १९८१ में इसकी मात्रा ३,७०० टन तक पहुंच गई। १९८४-८५ में यह आंकड़ा ४,५०० टन को भी पार कर गया। यह कितना क्रूर व्यापार है। इसे हम लोग नहीं समझ रहे हैं। एक निरीह प्राणी की इस प्रकार हत्या करना देश व समाज के माथे पर भारी कलंक है। वन्य प्राणी संरक्षण अधिनियम के अंतर्गत कृषि व पर्यावरण के लिए उपयोगी जंतु घोषित किए जाने के बावजूद सरकार खुद ही मेढक पकड़ने के लिए लाइसेंस देती है।

केंचुआ लंबी-गोल-चिकनी तथा पतली आकृति का होता है। ये पृथ्वी के नीचे एक फुट से बारह फुट की गहराई तक रहते हैं। यह खेती के लिए उपयोगी जंतु हैं। एक एकड़ में पचास हजार केंचुए अपना घर बना लेते हैं। यह मिट्टी को खोदकर उसमें सड़ते हुए अन्य जंतुओं या वनस्पतियों को अपना भोजन बनाते

हैं। अनुपयुक्त भोजन मलद्वार द्वारा पृथ्वी की बाहरी सतह पर निकालते हैं। वर्ष-भर में लगभग नौ-दस टन मिट्टी खाकर निकाल देते हैं। यही पांच-छह वर्षों में खेत की सतह पर ताजी मिट्टी की परत ला देता है जो कृषि में उपयोगी होती है। इसके कारण फसल अच्छी उत्पन्न होती है। केंचुए की लंबाई १५ से २० सेंटी-मीटर एवं मोटाई ४-५ सेंटीमीटर होती है। ढाई हजार से भी अधिक इनकी जातियां हैं। आस्ट्रेलिया में सांप की आकृति का केंचुआ पाया जाता है, जिसे राक्षस केंचुआ कहते हैं। यह जीव-विज्ञान के 'एनीलिडा' परिवार के अंतर्गत आता है। केंचुए अंधेरे में ही रहना पसंद करते हैं। इनके श्रवण अंग अविकसित होते हैं तथा श्वसन अंगों का पूर्णत: अभाव होता है। इसलिए त्वचा से श्वसन-क्रिया पूर्ण करते हैं। इनका जीवन-काल लगभग १५ वर्ष का होता है। इन्हीं जंतुओं के कारण मिट्टी में खनिज लवण की मात्रा मिलती रहती है।

केंचुए के एक ही शरीर पर नर और मादा दोनों जननांग होते हैं। लेकिन स्वयं प्रजनन-क्रिया करने में यह असमर्थ होते हैं। अंडों की प्राप्ति के लिए दो केंचुओं को एक होना पड़ता है। गठिया नामक रोग में केंचुआ बड़े काम की चीज है। दादुर, चिड़ियां, छछूंदर आदि केंचुए के शरीर को खाने के लिए आतुर रहते हैं। यह अंधा, बहरा और गूंगा होते हुए भी किसानों के लिए अत्यंत उपयोगी है। खेतों में उनका रहना नितांत आवश्यक है। कीटनाशक जो दवाइयां आज उपयोग में लाई जा रही हैं उनसे इन केंचुओं को बड़ा नुकसान पहुंचता है। हमारे शासकों द्वारा भूमि तथा खेतों के बारे में जो नीति अपनाई जा रही है वह गलत है। जो जीव-जंतु खेती में काम आते थे अब रासायनिक कीटनाशक पदार्थों के उपयोग से वे कम होते जा रहे हैं। उसके कारण जमीन खरपतवार और गोबर की खाद्य से वंचित होती जा रही है। पशु-धन घटता जा रहा है। गोबर का दूसरा उपयोग हो रहा है। जो घास-पात खेत से ली जाती है वह प्रकारांतर से उसे वापस नहीं मिलती तथा खेतों में रहनेवाले जीव-जंतु कम होते जा रहे हैं। अमेरि-कन कृषि विभाग के अंतर्गत एंटोमोलाजी रिसर्च शाखा ने कीटाणुनाशक विषों की प्रतिक्रिया की जांच कराई है। मालूम हुआ है कि दस साल से लगातार इस विष-सिंचन के कारण काफी गहराई तक भूमि में डी० डी० टी०, बी० एच० सी० और लिंडेन के अंश खतरनाक मात्रा में पहुंच गए हैं। खेती के प्राकृतिक जीव-जंतु नहीं पनप पा रहे हैं। खेती का बड़ा नुकसान हो रहा है। यह जरूर है कि फिलहाल खेती की पैदावार बढ़ रही है, परंतु अगले दस-पंद्रह वर्षों में वह जमीन बेउपजाऊ हो जाएगी। आश्चर्य नहीं कि वह बंजर हो जाए।

आंखों से खून बरसानेवाली छिपकली, यह विशेष प्रकार की छिपकली उत्तर अमेरिका में मिलती है तथा मैक्सिको प्रांत में भी पाई जाती है। इसका नाम 'होर्ड लिजार्ड' है। यह छिपकली अपनी आंखों से खून की पिचकारी छोड़ती है।

जीव वैज्ञानिकों का कहना है कि यह उसका अपने बचाव का एक अनूठा तरीका है। चक्र सामने आने पर यह छिपकली अपने सिर में रक्त का दबाव बढ़ा लेती है। इससे उसकी आंखों की सूक्ष्म रक्त-कोशिकाओं की झिल्ली फट जाती है। खून फव्वारे के रूप में कई इंच दूरी पर खड़े शत्रु की आंखों में पड़ता है। इससे शत्रु की आंखों में जलन पैदा हो जाती है और वह भाग खड़ा होता है। यही उस छिपकली की भाषा है।

आपस में दो पक्षियों की भाषा कितनी मधुर और मुखर हो सकती है इसका अंदाज कबूतर और कबूतरी के गुटरगूं से पता चलता है। वर्षा ऋतु में मोर-मोरनी के नृत्य की भाषा समझने लायक होती है।

हमारे भारतीय शास्त्रीय नृत्य में हाथों को हिला-डुलाकर जो भाषा बोली जाती है उसमें दो हाथों की भाषा में दो पक्षियों की भाषा का प्रदर्शन प्रतीकात्मक रूप से किया जाता है। उनके जीवन की सरलता तथा सरसता का प्रदर्शन करती है। बोलती हुई चिड़ियों का भी साहित्य मिलता है। इन चिड़ियों की आवाज प्रातःकालीन अरुणिमा में तथा संध्याकालीन लालिमा में जीवंत हो उठती है।

टिटहरी पक्षी, जो जमीन में अंडे देती है, अत्यंत चतुर होती है। नर और मादा पारी-पारी से अंडों की रक्षा करते हैं। अपने पंखों को फैलाकर अंडों के पास बैठ जाते हैं। धूप तथा बारिश से उन्हें बचा लेते हैं। रात में यदि अचानक टिटहरी पक्षी आवाज करने लगे तो किसी आपत्ति की आशंका हो जाती है। लोग सावधान हो जाते हैं।

मृंगराज पक्षी एक जंगली पक्षी है जो अपनी आवाज से जंगलों में अन्य जानवरों के प्राण की रक्षा करता है। यह अत्यंत सुंदर और चित्ताकर्षक होता है। इसका रंग काला है। वह हिरन जैसी आवाज निकालकर कभी-कभी बाघ को चकमा देता है। यह ज्ञान विद्या विशारद पक्षी माना जाता है। विभिन्न गायक पक्षियों के गानों की हूबहू नकल करता है। विभिन्न जानवरों की बोली की भी नकल कर लेता है। बाघ जब किसी का शिकार करना चाहता है तो मृंगराज पक्षी प्रायः बाघ के उस शिकार करने की क्रिया में बाधा डाल देता है और आनंद लेता है। दूरदर्शन में वाइल्ड लाइफ तथा प्रोजेक्ट टाइगर के जो सीरियल निर्धारित दिनों में आते हैं उनसे पशु-पक्षियों, जीव-जंतुओं की दुनिया का आभास मिलता है। यह दुनिया कितनी विशाल, आकर्षक और रहस्यमयी है यह पता चलता है। पशु-पक्षी, परिंदों तथा जंतुओं की आवाज सुन-सुनकर संवेदनशील हृदय कवि बन जाता है। कबीर ने कहा है कि "चींटी के पग नूपुर बाजे।" इस एक पंक्ति में कबीर ने सब कुछ कह दिया है।

बरसात के पहले चींटियों का एक समूह में बाहर निकलना वर्षा का पूर्व संकेत माना जाता है। चिड़िया यदि धूल में नहाने लगे तो वह भी वर्षा का पूर्व

संकेत है। गिरगिट का बाहर निकलना तथा एक विशेष चींटी की आवाज निकालना अर्थात् वर्षा का आगमन माना जाता है। इन आवाजों को न सुनकर आज हम 'सेटेलाइट' से ऋतुओं के आगमन का पता लगाते हैं।

कौआ पक्षियों में एक चतुर-चालाक पक्षी माना जाता है। एक बार मैंने देखा कि बिजली के खंभे के तार से एक कौआ मर गया। मरने के पूर्व जो आवाज उसने दी उसे सुनकर तीन-चार मिनटों में ही कांव-कांव करते हुए दस-बीस कौए इकट्ठे हो गए। कुछ ही क्षण में उनका एक झुंड इकट्ठा हो गया। आधे घंटे तक अपनी-अपनी भाषा में उन सबने उस मृत कौए को श्रद्धांजलि दी और थोड़ी देर बाद उसे लेकर वे सब उड़ गए। वह कैसी आवाज थी कि सारा समुदाय चौकन्ना हो उठा तथा उस मृत सदस्य के पास इकट्ठा हो गया। सड़क पर मरते समय यदि एक गरीब आदमी आवाज निकाले तो उसे सुनकर भी लोग चले जाते हैं। पक्षी और आदमी की आवाज में यही अंतर है।

सांप के पास सुनने के लिए कान नहीं होते। वह 'चक्षुश्रवा' कहलाता है। सपेरे की बीन की मधुर आवाज सर्प के पूरे शरीर में कंपन पैदा करती है। वह तरंगित हो उठता है। उन कंपनों से सर्प इतना सराबोर हो जाता है कि वह झूम-झूमकर नाचने लगता है। उस लय में इतना विभोर हो जाता है कि अपनी प्रकृति तक को भूल जाता है। उसी हालत में सपेरे उन्हें पकड़ लेते हैं तथा उन्हें पालतू बना लेते हैं। हिरन भी इसी तरह संगीत की आवाज से बेसुध होकर अपनी जान गंवा देता है। रात्रि में सांप की हिसिंग आवाज अजीब होती है। ऐसी मान्यता है कि सांप को पराशक्ति का आभास हो जाता है। जैसे भूकंप आदि आने पर या अन्य कोई अनिष्ट होने पर वह वैसी आवाज निकालता है।

चमगादड़ पक्षी के भी कान नहीं होते, लेकिन इसमें एक अद्भुत शक्ति होती है। इसकेसुनने का तरीका राडार के सिद्धांतों पर आधारित है। वह रात को अपने मुंह से ऐसी आवाजें (सुपर सानिक) निकालता है जो सामने के पदार्थों पर टकराकर लौटती है। और उसी प्रतिध्वनि से चमगादड़ यह पता लगा लेता है कि वह कहां पर है, जिस वस्तु से टकराकर उसकी आवाज लौटी है तथा कितनी दूरी से आवाज लौटकर आई है। इसी कारण रात्रि में बहुत दूर से भी यदि एक मेढक टर्र-टर्र बोलता है तो चमगादड़ अपनी आवाज निकालकर उस मेढक के स्थान का पता लगा लेता है तथा उस अंधेरे में चमगादड़ उस मेढक को पकड़कर मुंह में रख लेता है। गुफा के अंदर या किसी बड़े खंडहर में छोटे-से-छोटे रास्ते में भी वह अपनी विशेष आवाज निकालते हुए अपना सही रास्ता ढूंढ़ लेता है।

बंदरों की कई विशेषताएं हैं। जंगल में वे भाग-दौड़कर विशेष तरह की आवाज निकालकर हिंसक पशुओं से अन्य प्राणियों की जान बचाते हैं। लंगूर जाति की एक बंदरिया अपने बच्चों को दूध पिलाते समय, दूसरी बंदरिया के

बच्चों को भी दूध पिला देती है यदि उन बच्चों की मां वहां नहीं रहती। इस तरह की सहानुभूति मानव-समाज की महिला दिखा सकती हैं क्या? अब तो हालत यह है कि दूसरे के मुंह की रोटी छीनकर अपने बच्चों को खिला देती हैं। यह सच है कि सब स्तर की महिलाओं की यह हालत नहीं है। लेकिन मैं तो केवल एक स्वभाव की चर्चा कर रहा हूं।

यदि जंगल में पानी न मिले, पानी के सारे स्रोत सूख जाएं, बंदर केवल पेड़-पौधों की ही पत्तियों को खाकर चार-पांच महीने बिना पानी के रह सकते हैं। उसके बावजूद जब ये एक झाड़ से दूसरे झाड़ में हूप की आवाज लगाकर कूदते हैं तो उनका आत्म-संतोष प्रदर्शित होता है। मानव एक दिन भी बिना पानी के नहीं रह सकता। आज मानव की आंखों का पानी ही उतर गया है।

मुगल जमाने में कबूतरों के द्वारा ही चिट्ठी-पत्री का भेजना होता था। विशेषकर प्रेम-पत्र कबूतर कैसे ले जाते थे उन सबका वर्णन यहां उचित नहीं है। कबूतर-कबूतरनी का गुटरगूं तो कवित्वमय होता है। 'वाटरलू' की लड़ाई के बाद अंग्रेजों की जो जीत हुई थी उसकी सर्वप्रथम सूचना कबूतर के द्वारा ही लंदन-वासियों को मिली थी। कबूतर न केवल संदेश पहुंचाते थे वरन् मनुष्यों की भाषा को भी समझते थे। सैकड़ों मील दूर चले जाने पर भी वे अपने मालिक के घर यथासमय अपना काम करके लौट आते थे। शांति दूत के रूप में कबूतरों का विशेष स्थान है। कबूतर के जोड़े शांति के प्रतीक माने जाते हैं। कपोत अर्थात् शांति दूत।

वर्तमान समय में शेर नरभक्षी क्यों हो रहा है, क्योंकि शेर को उसके भोजन के लिए पर्याप्त जानवर नहीं मिलते। एक शेर की भूख मिटाने के लिए माह भर में कम से कम दस जानवर चाहिए। साल-भर में अंदाजन एक सौ पचास जानवरों की जरूरत पड़ेगी। यदि जंगल में अधिक शेर हैं तो बताइए उनके लिए जानवर कहां से आएंगे। क्योंकि आज जानवर व्यर्थ मारे जा रहे हैं। इसलिए वन्य जीवन में एक दुष्चक्र प्रारंभ हो गया है। यदि जानवर पैदा ही नहीं होंगे तो क्या होगा, यह कल्पना की बात है। उस हालत में शेर नरभक्षी न होगा तो और क्या खाएगा? इसीलिए पशुओं की यह आवाज है कि प्रकृति के तीन धागे जानवर, हरियाली और पानी—आपस में संतुलित रूप से रहें। मनुष्य उन सबके ऊपर है जो संतुलन बनाए रख सकता है, बशर्ते वह जंगलों को व्यर्थ न काटे। सृष्टि संतुलन विज्ञान एक ऐसा विषय है कि जिसके द्वारा यह ज्ञात होता है कि मानव-जीवन के लिए पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, जीव-जंतु कितने उपयोगी हैं।

दीमक की एक मौलिकता है। वह इधर-उधर के कण बुनकर उन्हें ज्यों-का-त्यों उगल देती है। इस प्रकार वह अपना लंबा-चौड़ा घर बना डालती है। वह घर सांपों का निवास-स्थान हो जाता है। एक मौलिकता मकड़ी की होती है जो

सब कुछ अपने पेट से निकालती है परंतु उसके द्वारा रचा हुआ वह जाल केवल मक्खियां फंसाने के ही काम आता है। सुरुचिपूर्ण भवन में तो वह मकड़ी का जाल कूड़ा-करकट ही माना जाता है।

एक मौलिकता मधुमक्खी की होती है जो सुमन-सुमन से रस लाकर उस रस पर इस प्रकार अपने व्यक्तित्व की छाप लगा देती है कि उसकी कायापलट हो जाती है और फिर वह रस मधु बनकर मनुष्यों की अनेक व्याधियों को दूर करने-वाला समझा जाता है। हमें मधुमक्खी की मौलिकता चाहिए। आज तो मधु-मक्खी की आवाज सुनाई ही नहीं पड़ रही है। मकड़ी के जाल ही बिछाए जाते हैं जिसमें लोगों को फंसाया जाता है।

पाश्चात्य जगत् में पशु-पक्षियों के जीवन को निम्नस्तरीय माना जाता है। हमारी सभ्यता में पशु-पक्षियों के प्रति स्नेह तथा आदर उस ईश्वर के प्रति सम्मान का प्रतीक है जिसने उन्हें भी बनाया है। इसीलिए प्रतिदिन के जीवन में पशु-पक्षियों का विशेष स्थान निर्दिष्ट किया गया है। विभिन्न उत्सवों एवं समारोहों में बंदर, हाथी, सर्प आदि पक्षी जीवन के कई उत्तम भावों के प्रतीक माने आते हैं। उनकी पूजा भी की जाती है। वर्तमान समय में पशु-पक्षियों से नाता तोड़कर हम प्रकृति, पर्यावरण एवं वातावरण के आकर्षण को नकार रहे हैं। विज्ञान के क्षितिज खुल रहे हैं। कई रहस्यों का परदा उठनेवाला है। जंतु भूकंप की वाणी करेंगे। प्रकृति की भयंकर दुर्घटनाओं का पूर्व संकेत अभी ये जंतु दे रहे हैं। पर्यावरण प्रदूषण के कारण जीव-जंतुओं के जीवन पर भी कुप्रभाव पड़ रहा है।

१६

प्रकृति की आवाज

हजारों वर्षों से हिमालय मानव को आकर्षित करता आया है। यहां के हिम-मंडित उत्तुंग शिखर, सूर्य की पहली किरण के स्पर्श से इंद्रधनुष के नाना रंगों को बिखेरते हुए यहां की सदानीरा सरिताएं गिरि कंदराओं को तोड़ती-फोड़ती, प्राकृतिक दृश्यों को उपस्थित करती एवं पग-पग पर हिमालय के निर्झर अपनी संगीत-ध्वनि से संसार के ताप त्रस्त मानव-हृदय को अपार शीतलता प्रदान करते आ रहे हैं। पहाड़ों में लघु झरनों का सतत संगीत चलता रहता है। भोर, सवेरा संगीत तथा पक्षियों के कलरव से होता है। हिमालय के इस दिव्य वैभव में, प्रकृति के इस शांत सुरम्य वातावरण में श्वेत हिमशिखरों की छाया में, देवदार के सघन वन कुंजों में, निर्झरों के कलकल स्वर के निकट मानव सहज ही आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर हो उठता है।

इसी भावना ने जगह-जगह पर तीर्थस्थानों का निर्माण कराया था और आज का आदमी उन तीर्थों से बहुत कम आकर्षित होता है। आज शहरों की आवाज, दूरदर्शन की आवाज, सिनेमा जगत् की आवाज, वी० डी० ओ० की आवाज तथा राजनीति की आवाज से मानव सराबोर है। उसे प्रकृति की ओर जाने का समय ही नहीं मिलता। मानव प्रकृति से कोसों दूर है। प्राकृतिक प्रेम नाम की चीज वह नहीं जानता। वह भौतिकवाद की आवाज से मस्त है। धार्मिक तथा आध्यात्मिक प्रेरणाओं का उसपर सरसरी तौर पर भी असर नहीं पड़ता। यदि असर पड़ता भी है तो वह क्षणिक रहता है।

प्राकृतिक सौंदर्य की सराहना तो दूर रही, प्रकृति की सतह क्या होती है, कैसे जन-जीवन उससे प्रभावित होता है, यह भी जानने का कोई प्रयास नहीं करता। प्रकृति अर्थात् पहाड़, नदी, नाले, सरोवर, झील, सागर, जंगल तथा आकाश। कालचक्र की महत्ता को दर्शाते हुए सूर्योदय एवं सूर्यास्त। प्रकृति को जीवन देने-वाले सूर्य की किरणें, वर्षा का जल तथा वायुमंडल निरंतर अपना काम करते

रहते हैं। दुनिया में कुछ भी होता रहे—मारकाट, धूमधाम, भूकंप आदि लेकिन सूर्योदय अपने निश्चित समय पर होता ही है तथा सूर्य भगवान् अपने निश्चित समय पर अस्ताचल पर्वत के पीछे डूब ही जाते हैं। उष:कालीन अरुणिमा में भगवान् भास्कर की किरणें कितनी जीवनदायिनी, सौंदर्यमयी होती हैं, यह हमारे पूर्वजों ने खूब समझा था। आज तो हममें से तीन-चौथाई लोग सवेरा कब होता है, यह भी नहीं जानते।

हमारे देश में क्या नहीं है? नदियां, पहाड़, झीलें, जंगल, खनिज पदार्थों के स्रोत सभी कुछ तो है। यहां बस दृष्टि नहीं है। प्रकृति की आवाज कोई नहीं सुनता। बदली हुई जीवनशैली में इन सुरम्य रमणीक स्थानों का विशेष आकर्षण है। ऊंचे-ऊंचे, बड़े-बड़े मकान, चारों तरफ घनी आबादी, ध्वनि-प्रदूषण इस वातावरण में दम घुटता रहता है। सभी लोग परेशान नजर आते हैं। इस पागल दौड़ से मुक्ति पाने, प्रकृति की गोद में हरियाली छांव में पहुंचने एवं पूर्णत: विश्राम लेने के लिए व्यवस्थाएं की जा सकती हैं। परंतु आज का माहौल ही कुछ ऐसा हो गया है कि लोग यंत्रवत् जीना चाहते हैं। यंत्रों से ही सरोकार है तथा भौतिकवाद की चकाचौंध में सब कुछ भूल गए हैं। वह प्रकृति की गोद में जाने के बजाय प्रकृति का ही विध्वंस करने में संलग्न हैं। निर्दयता से जंगल काटे जा रहे हैं—ताजगी, हरियाली, स्वच्छ हवा के स्रोत नष्ट किए जा रहे हैं। अवर्षा, अल्प वर्षा, दुर्भिक्ष, सूखा ये सब इसके परिणाम हैं। प्रकृति का प्रकोप जब मानव देखता है, उसकी आंखें खुलती हैं; फिर भी वह सचेत नहीं हो रहा है। जिस भांति नीला आकाश तरंगिनी के निर्मल जल में निरंतर प्रतिबिंबित होता रहता है उसी तरह प्रकृति की अन्य घटनाएं भी बिखरी रहती हैं। हमें केवल उनकी आवाज सुननी चाहिए। प्रकृति एक इति-वृत्ति मात्र नहीं किंतु एक मानवीय प्रवृत्ति का प्रतीक है जो मानव-जीवन का आंतरिक मर्म अपने-आप में छिपाए हुए है। प्रकृति-प्रेम कितना वांछनीय है यह तो उन प्रकृति-प्रेमी कवियों से पूछिए जो लिख गए हैं कि मनुष्य आता रहेगा, जाता रहेगा, पर नदी, नाले, सरिताएं चिरंतन काल तक बहती रहेंगी।

यदि वर्तमान दर से उत्पादन होता रहे, मनमाना औद्योगीकरण बढ़ता रहे, संसाधनों का उपयोग होता रहे तथा आबादी की वृद्धि होती रहे, तो क्या हम मिट्टी के वायुमंडल और विश्व महासागर के प्रदूषण को रोक सकेंगे? कदापि नहीं। यह पृथ्वी पर जीवन के लिए और स्वयं मनुष्य के लिए कितना बड़ा खतरा है। मनुष्य और प्रकृति के बीच अंतर्संबंध आमूल रूप में बदल गया है। भोजन एवं सामग्रियों की बढ़ती हुई आवश्यकता पूरी करने के लिए प्रकृति का दोहन हो रहा है। वैज्ञानिक और मनुष्य, प्राविधिक क्रांति प्रकृति के संबंध में एक और चरण का द्योतक हुई। रसायन शास्त्र और भौतिक शास्त्र में जो नई खोजें हुई हैं

उन्होंने ऐसी नई सामग्रियों और तत्त्वों को जन्म दिया जो प्रकृति के लिए विजातीय हैं। अधिकाधिक परिमाण में ऊर्जा और कच्चे मालों का उपयोग करते हुए उनका उत्पादन करनेवाले कारखाने ऐसी सामग्रियां निःसृत करते हैं जिनसे प्रदूषण फैलता है। बढ़ता हुआ यातायात, सारे तरह के ऑटो मोबाइल्स, सारे तरह के गैस, सबने पर्यावरण के लिए गंभीर खतरा पैदा कर दिया है। इन सब पदार्थों की सड़न के उत्पाद ने समताप मंडल की ओजोन परत को नष्ट कर दिया। उस कवच को नष्ट कर दिया जो सूर्य के कठोर पर बेंगनी विकिरण से जैव मंडल की रक्षा करता है। हमारे देश में ३५ प्रतिशत जंगल हुआ करते थे। अब केवल ९ प्रतिशत जंगल ही शेष रह गए हैं। इनका दुष्प्रभाव भयानक हो रहा है। ऊपर से ओजोन की सतह कम होती जा रही है। ओजोन के कारण वनस्पति जगत् में बड़े-बड़े पेड़-पौधे, वृक्षों को अत्यंत हानि पहुंच रही है। पेड़ के पत्ते चितकबरे हो रहे हैं। पत्ते का आधा हिस्सा सड़कर गिर जाता है तथा आधे पत्ते सफेद दाग लिए हुए रहते हैं। पेड़-पौधे बदरंग हो रहे हैं। प्रकृति बदरंग हो रही है। यह उसकी दुःखद आवाज है।

आम धारणा थी कि महासागर इतना विशाल है कि यह हर हमले का मुकाबला कर सकता है। और इसीलिए उसके जल में सभी प्रकार के उच्छिष्ट डाले गए। और अब महासागर के जल का इतना भयंकर प्रदूषण हुआ है कि उसके अंदर के जीव-जंतु मर रहे हैं। पानी से सड़ांध की बदबू आ रही है। कानपुर के पास गंगा नदी का जल कितना दूषित हो गया है, यह सब जानते हैं। भारत सरकार ने उसके शुद्धिकरण के लिए करोड़ों रुपए स्वीकृत किए हैं। यही हाल देश की कई नदियों का है। जब हम अपने संसाधनों का उपयोग करते हैं तो तात्कालिक लाभ के लिए अंधे न हो जाएं, बल्कि वैज्ञानिक रूप से आधारित अनुमान के द्वारा सबसे पहले दीर्घकालिक प्रभाव निर्धारित करें। जो चीज किसी उत्पादन चक्र के लिए उच्छिष्ट है, वह दूसरे के लिए कच्चा माल है। इस तथ्य को हम समझें और उसका उपयोग करें।

सृष्टि-संतुलन शास्त्र के तीन ऐसे सिद्धांत निश्चित कर दिए गए हैं जिनके आधार पर प्रकृतिगत सहयोग शृंखला इस जगत् की व्यवस्था को धारण कर रही है। पहला सिद्धांत है परस्परावलंबन। दूसरा है मर्यादा और तीसरा है सम्मिश्रता। ये तीनों सिद्धांत अपने मिले-जुले क्रम से विश्व-प्रवाह को गतिशील कर रहे हैं। आध्यात्मिक जगत् में भी सत्यं, शिवं, सुंदरम् की कल्पना तथा सत्, चित्त, आनंद की विचारधारा है एवं सत्, रज, तम गुणों का अस्तित्व भी है। आदिकाल से मानव को ये तीनों तत्त्व अनुप्राणित करते आ रहे हैं। इन्हीं सबके आधार पर जीवधारियों की प्रवृत्ति-मनोवृत्ति की क्रम-व्यवस्था चलती है।

संतुलन शास्त्री मानते हैं कि उनके बताए हुए तीनों सिद्धांत आध्यात्मिक

जगत् से मेल खाते हैं। लेकिन आज का मानव सृष्टि-संतुलन को बिगाड़ रहा है। राष्ट्रसंघ की एक विशेष शाखा द्वारा वातावरण को जीवन योग्य बनाए रहने की समस्या पर विचार करने के लिए जो अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन स्टाकहोम में हुआ था उसका सम्मिलित स्वर भी यही था—"हमारे पास एक ही पृथ्वी है। इसे जीने लायक किसी भी कीमत पर बनाए रखना चाहिए।" सुझाव था प्राकृतिक भंडारों का कम-से-कम उपयोग किया जाए ताकि प्राकृतिक संतुलन न बिगड़ने पाए। प्रयोग की हुई वस्तुओं को पुन: काम के लायक बनाया जाए। बढ़ते हुए शोर को रोका जाए। वायु एवं जल के बढ़ते हुए प्रदूषण को रोका जाए। सेटेलाइट से मौसमों का पूर्वानुमान तो लगाया जा सकेगा पर यदि ऋतुएं ही बदल गई तो फिर क्या होगा ?

पृथ्वी का रक्षा कवच 'ओजोन परत' अब अभेद्य नहीं रह गया है। ओजोन एक गैस का नाम है, जिसकी पतली पर्त धरातल से २५ किलोमीटर की ऊंचाई पर पाई जाती है। ओजोन परत हमारी सुरक्षा मुख्यत: दो तरीकों से करती है। सूर्य द्वारा फेंकी गई पराबैंगनी किरणों को छानकर नीचे आने देती है। इससे इसकी हानिकारक क्षमता नष्ट हो जाती है। यह पृथ्वी के तापमान को नियंत्रित करती है। ओजोन गैस को ग्रीन हाउस गैस भी कहा जाता है। यदि निचले वायुमंडल में ओजोन की मात्रा बढ़ती है तो पृथ्वी पर मौजूद अधिकांश अवरक्त किरणें अंतरिक्ष में नष्ट होने से पूर्व भी सोख ली जाती हैं। इससे पृथ्वी का तापमान बढ़ता है। ओजोन के स्तर को नष्ट करने की मुख्य भूमिका हमारे आधुनिक उद्योग बना रहे हैं। इस विनाश में कई गैसें तथा पदार्थों का हाथ है। इन रसायनों में कार्बन, हाइड्रोजन, क्लोरीन तथा नाइट्रोजन तत्त्व पाए जाते हैं। इन्हीं तत्त्वों से वायुमंडल में पाई जानेवाली सूक्ष्म गैसें भी तैयार होती हैं।

इसके अलावा क्लोरोफ्लोरोकार्बन नामक एक अत्यंत हानिकारक रसायन तैयार होता है जो ओजोन स्तर को नष्ट करने में लगा है। यदि यह स्तर घट गया तो क्या होगा ? यदि ऐसा हुआ तो आगामी चालीस वर्षों में पृथ्वी का तापमान तीन डिग्री सेल्सियस बढ़ जाएगा, जिसका परिणाम अंटार्कटिका की बर्फ के पिघलने के रूप में होगा, जिससे समुद्र अपनी मर्यादा लांघ जाएगा। अभी तक यह मान्यता है कि समुद्र अपनी मर्यादा कभी नहीं तोड़ता।

उससे कैंसर, त्वचा रोग आदि फैलने लगेंगे। हमें अपनी आनेवाली पीढ़ियों के लिए एक जीवित रह सकने लायक दुनिया छोड़नी चाहिए न कि ऐसी दुनिया जिसमें केवल तबाही ही शेष रहे। हमें ओजोन परत को बचाना होगा। उसके लिए सब तरह के औद्योगिक प्रदूषणों को रोकना जरूरी है। ओजोन के स्तर नष्ट होने से अन्य हानिकारक परिवर्तन वातावरण में होने लगेंगे।

पहाड़ खोदे जा रहे हैं, बड़ी-बड़ी नदियों पर बांध बनाए जा रहे हैं। अधिक

बिजली उत्पादन के लिए करोड़ों रुपयों की योजनाएं तैयार हैं। पर इन सबका वातावरण पर क्या प्रभाव पड़ेगा, यह नहीं सोचा जा रहा है। पश्चिमी बंगाल में गंगा नदी की जो अन्य शाखाएं भागीरथी, हुगली, पद्मा आदि हैं उनकी दयनीय स्थिति हो गई है। नदियों के बीचोबीच बालू (रेत) इकट्ठा हो गया है। उस रेत के बड़े-बड़े भूखंड, टीलों पर लोग बसने लगे हैं। नदियों के बीच में रहकर तथा जंगलों से घिरे रहने के कारण इनका जीवन असुरक्षित हो गया है। वन्य-प्राणी के लिए ये सब आहार का काम करते हैं। बंगला देश में फरक्का बांध बन जाने से गंगा नदी की अन्य शाखाओं में पानी की कमी हो जाती है। भारत सरकार और बंगला देश में पानी के लिए खींचातानी होती रहती है। इस क्षेत्र में सुंदर वन है। जहां एक जमाने में प्रसिद्ध बंगाल टाइगर मिला करते थे। अब उतने घने जंगल नहीं रह गए हैं तथा शेरों में कमी हो गई है। अब उस नदी के बीचोबीच बसे हुए लोग आर्तस्वर से यही पुकारते हैं कि हमारी जिंदगी बचाई जाए।

आज का मानव प्रकृति से खिलवाड़ कर रहा है। यूरोप में 'क्लोनिंग' नामक एक प्रक्रिया शुरू की गई है। गाय की कोशिका में से एक विशिष्ट 'जीन' को अलग करके जीवाणु कोशिकाओं के साथ उसे मिलाने पर जो प्राप्त होता है उसे 'लौन' कहा जाता है। इस तरह से एक हार्मोन तैयार होता है। उसे बी० एस० टी० कहा जाता है। नियमित अंतराल में बी० एस० टी० के इंजेक्शन गायों को लगाकर दूध की मात्रा बढ़ाई जाती है। वे तीन-चार साल तक बिना गर्भ-धारण किए लगातार दूध देती रहती हैं। मानसेनटो कंपनी ने अरबों रुपए इस इंजेक्शन के द्वारा कमा लिए हैं।

वैज्ञानिक इस नतीजे पर नहीं पहुंच सके हैं कि हार्मोन के कारण उत्पन्न दूध किसी प्रकार हानिप्रद तो नहीं है। अभी सबकुछ प्रयोगशाला में हो रहा है परंतु यह तय है कि 'क्लोनिंग' नामक विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि अब संतान-उत्पत्ति के लिए विवाह या सहवास की कोई आवश्यकता नहीं है। यह सब अत्यंत रोचक है।

जैनेटिक विज्ञान ने लगता है अरबों सालों से चले आ रहे प्राकृतिक नियम और कार्यक्रमों को तोड़ने की योजना बना ली है। टमाटर में मनुष्य और जानवरों का जीन प्रत्यारोपित करके खरबूजे के आकार के टमाटर प्रयोगशाला में तैयार कर लिए गए हैं। इन मांसाहारी टमाटरों में मनुष्य और जानवरों में पाए जानेवाले प्रोटीन अधिक मात्रा में प्राप्त हो रहे हैं। ऐसा लगता है कि कुछ दिनों बाद जो दुनिया होगी उसमें आलू, टमाटर, बैंगन, कुत्ता, मुरगी, चूहे, गाय, भैंस, सबमें मनुष्य के 'जीन' के प्रत्यारोपण के कारण आदमियत आ जाएगी और मनुष्य में बिना संभोग के प्रजनन होने लगेगा। उस हालत में रूप-रंग, सुंदरता की

चाह के कारण एक कृत्रिम आवरण ढंक जाएगा, जिसके गर्त में कवियों के उच्छ्वास, प्रेमी-प्रेमिकाओं की हविश, प्रेम के पागलपन के उछाल सभी कुछ बेजान पत्थर की लकीरों के समान धूल चाटेंगे। भविष्य के गर्भ में क्या है, कहना मुश्किल है। लेकिन मानवता को प्रकृति की आवाज पहचाननी पड़ेगी। प्रकृति का सम्मान करना पड़ेगा।

पर्यावरण प्रदूषण से हमें युद्ध-स्तर पर लड़ना है परंतु पर्यावरण संरक्षण पर भी ध्यान देना होगा। पर्यावरण संरक्षण के लिए हमें प्रकृति और पर्यावरण से प्यार करना होगा।

प्रकृति के साथ छेड़छाड़ से भौतिक लाभ भले ही मिल जाए परंतु पदार्थ की, वस्तुओं की, प्राकृतिक छटा की मौलिकता लुप्त होती जा रही है। बड़े-बड़े आलू, बड़े-बड़े टमाटर, बड़े-बड़े भुट्टे, लेकिन रस में बेस्वाद। पौष्टिक तत्त्वों की कमी। यही हाल फलों का हो रहा है।

एक जमाना था जबकि अफ्रीका देश को अंधेरा महाद्वीप (डार्क कांटीनेंट) कहा जाता था। इतने घने विशाल जंगल थे कि उनके अंदर सूर्य की रोशनी भी नहीं पहुंचती थी। जंगली शेर, हाथी जानवरों की संख्या अनगिनत थी। लेकिन अब सारा महाद्वीप जंगलविहीन हो गया है। इन्हीं सबका असर पर्यावरण पर पड़ा है।

गंगा जैसी नदी का पानी दूषित होकर बह रहा है। हवाएं दूषित तथा विषाक्त हो गई हैं। वर्तमान युग वैज्ञानिक युग कहलाता है। आज का युगधर्म प्रत्येक शोध, अनुसंधान तथा आविष्कार का हो गया है। हम लोग आज से ५० वर्ष पूर्व पढ़ा करते थे कि मानव ने प्रकृति पर विजय कैसे पाई। हां, यह निश्चय है कि वर्तमान समय में प्रकृति पर कहीं-कहीं विजय पा ली गई है। पर किस कीमत पर यह विजय मिली है यह सबको विदित है। चारों तरफ भय, आशंका एवं तृतीय विश्वयुद्ध की चर्चा हो रही है। रासायनिक युद्ध-सामग्री, जीव प्राणियों को खत्म कर देनेवाली शक्तियां तथा अणु बम की ही आवाज सुनने को मिलती है।

वह कैसा समय था जब वसंत आते ही कलकल करती जल-धाराएं बहने लगती थीं। पक्षियों का कलरव और भी जोरों से गूंजता था। तेज हवा में टहनियां सरसराती रहती थीं और वन की ध्वनियां एक हर्षमय समूह गान में घुल-मिल जाती थीं। इस गीत को आदमी सुनता ही रह जाता था। कभी भी उसका जी नहीं उकताता था। लेकिन आज ऋतुएं आती हैं, चली जाती हैं और आज का आदमी बारहों महीने एक विशेष ताप से झुलसकर तप्त रहता है।

यह बात साफ है कि मनुष्य को अवश्य ही पर्यावरण का प्रदूषण बंद करना चाहिए। प्रकृति को क्षति पहुंचाए बिना प्राविधिक प्रगति का रास्ता खोजना

चाहिए। मनुष्य और प्रकृति के बीच संबंध का मुख्य शब्द इसीलिए एकता होना चाहिए न कि प्रतियोगिता। मनुष्य और प्रकृति को साथ ही जीना है। प्रकृति क्रम-विकास की सतत प्रक्रिया है। इसे हमें नहीं भूलना चाहिए।

आश्चर्य तो यह है कि वैज्ञानिकों ने अब सूर्य के धब्बों का विवरण दिया है। सूर्य के धब्बों का भीषण प्रभाव पृथ्वी पर पड़ेगा। सूर्य पर दिखाई देनेवाले धब्बे एक बार फिर कहर बरपा सकते हैं। इसे महान् अशुभ का द्योतक माना जाता है। माह अगस्त, १९८८ में पश्चिमी जर्मनी में सैनिक गतिविधियों के प्रदर्शन का आयोजन चल रहा था। हर्षमय वातावरण में हजारों लोग उपस्थित थे। अचानक तीन हवाई जहाज प्रदर्शन के लिए उड़े। ऊपर आकाश में उन तीनों की भिड़ंत हो गई। आग की लपटें निकलीं और गनीमत है कि जनसमुदाय से कुछ दूरी पर वे हवाई जहाज आ गिरे। करीब सौ-दो सौ आदमी प्रभावित हुए। ५० लोगों की मृत्यु घटनास्थल पर हो गई। यह अशुभ नहीं है तो क्या है? पिछले २५० वर्षों में इस सूर्य धब्बों (सन स्पॉट्स) का सबसे अधिक कुप्रभाव पृथ्वी पर पड़ा है। बिहार में भूकंप आया तथा हजार-दो हजार लोगों की मृत्यु हो गई। नेपाल में भी भूकंप के झटके आए और वहां भी लोगों की मृत्यु हो गई।

शताब्दियों से माना जाता है कि सूर्य के इन धब्बों के कारण लोगों का मानसिक संतुलन बिगड़ता है। अन्य विकृतियां आ जाती हैं। अभी तक वैज्ञानिक यह पता नहीं लगा सके हैं कि सूर्य पर ये धब्बे आते कैसे हैं और पृथ्वी पर इनका क्या विशेष प्रभाव पड़ता है। लेकिन यह स्पष्ट है कि सूर्य की सतह पर धब्बेनुमा इन ठंडे और गहरे क्षेत्रों का पृथ्वी पर कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य पड़ता है। सूर्य में होनेवाली उथल-पुथल से पृथ्वी का सीधा संबंध है। इसके कारण संचार-व्यवस्था गड़बड़ा सकती है। उपग्रह अपने कक्ष से हट सकते हैं तथा बिजली की लाइनें भी प्रभावित हो सकती हैं। कैसा युग आ गया है कि सूर्य पर धब्बे पड़ रहे हैं तथा चांद की छाती पर आदमी पैर रख रहा है।

विश्व के सारे देश युद्ध की सामग्रियों को जुटा रहे हैं। इन सबके ऊपर नियंत्रण कर सकना कठिन हो जाएगा। किसी भी दिन कोई भी सिरफिरा आदमी यदि किसी बड़ी सत्ता में आता है तो वह इन साधनों से दुनिया का सफाया कर सकता है। तृतीय विश्वयुद्ध होगा या नहीं, यह कहना तो मुश्किल है। पर आइंस्टीन कहा करते थे कि यदि तृतीय विश्वयुद्ध हुआ तो उसके बाद जो युद्ध युद्ध होगा वह ईंट-पत्थरों से लड़ा जाएगा। इस कथन से महाविनाश का दृश्य झांक रहा है तथा यह आवाज दूर की होते हुए भी कानों में सुनाई पड़ रही है।

सूर्यास्त हो जाने के बाद आज के मानव के लिए अंधेरा ही अंधेरा है। सूर्योदय होने पर भी आज का मानव अंधेरे की ही ओर जाता है। अंधेरा ही ढूंढ़ता है। प्रकाश रहते हुए अंधेरे के ढूंढ़ने का क्या अर्थ है? आखिर यह सब

क्यों हो रहा है? नियम, व्यवस्थाओं की चादर छोटी है, किंतु मनुष्य की महत्त्वाकांक्षाएं विशाल रूप ले चुकी हैं। लालसाएं सुरसा की तरह बढ़ती जा रही हैं। ज्ञान-विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र उसी के समर्थन में जुटे पड़े हैं तो इस खींचतान में उस चादर का फटना और मनुष्यों का शीत में ठिठुरना, प्रकृति की निष्ठुर नियम व्यवस्था में दबोचे जाना स्वाभाविक है। प्रकृति की सुव्यवस्था को छेड़ने की यह मानवीय भूल पता नहीं कब तक चलेगी और हमें कहां ले जाकर खड़ा करेगी। प्रकृति के नियमों को बदलना अपने-आपको धोखा देना है।

धरती पर तेजी से विनष्ट होती जा रही वनस्पतियों और जीवों की विभिन्न प्रजातियों को बचाने के लिए एक अंतरराष्ट्रीय कानून शीघ्र बनेगा। अंतरराष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण यूनियन तथा अनेक पर्यावरण संस्थाओं के अध्ययन से यह पाया गया है कि वनस्पतियों और जीवों की अनुमानतः १०० प्रजातियां प्रतिदिन विनष्ट हो रही हैं। धरती पर पाई जानेवाली ५० लाख से ३ करोड़ तक वनस्पतियां एवं जीव-जंतु के एक-चौथाई अगले २०-३० वर्षों में विनाश के कगार पर पहुंच जाएंगे। अनेक जैविक प्रजातियां पहचान में आने से पहले ही मर जाएंगी, जिसके लिए मनुष्य ही जिम्मेदार होगा।

१७

समारोह, उत्सव, युद्ध तथा श्मशान की आवाज

समारोह की मूलभूत आवाज है—उल्लास, उमंग और आनंद । उत्सव की आवाज में श्रद्धा, भक्ति और समर्पण की ललक, युद्ध में अहंकार, प्रतिशोध एवं स्पर्धा की गूंज और श्मशान की चिरंतन आवाज मानव-जीवन की नश्वरता है तथा मृत्यु के बाद मानव-शरीर का क्या होता है, उसकी अनुगूंज । लेकिन वर्तमान समय में इन चारों अवसरों से उठती आवाज और वाणी में परिवर्तन हो गया है । समारोह में उल्लास और उमंग का स्थान स्वार्थपरता तथा स्वविज्ञापन ने ले लिया है । त्योहारों तथा उत्सवों में बजाय श्रद्धा-भक्ति और समर्पण के दिखावा, छल-कपट एवं कृत्रिमता तथा संपत्ति अर्जन की आवाज प्रमुख है । श्मशान की नश्वरता की आवाज को भी भुलाया जा रहा है । सोचा जाता है कि मरने के बाद भी वे अपने धन और संपत्ति को अपने साथ ले जाएंगे । मृत्यु-भय को भुलाने के लिए सारे भौतिक साधनों का सहारा लिया जाता है । यदि कोई घटना निश्चित है तो वह मृत्यु ही है । इसे वे जानबूझकर विस्मृत करना चाहते हैं ।

हमारे देश में नित्य प्रति बंद, हड़ताल, प्रदर्शन, जुलूस निकलते रहते हैं । काम करने के दिन बरबाद होते रहते हैं । देश की प्रगति और विकास पर इन सबका गहरा असर पड़ रहा है । सारी दुनिया में काम-चोरी और आलस्य के लिए हम हिंदुस्तानी बदनाम हो गए हैं । इतने उत्सव तथा त्योहार मनाए जाते हैं कि उनका कोई लेखा-जोखा नहीं है । करीब पांच दशक पूर्व हम लोग छुट्टी कब मिलेगी, इसका ध्यान रखते थे और आज काम करने के दिन कौन से होंगे, यह पूछताछ करनी पड़ती है । देश में किसी राजनेता की मृत्यु हुई नहीं कि सारे देश में शोक छा जाता है । लगातार छुट्टियां घोषित कर दी जाती हैं । कई दिनों तक कामकाज ठप्प रहता है । कार्यालय बंद हो जाते हैं । उसी तरह से नेताओं के

जन्म-दिवस मनाने के लिए तथा उनकी जयंतियां मनाने के लिए मनमानी छुट्टियां दे दी जाती हैं।

समारोह

वर्तमान समय में स्वार्थी तत्त्व राजनीतिक दांव-पेचवाले किसी भी समारोह का सूत्रपात कर देते हैं क्योंकि उनके पास पैसा है और राजनीतिक पहुंच भी है। समारोह के उद्देश्य बड़े पुनीत और व्यापक गिनाए जाते हैं। लेकिन वे सब कागज पर ही होते हैं। हमारे देश में महान् आत्माओं की जन्म शताब्दियां मनाई जाती हैं लेकिन कार्यकर्ताओं में कथनी और करनी का अंतर बहुत रहता है। वर्तमान समय में करीब तेरह या चौदह विशेष दिवस मनाए जाते हैं; जैसे शिक्षक दिवस, हिंदी दिवस, सैनिक दिवस, विश्व स्वास्थ्य दिवस, मजदूर दिवस, महिला दिवस, स्वतंत्रता दिवस, गणतंत्र दिवस, संयुक्त राष्ट्रसंघ दिवस, पर्यावरण दिवस एवं रेड-क्रास दिवस। प्रत्येक दिवस का अपना एक विशेष महत्त्व है, उद्देश्य है तथा उनको मनाने के पीछे एकमात्र उद्देश्य यह रहता है कि उन दिवसों के आदर्श कायम रहें, हम संबंधित समुदाय की समस्याओं को समझें और उनके निराकरण का उपाय ढूंढ़ें तथा देश की उन्नति का मार्ग प्रशस्त करें। लेकिन मैं समझता हूं कि इन समारोहों के आयोजनकर्ता पूर्णरूपेण समर्पित होकर सचाई से इन आयोजनों को नहीं करते। उनके अंदर देश की भलाई की भावना सर्वोपरि नहीं रहती। दुःख तो इस बात का है कि वे देश के नाम पर अपना उल्लू सीधा करते रहते हैं।

हमारे देशवासियों का चरित्र ही कुछ ऐसा अजीब है कि हम अपनी बहारों तक को कायम नहीं रख सकते। आपस में लड़कर मन-मुटाव पैदा कर अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए सब आदर्शों की तिलांजलि दे देते हैं। राज्यसत्ता का लोभ एवं धन-संचय करने का जरिया तथा एक-दूसरे को नीचे गिराने की प्रवृत्ति सब लोगों के मस्तिष्क में छाई रहती है। स्वार्थमुक्त होकर, निष्पक्ष होकर, अहंकार-विहीन होकर कोई भी नेता देश के लिए काम नहीं करना चाहता। जीवन के नुकीलेपन तथा कंटीलेपन को कोई बंद नहीं करना चाहता। उलझनें पैदा करके ही वह सफल राजनीतिक जीवन बिता सकता है। वर्तमान समय में नकारात्मक भावनाओं को भी सुधारने की आवश्यकता है। भिन्न-भिन्न समारोहों में किस तरह से बेगार टाला जाता है या यों कहें कि केवल खानापूरी की जाती है।

आर्यसमाज, विश्व हिंदू परिषद, गायत्री परिवार आदि संस्थाएं बड़े-बड़े समारोहों का आयोजन करती हैं। भाषण भी दिए जाते हैं लेकिन उन विचारों को जीवन में बहुत कम लोग उतारते हैं। राष्ट्र-प्रेम, एकता, राष्ट्रभाषा-प्रचार की ध्वनि कुछ कोनों में ही सुनाई पड़ती है। जबकि सारा देश इन भावनाओं से वैसे ही सराबोर हो जाए जैसे कि हम राष्ट्रगीत गाते समय एक स्वर से गाते हैं।

राष्ट्रीय गीत के मूलभूत मर्मों को समझें तथा समझाएं। २६ जनवरी गणतंत्र-दिवस पूरे देश में एक बहुत बड़े समारोह के रूप में मनाया जाता है। मैं तो कहता हूं कि उस दिवस को समारोह के रूप में मनाने के बजाय हम उसे अपने देश का सबसे बड़ा राष्ट्रीय पर्व मानें। आम जनता को गणतंत्र क्या है, उसके महत्त्व को बताया जाए और देशभक्ति तथा देश-प्रेम की भावना को ही प्राथमिकता के तौर पर उजागर किया जाए। इंग्लैंड, अमेरिका जैसे प्रजातांत्रिक देशों में स्वतंत्रता के नाम पर, गणतंत्र के नाम पर जनता पागल हो जाती है। हमारे यहां वर्तमान समय में बहुत-से लोग गणतंत्र दिवस की सैन्य परेड को देखने तक नहीं जाते। राष्ट्रीय गान होता है तो अपनी जगह पर खड़े तक नहीं होते। अतीत के गौरव तथा महत्त्व को दोहराया जाता है। पर आज हम क्या कर रहे हैं, इसका विवरण संक्षिप्त रहता है।

कुछ दिन पूर्व तमिलनाडु विधान सभा में चप्पलें तथा जूतों को फेंकने की आवाज सुनाई पड़ी थी। पुलिस द्वारा लाठी-चार्ज भी किया गया था। संसदीय शासन प्रणाली इस स्तर तक जा सकती है, इसका किसी को अंदाज नहीं था। यह कैसी विडंबना है कि जनता के द्वारा चुने हुए सदस्य ही प्रजातंत्र की गरिमा को धूल में मिला देते हैं। २६ जनवरी, १६२८, रावी तट की वह प्रतिज्ञा, गूंज के सामने चप्पलों और लाठीचार्ज की ध्वनि में कितना अंतर है यह समझने की बात है। अनुशासनहीनता, अराजकता तथा हिंसा का तांडव नृत्य और वह भी विधान सभा सदस्यों द्वारा अत्यंत खेदपूर्ण है।

उत्सव

उत्सव अर्थात् प्रेरणा एव जागृति पैदा करने का माध्यम। वसंतोत्सव, गणेशोत्सव आदि के द्वारा जनता न केवल मनोरंजन प्राप्त करती है बल्कि उन अवसरों के महत्त्व को भी सुनती और समझती है। रूस और जापान में हमारी भारत सरकार द्वारा भारत महोत्सव का आयोजन किया गया था। उन आयोजनों में भारी सफलता मिली है। परंतु हम यह भूल जाते हैं कि इन उत्सवों का रचनात्मक स्वरूप क्या रहता है। यदि केवल मनोरंजन के लिए इनका आयोजन होता है तो मैं समझता हूं कि वह पैसे का दुरुपयोग है और साथ ही साथ मानवीय ऊर्जा का भी।

हमारे पूर्वजों ने वर्ष-भर में चार बड़े-बड़े पर्वों की कल्पना की थी और तदनुसार दशहरा, दीवाली, वसंत पंचमी एवं होली हमारे देश में पूरे उमंग के साथ मनाए जाते हैं। इन चारों पर्वों के पीछे चार सामाजिक तत्त्वों को संरक्षण दिया गया था—सामाजिक संपर्क बना रहे, देश की ऋतुओं के महत्त्व को हम समझते रहें, दैनिक जीवन के आघात तथा तनावों को कम करते रहें तथा अपनी

पुरानी सभ्यता एवं संस्कृति के संस्कारों को दोहराते रहें। आज जीवन के लिए महान् उपयोगी ये चारों तत्त्व धीरे-धीरे लुप्तप्राय हो रहे हैं।

गणेशोत्सव में आरती के बाद ध्वनि विस्तारक यंत्र से अनुरोध किया जाता है कि दर्शक वृंद आरती को सफल बनाएं। अर्थात् अधिक से अधिक पैसा चढ़ाएं। यह आरती का न केवल अपमान है बल्कि हमारी मनोवृत्तियों का द्योतक है। लोग भगवान् की आरती लेकर अपने को धन्य समझते थे। लेकिन आज के युग में यह कहा जाता है कि हम भगवान् की आरती को सफल बनाएं। इससे बड़ी अवनति का लक्षण क्या हो सकता है।

दशहरे के पर्व को विजयादशमी कहा जाता है अर्थात् धर्म की अधर्म पर विजय। उसी के प्रतीकस्वरूप लोग एक-दूसरे से मिलकर पर्व के महत्त्व को समझते थे एवं खुशी दिखाने के लिए सोने का आपस में वितरण करते थे। धीरे-धीरे सोने का स्थान सोन पत्ती ने ले लिया है। आज अधर्म का ऐसा बोलबाला है कि रावण के पुतले को ही सारे शौर्य के साथ जलाकर इस पर्व की इतिश्री मान ली जाती है। रावण का पुतला जला अर्थात् समाज का अधर्म समाप्त हो गया–कुछ ऐसी विचित्र धारणा लोगों के मन में हो गई है। आज अधर्म-अन्याय का ऐसा बोलबाला है कि इस पर्व में बजाय खुशियों के मानसिक वेदना से लोग पीड़ित हो जाते हैं।

दीवाली एक ऐसा पर्व है जिसमें हमारे देशवासी आनंद तथा खुशी से नाच उठते थे। वर्षा ऋतु के बाद देश की संपन्नता—कृषि उपज के रूप में सामने आ जाती थी। वर्तमान समय में इस पर्व पर लोग जुआ, शराब तथा अन्य तरीकों से आनंद प्राप्त करना चाहते हैं। जिन लोगों के पास नंबर दो का पैसा रहता है वे इस बात का हिसाब लगाते हैं कि उस धन को नंबर एक का पैसा कैसे बनाया जाए। इस प्रवृत्ति के कारण समाज में अन्य खराबियां भी उत्पन्न हो रही हैं।

वसंत पंचमी से पहले मकर संक्रांति का त्योहार आता है। इस त्योहार को देश के विभिन्न प्रांतों में भिन्न-भिन्न नामों से मनाया जाता है। महाराष्ट्र में गड़ी पड़वा और दक्षिण भारत में पोंगल के नाम से इस पर्व को मनाते हैं। इसे नए वर्ष का आगमन माना जाता है। अच्छे-बुरे कामों का लेखा-जोखा रखा जाता है तथा आनेवाले वर्ष के लिए लक्ष्य निर्धारित किए जाते हैं। आनंद का वातावरण बनता है। पर आज ये सारी सुखद आवाजें क्षीण हो रही हैं। वसंत पंचमी—वसंतोत्सव एक अत्यंत रमणीक पर्व है। इस दिन सरस्वती की वंदना अर्थात् ज्ञान, विद्या तथा संगीत की देवी की आराधना की जाती है। पीली साड़ियां पहनकर महिलाएं वसंती मौसम का आभास देती हैं। सर्वत्र मधुर संगीत तथा पूजा-आरती का आयोजन होता है। परंतु आज इस पर्व पर ये सब आयोजन नहीं के बराबर हैं। लोगों को यह भी मालूम नहीं रहता कि वसंत पंचमी कब आई और कब चली गई।

होली हिंदू समाज का एक ऐसा पर्व है जिसमें ऊंच-नीच का कोई खयाल नहीं रखा जाता। भाईचारा, प्रेम एवं सद्भाव से लोग आपस में मिलते-जुलते हैं। वर्ष-भर के वैमनस्य, मनमुटाव को आत्मीयता की पृष्ठभूमि में भुला देना चाहते हैं। रंग और गुलाल से वातावरण को सुरभित बनाते हैं। परंतु आज होली अर्थात् वर्ष-भर की कटुता को होली मिलने के बहाने उड़ेलना, कटुता की वृद्धि तथा रंग और गुलाल की आड़ में तेजाब या डामर का प्रयोग कर शारीरिक पीड़ा देना समाज की दृष्टि में सब गलत कार्य करते हुए भी अपने को सभ्य बताना या आदर्शवादी बनने की कोशिश करना।

समारोहों, उत्सवों एवं पर्वों की वह जीवनदायिनी प्रेरणादायक आवाजें आज क्यों नहीं सुनाई पड़ रही हैं, यह एक विचारणीय प्रश्न है। मैं समझता हूं कि सिनेमा और विशेषकर दूरदर्शन की नई सभ्यता ने इन अवसरों में निहित सुख और आनंद को हमसे छीन लिया है। दूरदर्शन की एक ऐसी सभ्यता पनप रही है कि उत्सव में निहित चारों तत्त्व मनुष्य के जीवन से धीरे-धीरे क्षीण होते जा रहे हैं। उत्सवों तथा पर्वों में ही लोग एक-दूसरे से मिलते थे। पर अब दूरदर्शन की दीपावली, होली ही हम देखते हैं, वास्तविकता से कोसों दूर होते जा रहे हैं। हर परिवार स्वकेंद्रित हो रहा है। समाज के रिश्तों की कौन कहे, बाप-बेटे का रिश्ता, भाई-भाई के रिश्ते टूट रहे हैं। बिखर रहे हैं। इन कुछ ही वर्षों में दूरदर्शन ने वर्तमान पीढ़ी को गुमराह तो कर ही दिया है। देखिए भविष्य में यह पीढ़ी क्या करेगी, क्या सोचेगी और किस रूप में अपना जीवन व्यतीत करेगी। मुझे तो यह पूर्वाभास है कि जीवन के सारे तत्त्व तथा सिद्धांत एक तरफ रखे रह जाएंगे और नई पीढ़ी भौतिकवाद के चक्कर में अपने मौलिक आदर्शों को अवश्य भूल जाएगी। सप्ताह के अंत में रविवार को सवेरे या शाम लोग एक-दूसरे के यहां जाकर सामाजिक कर्तव्यों का निर्वाह करते थे, पर अब दूरदर्शन में सवेरे के समय जो सीरियल दिखाया जाता है।

युद्ध

युद्ध की आवाज है सर्वत्र विनाश। सब तरह का विनाश। भिन्न-भिन्न देशों में अभी जितने अस्त्र-शस्त्र बने रखे हुए हैं उनके द्वारा कुछ नहीं तो कम-से-कम बीस बार पूरे विश्व का विनाश किया जा सकता है। सभ्यता की उन्नति में अवरोध तथा मानवीय गुणों का ह्रास एवं आसुरी प्रवृत्तियों का उदय ही युद्ध की आवाज है। वर्तमान समय में ईरान और इराक के युद्ध की आवाज को पूरे संसार ने सुना है। युद्ध की विभीषिका का रूप मानव ने दो विश्वयुद्धों में देख लिया है। आज तक जितने युद्ध हुए हैं उनके पीछे मनुष्य का अहंकार तथा स्वयं के वर्चस्व को कायम रखना ही रहा है। आपस में स्पर्धा, शक्ति-संग्रह की होड़ लगी हुई है।

वर्तमान समय में साम्राज्यवाद नाम की चीज नहीं है। पर सत्ता-संतुलन को लेकर महाशक्तियां अपनी-अपनी सैन्य-शक्ति को बढ़ाती रही हैं। मानव की सदियों से यह प्रवृत्ति रही है कि दूसरों पर हमारा वर्चस्व बना रहे। अहंकार की तृप्ति होती रहे। वर्तमान युग में तृतीय विश्वयुद्ध की आवाज अभी से ऐसी सुनाई पड़ रही है मानो कोई दूर से पुकार रहा हो—बचो, संभलो, सर्वनाश से बचो। अस्त्र-शस्त्र में एक छोटा-सा अंगार सब कुछ कर सकता है। और वह अंगार होगा मानव की अभिलाषा—दूसरों को जीतने की तथा उन्हें अपने काबू में रखने की।

भगवान् श्रीराम युद्ध से उत्पन्न क्लेश, दारुण दुःख तथा नर-संहार और मानव-संताप को समझते थे। अतएव युद्ध से पहले रावण को एक अवसर और देना चाहते थे। यद्यपि विभिन्न व्यक्तियों के द्वारा रावण को युद्ध से विरत करने का प्रयास किया गया था। सभी उस प्रयास में असफल रहे। पर प्रभु एक और अंतिम प्रयास के पक्ष में थे। अंगद को दूत बनाकर भेजा गया पर अहंकारी रावण ने संधि-प्रस्ताव को ठुकरा दिया।

महाभारत युद्ध के पहले भगवान् कृष्ण स्वयं धृतराष्ट्र तथा कौरवों से मिले थे, लेकिन दुर्योधन ने पांडवों के एक छोटे से प्रस्ताव को भी टाल दिया था। पांडव अपने पांच भाइयों के लिए केवल पांच गांव पाकर ही संतुष्ट हो जाएंगे, ऐसा उनका प्रस्ताव था। लेकिन दुर्योधन के अहंकार ने समझौता नहीं होने दिया।

प्रथम विश्वयुद्ध के पहले भी इंग्लैंड तथा जर्मनी के बीच कई संधि-वार्ताएं हुई थीं पर सब असफल रहीं। युद्ध होकर ही रहा। इसी तरह द्वितीय विश्वयुद्ध को भी टालने के कई प्रयत्न किए गए, पर युद्ध होकर ही रहा। इन विश्वयुद्धों के कारण मानवता की उन्नति तथा सभ्यता कई वर्षों के लिए पीछे सरक गई। यह दुर्भाग्य है कि कुछ लोगों का मत है कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद वैज्ञानिकों ने अभूतपूर्व उन्नति की है। लेकिन यह उन्नति युद्ध को और अधिक तीव्रता से पैदा कर रही है।

कहने का तात्पर्य यह है कि युद्ध हुए हैं, होते रहेंगे और युद्ध को कोई टाल नहीं सकता। एक युद्ध होता है और दूसरे युद्ध की भूमिका बन जाती है। १९४५ में द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद संयुक्त राष्ट्रसंघ का जन्म हुआ। यू० एन० चार्टर का प्रमुख मुद्दा यही है कि भविष्य की पीढ़ियों को युद्ध की विभीषिकाओं से बचाने का पूरा-पूरा प्रयास किया जाए। लेकिन गत ४५ वर्षों में कितने युद्ध हो चुके हैं और इसका एकमात्र कारण एक-दूसरे के प्रति अविश्वास तथा मूलभूत शंकालु चिंतन से मानव स्वयं अपने अंदर भूत पैदा कर लेता है। आदमी को आदमी से डर लगने लगता है।

विदेश में विजेताओं ने तो बड़े-बड़े अद्‌भुत पच्चीकारीयुक्त गिरजाघरों को नष्ट किया है। आखिरकार मंदिरों, गिरजाघरों को धूल-धूसरित करने का क्या

अभिप्राय हो सकता है। मंदिरों और गिरजाघरों की छतों के ऊपर न तो तोप होती हैं और न ही आजू-बाजू मशीनगन तथा बैटरी होती हैं। इनको नष्ट करने का क्या कारण रहा होगा? अहंकारी विजेताओं का झूठा दंभ कि आखिर वे सर्वोत्तम स्थापत्य कला के चिह्न नहीं रखेंगे तो एक सूनापन, एक वीरानियत का साम्राज्य होगा, जिसमें इन क्रूर विजेताओं की आवाज गूंजती रहेगी। ऐसी आवाज जो न तो कोई सुनेगा और न जो कभी समाप्त होगी। लेकिन उनके अहंकार की आवाज की प्रतिध्वनि तो आती रहेगी। इसी में वे संतोष पाते हैं। यही भावना युद्ध की जननी है।

जब भी किसी जाति के स्वाभिमान को नष्ट किया जाता है तो उसके मर्मस्थल में ठेस पहुंचती है। जब उसके पुण्य-स्थलों को ढहाया जाता है, उसके अंदर के सारे सौंदर्य की कल्पना को नष्ट किया जाता है तो वह जाति अपने-आप गिर जाती है। उसकी आत्मा में यह शक्ति नहीं रहती कि वह अपना पुनरुत्थान कर सके। उसके अंदर आत्महीनता की भावना प्रबल हो जाती है। वह न तो विरोध कर सकती है और न ही संघर्ष कर सकती है। लेकिन यह सब जानते हैं कि किसी देश की सभ्यता को नष्ट करना एक अमानवीय कृत्य है तथा मानवीय नैतिकता के विरुद्ध है। परंतु विजेता तो केवल अपनी जीत की ही बांसुरी बजाते हैं। उन्हें इनसानियत, नैतिकता से क्या लेना-देना है! भारत में भी मुगलों ने जब धावा किया था, उन लोगों ने यहां के मंदिरों, यहां के रमणीक स्थानों तथा कलाकृतियों को नष्ट किया था। अतः आज हमारा कर्त्तव्य है कि उन मंदिरों का पुनरुद्धार कर अपनी अमूल्य धरोहर की रक्षा करें तथा जाति के स्वाभिमान को जाग्रत् करें।

प्रश्न यह उठता है कि यदि तृतीय विश्वयुद्ध हुआ तो क्या होगा? इस विषय की विवेचना मैंने उपसंहार में की है। यहां पर इतना लिखना आवश्यक समझता हूं कि भूतकाल में युद्धों से मानवता का क्या हाल हुआ, यह हम समझें और इस तथ्य को रेखांकित करें कि किसी भी युद्ध को सदैव के लिए न होने दें। उसी हालत में मानवता बच सकेगी। हम युद्ध को ही मृत्युदंड दें तब ही यह संभव है। युद्ध को ही सदैव के लिए समाप्त कर दें। युद्ध मनुष्य को पशु बना देता है, केवल पशु। वह विवेकहीन, निर्मम होकर बड़े से बड़ा अधर्म करने के लिए तत्पर हो जाता है। जीवनमूल्यों की रक्षा, शांति की स्थापना के लिए युद्ध किए जाते हैं। लेकिन अब युद्ध केवल राज्य-विस्तार एवं स्वार्थलोलुपता के कारण हो रहे हैं। युद्ध की धर्मसंगत आवाज पुनः सुनाई पड़नी चाहिए।

श्मशान

इसकी आवाज है मृत्यु। 'राम नाम सत्य है।' मानव-शरीर नश्वर है। साथ-ही-साथ यह भी आवाज आती है कि मरनी दिखाए करनी। जो कर्म मनुष्य ने

जीवन-भर किया है उसी के अनुसार आगे की भी गति होगी। मृत्यु के साथ धन-संपत्ति नहीं जाती। सब यहीं रखा रह जाता है। मैं समझता हूं कि कबीर ने इस आवाज को जीते-जी बड़े ध्यान से सुना था, समझा था। इसीलिए कबीर ने अपना सारा जीवन पूरी सजगता के साथ व्यतीत किया। अपने शरीर तथा आत्मा को कलुषित नहीं होने दिया।

या चादर सुर नर मुनि ओढ़ी, ओढ़ि के मैली कीन्हीं चदरिया।
दास कबीर जतन से ओढ़ी, जस के तस रख दीन्हीं चदरिया।।

कबीर का यह दोहा अपने-आप में मुखर है। इस दोहे में कबीर के जीवन का दर्शन झांक रहा है। आज का आदमी मृत्यु की आवाज को नहीं सुनना चाहता। महाभारत का एक शिक्षाप्रद अंश है जिसमें काकभुशुंड यक्ष से पूछते हैं कि इस संसार में सबसे अधिक आश्चर्यजनक बात क्या है ? यक्ष ने उत्तर दिया कि मनुष्य अपने आसपास के सबको मरते हुए देखता है लेकिन अपने बारे में कभी यह नहीं सोचता कि एक दिन उसकी भी मृत्यु होगी। यदि कोई मनुष्य वैसा सोचता भी है तो भय के कारण मृत्यु की कल्पना करके आंखें मूंद लेता है। यह कथन आज भी पूर्णत: सत्य है। श्मशान में ही मनुष्य अज्ञान के आवरण को फेंककर एक क्षण के लिए संसार की असारता का अनुभव कर लेता है। दुर्जन से दुर्जन मनुष्य भी एक मिनट के लिए जीवन के सही अंत को समझता है। श्मशान को साधन-भूमि माना गया है। श्मशान शिव की निवास-भूमि है। यहां पर मनुष्य एक क्षण के लिए अंतरात्मा की आवाज सुनता है। शव को देखकर शिव बन जाता है। यदि मानव इसी अनुभूति को स्थिर कर ले तो वह गौतम बुद्ध बन सकता है। सिद्धार्थ ने एक रोगी, एक बूढ़े एवं एक मुर्दे को देखकर संसार त्याग दिया था और वे गौतम बुद्ध बन गए थे। सही अर्थों में उन्होंने अपने जीवन को सार्थक बनाया था।

यदि मनुष्य अपने को सच्चे अर्थों में मरणशील समझने लगे तो जीते-जी पृथ्वी पर ही वह स्वर्ग का निर्माण कर सकता है। सारे पापों से दूर रह सकता है।

श्मशान के मैदान में आकर ही जीवित मनुष्य सोचता है कि एक दिन तो सबको जाना ही है। फिर कुछ ऐसा काम क्यों न कर लिया जाए कि हम अमर हो जाएं। अर्थात् ऐसे क्षणों में अमरत्व की तमन्ना जागती है। और यह स्थान होता है श्मशान। मनुष्य यदि सही अर्थ में श्मशान की आवाज को समझ ले तो वह कबीर जैसा अपना जीवन व्यतीत कर सकता है। कितने ही प्रलोभनों, दुर्व्यसनों तथा अमंगलकारी विचारों से दूर रह सकता है, लेकिन ऐसा होता नहीं।

एक तांत्रिक श्मशान में ही अपनी साधना करता है। वामाचार की साधना वह यहीं रहकर पूरी करता है। शव, शराब और श्मशान में रहकर, मांस-मदिरा पीकर निर्वस्त्र नारी के साथ संबंध रखता है। वह सिद्धि पाना चाहता है। वह जानना यह चाहता है कि मृत्यु के बाद क्या है, क्या होता है, आत्मा नाम की चीज

यथार्थ में क्या है आदि।

श्मशान-स्थल पर एकत्रित लोगों के बीच होनेवाली वार्ता सुनकर ऐसा लगता है कि जीवन-दर्शन का सारा ज्ञान उन्हीं लोगों में है। नौबत तो यहां तक आ जाती है कि कुछ लोगों को श्मशान में वैराग्य आ जाता है जो घर वापस लौटते ही समाप्त हो जाता है। आदमी ज्यों-का-त्यों बरताव करने लगता है। अंत में यह कहना अनुचित न होगा कि यदि मनुष्य मृत्यु को परम सखा मानकर जीए तो उस आदमी का अधिक कल्याण होगा।

पाश्चात्य जगत् के विख्यात दार्शनिक बरट्रेंड रसेल का कथन है कि यदि संसार में केवल सुख और आनंद ही रहें तो धर्म की आवश्यकता नहीं रहेगी। ईश्वर का, धर्म का स्मरण मानव उसी क्षण करता है जब उस पर विपत्ति आती है या वह दुःखी हो जाता है। मानव यदि श्मशान की आवाज को कबीर की तरह याद रखे और सचाई के साथ जीवन व्यतीत करने लगे तो उसका जीवन सुखमय तो रहेगा ही, उसके साथ ही साथ वह निष्कलंक बना रह सकता है।

घटना उस समय की है जब काशी में संत कबीर ने अर्थी के पीछे 'राम नाम सत्य है' बोलनेवालों से एक प्रश्न पूछा था—राम नाम सत्य क्यों बोलते हो? क्या मुर्दा सुनता है?

लोगों ने कहा कि मुर्दा न बोल सकता है और न ही सुन सकता है। मृत आदमी भला 'राम नाम' कैसे बोल सकता है! तब कबीर ने कहा कि इसका अर्थ यह हुआ कि—"जो राम नाम नहीं बोलता वह भी मृत है।" यदि मनुष्य 'जीते जी राम नाम सत्य है' की आवाज को सुनता रहे तो वह सदैव सुखी रह सकता है।

मृत्युशैया पर जीवन-भर के सारे पाप, सारे कुकृत्य साकार हो उठते हैं। जो भी अधर्म किया गया है, उसके लिए पश्चात्ताप की आवाज सुनाई पड़ने लगती है। जीवित मनुष्य श्मशान में मुरदे को जलते हुए देखकर एक क्षण के लिए अपने जीवन की ओर भी झांकता है। उस क्षण के विचारों को आत्मसात कर वह अपने शेष जीवन को पुण्यमय तथा सुखमय बना सकता है। जीवन विकृति है और मरण प्रकृति है।

१८

असंतुलित-अर्धविक्षिप्त मानव की आवाज

जीवन के हरएक क्षेत्र में संतुलन को बनाए रखना एक सफल व्यक्तित्व की निशानी है। संतुलन अर्थात् विवेक का उपयोग, साधारण ज्ञान एवं सामाजिक रीति-रिवाजों को समझकर जीवनयापन करना। संतुलन बनाए रखने के लिए व्यावहारिकता की जरूरत पड़ती है। आचार-विचार और व्यवहार में सामंजस्य का नाम संतुलन है। वैचारिक, व्यावहारिक, पारिवारिक तथा सामाजिक संतुलन बनाए रखना बहुत बड़ी उपलब्धि है। ऐसे ही लोग हर स्थिति को सामान्य बनाए रखने की क्षमता रखते हैं। कुछ लोग इसी बात पर मतभेद होने से या बहस होने पर शीघ्र ही क्रुद्ध हो जाते हैं। स्थिति को संभालने के बजाय बात बढ़ाते हैं। इसका मुख्य कारण होता है असहिष्णुता तथा दंभ की भावना। झूठा अभिमान जिसे 'ईगो' कहते हैं उसी के कारण मनुष्य अपना व्यावहारिक संतुलन खो बैठता है। वैचारिक संतुलन बनाए रखने के लिए गंभीर ज्ञान तथा विवेक की जरूरत पड़ती है। परंतु किसी एक विचारधारा के दास हो जाने के बाद तर्क तथा न्याय की बातें समझ में नहीं आतीं। वह अपनी ही बात को सच मानता है तथा सबको अपने मत को मनवाने के लिए बाध्य करता है।

समाज में जितने भी कल्ट अर्थात् वाद पैदा हुए हैं; जैसे साम्यवाद, समाजवाद, जातिवाद या साम्राज्यवाद, इन सबके माननेवाले लोग अपना नजरिया एकांगी कर लेते हैं। खुला दिमाग नहीं रखते। यहीं से मानसिक असंतुलन प्रारंभ हो जाता है। पारिवारिक संतुलन का आदर्श हमारे पूर्वजों ने सामूहिक कुटुंब की रचना करके बनाया था। धीरे-धीरे पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव के कारण विवाह-पद्धति में अंतर आने के कारण सामूहिक कुटुंब धीरे-धीरे कम होते जा रहे हैं। एक इकाईवाला छोटा परिवार, 'हम दो हमारे दो' की आवाज के कारण, भरसक

प्रयत्न करने पर भी आपस में संतुलन नहीं रख पाते क्योंकि पति-पत्नी दोनों किसी-न-किसी कार्य में लगे रहते हैं। और आगे-पीछे किसी न-किसी बिंदु पर मनमुटाव होते ही संतुलन जाता रहता है। कोई बीच-बचाव करनेवाला, न्याय की बात बतानेवाला नहीं रहता। युवावस्था आवेशमय होती है। वह क्रोध से आग हो जाती है। और क्रोध आते ही व्यवहार में असंतुलन आप-ही-आप आ जाता है। जोर-जोर से बोलना, अपशब्द निकालना तथा कठोर वाणी का बोलना स्वाभाविक हो जाता है।

समाज का वर्ग-संघर्ष इतना भीषण हो गया है कि परिणाम में जातिवाद से भी अधिक जहरीला सिद्ध हो रहा है। अति धनिक, धनवान वर्ग, मध्यम वर्ग एवं मजदूर एवं किसान ये चार श्रेणी के लोग समाज में एक-दूसरे के प्रति न केवल शंकालु हो गए हैं बल्कि एक-दूसरे को नीचा दिखाने की योजना बनाते रहते हैं। आज धनी आदमी धनी हो रहा है तथा गरीब और अधिक गरीब हो रहा है। जब कोई दूसरे को नुकसान पहुंचाने की बात सोचेगा, किसी का गला काटना चाहेगा, किसी की टांग खींचना चाहेगा, किसी के पीठ पीछे छुरा भोंकना चाहेगा तो क्या ऐसा मनुष्य अपने अंदर संतुलन बनाए रख सकता है? षड्यंत्र की बू आते ही मानसिक असंतुलन दृष्टिगोचर होने लगता है, चाहे वह कपटपूर्ण, छलपूर्ण, बनावटी बोली से अपने अंदरूनी विचारों की लीपापोती करे पर उसकी कुटिल वाणी पहचानी जाती है। समाज में मजहब को लेकर, धर्म के ठेकेदार आम आदमी को गुमराह करते रहते हैं। समाज में सब जगह आग लगी हुई है।

मनुष्य का चित्त चंचल होता है, भला मनुष्य बुरा और बुरा भला हो जाता है। शत्रु मित्र और मित्र शत्रु बन जाता है। अतः इस पर कौन विश्वास करे, यही एक समस्या बन जाती है। जो शंकालु होगा वह सदैव असंतुलित रहेगा। इसीलिए मुख्य कार्यों को दूसरों पर न छोड़कर अपने सामने ही वह कराना चाहता है। लेकिन हर पग पर, हर मामले में किसी-न-किसी पर विश्वास तो करना ही पड़ेगा। और जैसे ही किसी ने गफलत की वैसे ही शंकालु व्यक्ति अपना धैर्य खो बैठता है। उसकी वाणी असंयत हो जाती है। किसी पर भी पूरा-पूरा विश्वास कर लेने से स्वार्थ और अर्थ दोनों का नाश होता है। दूसरों पर पूरी तरह विश्वास करना अकालमृत्यु को मोल लेने जैसा है। विशेषकर आज की दुनिया में। प्रायः देखा गया है कि जिस मनुष्य की प्रवृत्ति हर एक आदमी पर शंका करने की होती है उसे शांति नहीं मिलती। ऊहापोह तथा मानसिक ग्लानि से वह पीड़ित रहता है। मानसिक असंतुलन की स्थिति पर वह आ जाता है।

प्रायः देखा जाता है कि ऐसी स्थिति में आदमी अपनी आंखें मूंद लेना चाहता है पर परिस्थितियां ऐसी बन जाती हैं कि उसी के सामने किसी का कत्ल हो जाता है। उसकी अंतरात्मा कराह उठती है। उसका विवेक उसे टोकता है

और उसकी तीव्र इच्छा रहती है कि सचाई बता दे। जिसने खून किया है उसका नाम बता दे पर वह निःशब्द हो जाता है। उसके मुंह से बोली नहीं निकलती क्योंकि उसे डर है कि कहीं कुछ बोलने से उसी का खून न हो जाए। इस मनः-स्थिति में न तो वह ठीक-ठीक जी सकता है और न ही वह आराम से सो सकता है। उसके अंदर एक संघर्ष चलता रहता है। ऐसा व्यक्ति असंतुलित न होगा तो और कौन होगा ? आगे-पीछे ऐसे ही लोग अर्द्ध-विक्षिप्त की अवस्था में चले जाते हैं। इसी तरह के कई ऐसे अवसर मनुष्य के जीवन में आते रहते हैं। वैसे क्षणों में मनुष्य को धैर्य से काम लेना चाहिए। कभी-कभी इतना भयानक धर्मसंकट उपस्थित हो जाता है कि स्थिति यहां तक आ जाती है कि कुछ बताता है तो मुश्किल, नहीं बताता है तो मुश्किल। हर इनसान को कभी-न-कभी ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ता है। वैसे क्षणों में वह कितना विचलित हो जाता है तथा उसके व्यवहार में कितना अंतर आ जाता है, यह समझने की बात है। ऐसे ही आदमियों का मन खिन्न हो उठता है, वह धैर्य खो बैठता है तथा मन की सारी शांति चली जाती है। कभी-कभी तो 'भई गति सांप छछूंदर केरी' वाली स्थिति आ जाती है। ऐसे प्राणियों की दशा दयनीय हो जाती है।

कई आदमी निजी अनुभवों के परिणामस्वरूप अपना स्वयं का एक सोचने तथा रहने का तरीका बना लेते हैं। उनमें पांडित्य नहीं होता। पर सामान्य ज्ञान के कारण वे सुखी रहते हैं। पर ऐसे व्यक्ति को जब बाह्य संघर्ष करने पड़ते हैं तो उसकी विचार-शैली तथा जीवन-शैली में आघात पहुंचता है। जीवन के अनुभव जो छनकर उभरते हैं, वे भी ऐसे क्षणों में काम नहीं आते। कुछ आदमियों की चिंतन-शैली में परिवर्तन हो जाता है, भले ही वह असंतुलित न दिखे पर अंदरूनी संघर्ष की झलक उसकी वाणी में प्रतिबिंबित होने लगती है। मृत्यु-चिंतन में यदि कोई जीवन-संघर्ष की बात करने लगे तो न तो वह संघर्ष कर पाएगा और न ही मृत्यु के सत्य को समझ पाएगा। वह खोया-खोया-सा एक तरह की सनकी जिंदगी व्यतीत करता रहेगा।

आज के व्यस्त जीवन में धूर्तता एवं भ्रष्टाचार के माहौल में सर्वाधिक सुलभ और आसान तरीका जीने का है, सबसे सुलह करके रहो। किसी का विरोध मत करो। लेकिन समाज में दुर्जन तो रहते ही हैं, लाख सुलह की नीति अपनाने पर भी दुर्जन आगे-पीछे आते ही रहते हैं। और उनके तौर-तरीकों को देख-सुन-कर आदमी अपना संतुलन खो बैठता है। उस हालत में उसकी बोली व्यंग्यात्मक तो हो ही जाती है साथ-ही-साथ विरोध का पुट भी आ लाता है। विरोध शुरू होते ही चिंता एवं मानसिक दबाव बढ़ने लगते हैं एवं बोली प्रभावित होने लगती है। किसी को नाराज करना या किसी के मूड को बिगाड़ देना एक ऐसी उपलब्धि मानी जाती है कि इस मनोवैज्ञानिक स्थिति का सभी लाभ उठाते हैं। किसी का

उपहास कर दीजिए, व्यंग्यात्मक शब्दों का प्रयोग कर दीजिए या उसका मखौल इस हद तक ला दीजिए कि वह उसे सहन न कर सके, फिर देखिए आदमी की प्रतिक्रिया। यह प्रतिक्रिया बाहर दिख जाए तो गनीमत है लेकिन यदि मौन प्रतिक्रिया हुई तो वह आदमी अंदर-ही-अंदर सुलगता रहता है। उसके अंदर प्रतिशोध की भावना जलती रहती है। अपना संतुलन वह खो बैठता है। किसी भी आदमी को पटरी से उतारने का यह जो नया तरीका निकला है वह अत्यंत नाजुक तथा खतरनाक तरीका है। कभी-कभी इसके परिणाम बड़े दूरगामी होते हैं। इसी बीच जिन बातों की कल्पना भी नहीं रहती, वे पैदा हो जाती हैं। उनको आकार दिया जाता है, उन्हें संवारा जाता है तथा कुछ-न-कुछ अप्रिय घटना होकर ही रहती है।

यह कोई पसंद नहीं करता कि कोई हिंदू से मुसलमान या ईसाई बने। या मुसलमान या ईसाई से हिंदू बने। सब जगह उस एक ईश्वर का तेज है फिर भी समाज में आज जो धर्मांतरण की हवा बह रही है उससे कोई भी समझदार व्यक्ति चिंतित होगा। पंजाब में आज जो स्थिति है उसका विश्लेषण करना मैं उचित नहीं समझता। उस प्रांत के रहनेवालों की मन:स्थिति की कल्पना हम अपने घर में बैठे-बैठे नहीं कर सकते। जब मानव-मन में खलबली पैदा होती है, चीत्कार सुनाई पड़ने लगता है उसी अवस्था में वाणी का रूप बदल जाता है। आज का मनुष्य एक आदमकद आईने के सामने खड़ा होकर स्वयं को बड़े गौर से निहारता है और पूर्ण संतोष की मुद्रा में कहता है, "यह है प्रकृति का सर्वोत्तम निर्माण।" लेकिन जैसे ही वह किसी बीमारी से पीड़ित हो जाता है या उसके किसी अंग में लकवा आ जाता है या उसके शरीर के किसी अंग में कैंसर हो जाता है, उसकी मानसिक प्रतिक्रिया बिलकुल भिन्न हो जाती है। वह अंदर-ही-अंदर असंतुलित हो जाता है तथा उसके अंदर सब तरह की चिंताएं आ जाती हैं। तात्पर्य यह है कि जब तक मनुष्य पर कुछ शारीरिक या मानसिक वेदना नहीं आती तब तक ही वह सबकुछ पसंद करता है तथा अपने को संतुलित रखता है। जैसे ही सामान्य जीवन में कोई अवरोध उत्पन्न होता है या कोई असाधारण बीमारी हो जाती है, वह विचलित हो जाता है।

असंतुलित एवं अर्धविक्षिप्त मानवों के बीच का अंतर सूक्ष्म है। उनकी आवाज, वाणी एवं व्यवहार का कैसा रूप होता है, यह देखने की बात है। कहा जाता है कि एक प्रतिभावान् व्यक्ति एवं एक पागल के बीच का अंतर अति सूक्ष्म है। जिस क्षण एक प्रतिभाशाली अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है उस समय यह नहीं कहा जा सकता कि वह क्या कर बैठेगा। इतिहास में इस तरह के मनुष्यों के एक से एक उदाहरण भरे पड़े हैं।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन प्रति संध्या घूमने के लिए जाया करते थे।

घूमकर आने के वाद घर के अपने कमरे के पलंग पर लेट जाते थे तथा अपनी छड़ी को कमरे के कोने में खड़ी करके रख देते थे। एक शाम जब वह घूमकर लौटे तो छड़ी को पलंग पर लिटा दिया और वे स्वयं कमरे के कोने में, जहां पर छड़ी टिकाकर रखी जाती थी, वहां पर खड़े हो गए। थोड़ी देर बाद जब श्रीमती डार्विन उस कमरे में आईं तो यह दृश्य देखा और वे हंस पड़ीं। इसी तरह न्यूटन, जो एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक थे, उनके भी कई किस्से हैं। एक दिन न्यूटन ने अपनी पत्नी से चाय बनाने को कहा। पत्नी ने चाय बनाना शुरू किया। स्टोव पर बरतन में पानी उबलने लगा और श्रीमती न्यूटन ने समय का अंदाज लगाने के लिए हाथ में एक कलाई घड़ी भी रख ली थी। उसी समय बाहर के दरवाजे से किसी ने आवाज लगाई और श्रीमती न्यूटन को जाना पड़ा। जाने के पहले श्रीमती न्यूटन ने अपने हाथ की घड़ी को न्यूटन को देते हुए कहा कि समय हो जाने पर चाय-दूध आदि डाल देना। और ऐसा कहकर वे चली गईं। कुछ ही देर बाद जब श्रीमती न्यूटन लौटकर आईं तो देखा कि घड़ी खौलते पानी में पड़ी है और न्यूटन आराम से खड़े हैं। इसी तरह प्रसिद्ध वैज्ञानिक आर्कीमिडिस जिसने 'आर्कीमिडिस सिद्धांत' की खोज की, वे नहाने के टब के पानी में डूबे हुए नहा रहे थे। जैसे ही उन्हें टब के पानी के अंदर यह महसूस हुआ कि उनका शरीर हल्का हो गया है, वे मारे खुशी के नंगे बदन ही टब से बाहर निकलकर जोर से चिल्लाने लगे—पा लिया, पा लिया। ऐसी घटनाओं से निष्कर्ष यह निकलता है कि ये महान् प्रतिभाशाली व्यक्ति पागल तो नहीं कहे जा सकते पर वे किस क्षण अपना मानसिक संतुलन खो बैठें, यह कहना मुश्किल है। इन घटनाओं को दूसरे नजरिए से भी देखा जा सकता है कि शायद वे अपने विचारों में कितने तल्लीन थे कि उन्हें अपने आसपास का कोई ख्याल नहीं रहा। लेकिन आखिर ऐसा व्यवहार सामान्य नहीं माना जा सकता।

मनुष्य सारे परेशान हैं, केवल परेशानी की मात्रा में फर्क है। आत्मज्ञान न हो तो मनुष्य का जीवन दुःखों और निराशाओं से भर जाता है। इस ज्ञान से शून्य होकर दो भिन्न वैज्ञानिकों ने अपने-अपने स्वार्थ से अंधे होकर एक-दूसरे को गोली मार दी। एक चिकित्सक धूम्रपान की सारी खराबियों को जानते हुए भी उसे छोड़ नहीं सकता। यदि हमारे भीतर दुर्बलता आ गई है तो हम उसे पहचानें, उससे सजग रहें लेकिन होता इसका उलटा है। दुर्बलताओं को छिपाने के लिए असंतुलित होकर हम अन्य दुर्गुण पालने लगते हैं। कोई मार्मिक दुर्घटना या हृदय-विदारक समय आ पड़ने पर हम अपना विवेक-धैर्य खो बैठते हैं और अवांछनीय व्यवहार कर बैठते हैं। कबीर कहा करते थे कि या तो धन कमा लो या राम नाम कमा लो। जिस मनुष्य को न तो माया मिलती है और न राम ही मिलते हैं उसकी मानसिक अवस्था सोचनीय हो जाती है। एक अत्यंत महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति जब

अपनी इच्छाओं की पूर्ति नहीं कर पाता तो उसे निराशा होती है। उसका मनोबल टूटने लगता है। उस बिखरी मन:स्थिति में वह अपने आपे से बाहर हो जाता है। सनकी जैसा होकर जीवन व्यतीत करता है। ऐसे लोगों के लिए ही कहा जाता है कि उनका कोई भरोसा नहीं कि वे किस समय क्या कर बैठें।

आज के सत्ताधारी लोग, धन-संपत्ति के वैभव से उन्मत्त लोग प्राय: यह कहते सुने जाते हैं कि—

"अपने भयानक रूप से लोगों को डराना,
मुझे खूब अच्छा लग रहा है।"

लेकिन जिस दिन उनकी कुर्सी छीन ली जाती है, वे अपदस्थ कर दिए जाते हैं, उन्हें अपने स्वयं का रूप भयावह दिखने लगता है। वे असंतुलित होकर कुछ भी करने को तैयार हो जाते हैं। समाज में आए दिन इस तरह के व्यक्तियों की जीवनी हम देखते हैं या पढ़ते हैं। युवावर्ग में असंतुलन तो एक मामूली बात हो गई है। बेरोजगारी, दिशा-विहीनता और भ्रष्ट वातावरण के कारण वे केवल आक्रोश में जीते हैं। अग्नि की चिनगारी की तरह यह युवा समूह चाहे जब भड़क उठता है। विस्फोट कर बैठता है और समाज कहता है कि आज हमारे देश के युवक बहक गए हैं। कोई भी व्यक्ति पूरी सचाई के साथ यह नहीं जानना चाहता कि इन सब निराशाओं के पीछे कौन से तत्त्व क्रियाशील हैं। सबको अपनी-अपनी पड़ी है। यही तो सबसे बड़ी बीमारी है।

बड़े-बड़े मानसिक अस्पतालों में जाकर देखें तो ऐसा मालूम होता है कि ये जितने प्रकार के मरीज यहां आते हैं ये सब शुरू-शुरू में मानसिक असंतुलन के लक्षण दिखाते हैं। कारण जो भी हो, उन सब कारणों पर विवेचना संभव नहीं है। ऐसे ही व्यक्ति धीरे-धीरे अर्धविक्षिप्त अवस्था में पहुंच जाते हैं। सबसे दु:खद तथ्य यह है कि मानसिक व्याधि से पीड़ित इनसान यह कभी नहीं सोचता कि वह बहक गया है। उसे इलाज की जरूरत है। वह दूसरों को ही बहका हुआ समझता है। वे मरीज किसी भी श्रेणी के हों, मानसिक व्याधि किस प्रकार की रहती है, यह सब एक बहुत बड़ा अध्याय है। मैं यह जरूर लिखना चाहूंगा कि आज के इनसान के पास न तो स्वस्थ शरीर है और न ही स्वस्थ दिमाग ही है। उसके आसपास स्वस्थ वातावरण भी नहीं है। समाज स्वस्थ रहते हुए भी अस्वस्थ जैसा व्यवहार कर रहा है। इसी विडंबना के कारण अस्वस्थ वातावरण का नजारा है। अस्वस्थता पैदा की जा रही है और इसके लिए दोषी हम-आप सब हैं।

अधपके विचारोंवाले, ढुलमुल नीतिवाले, डांवाडोल हो रही राज्यसत्ता इन सबने मिलकर ऐसी खिचड़ी पकाना शुरू कर दिया है कि उन्हें सुनकर आदमी बिना असंतुलित हुए रह ही नहीं सकता। उनका कहना है कि वास्तविक मुक्ति के लिए आपको पाप करना पड़ेगा और जहां तक हो सके पश्चात्ताप करना होगा।

औरतों और नारी वर्ग को यह बताया जाता है कि उन्हें भी इस आंदोलन में शरीक होना पड़ेगा। उच्च वर्ग की औरतें महिला स्वतंत्रता आंदोलन के नाम से निर्भीक हो गई हैं। महिलाएं क्या कर रही हैं और आगे भविष्य में क्या करेंगी, यह केवल धीरज रखकर चुप्पी साधने की बात है, अन्यथा वास्तविक मुक्ति किसी को भी नहीं मिल पाएगी। हमारे देश की राजनीति में महिलाओं की आवाज और वाणी की कद्र धीरे-धीरे बढ़ रही है। रूस के एक पागल भिक्षुक रास्पुटिन ने सन् १९०५ के आसपास अलेक्जेंड्रा (एक नारी का नाम) के माध्यम से उनकी राजशाही की जड़ों को उखाड़ा था, यह एक दिलचस्प साहित्य है। उस पागल का राजशाही पर जो दुष्प्रभाव पड़ा और उसके जीवन के ढंग से लोगों के मन में जो नफरत पैदा हुई वह उस देश में क्रांति लाने के कारणों में से एक थी। हमारे देश में भी आगे-पीछे कोई सनकी ही क्रांति ला सकता है। हो सकता है कि उसका माध्यम भी कोई महिला ही हो। मैं पूर्व में ही कह चुका हूं कि एक सनकी और प्रतिभावान व्यक्ति में अति सूक्ष्म अंतर रहता है। आशंकाओं व आशाओं के बीच झूलता हुआ मानव अस्थिर रहता है। यदि इसी बीच निराशा भी आ जाए तो वह टूट जाता है। मस्तिष्क में विकार पैदा करनेवाले तत्त्व आ जाते हैं।

धर्म का जीवन मनुष्य को बड़ा बल देता है। नीच जीवन परलोक में भी हैरान करता है। जीवन के प्रति बेहोशी को जिस ढंग से चित्रित किया जाए, ताकि मालूम हो सके कि असंतुलित, अर्धविक्षिप्त अवस्था कैसे उत्पन्न होती है। आज का शिकवा-शिकायत कुछ इस तरह का होता है—

यह दीवानों का मसकन है यह परवानों की बस्ती है,
यहां मौत भी आकर दबे पांव गुजरती है।

मनुष्य जब अपनी अयोग्यताओं, खामियों और कमजोरियों से परिचित हो जाता है तो उसका मानसिक संतुलन बिगड़ने लगता है। उन कमजोरियों से निकलने के लिए वे सब तिकड़म लगाते हैं और केवल निराशा हाथ लगती है। अर्धविक्षिप्त अर्थात् अपने ऊपर से विश्वास का उठ जाना, सभी आसपास की चीजों को शंका की दृष्टि से देखने लगना तथा किसी भी आदमी पर विश्वास न करना, सदैव भय और आशंका का जीवन बिताना। उच्च और पुनीत विचारों को वह समझता ही नहीं। रात-दिन अपने-आपमें केंद्रित होकर केवल अपने बारे में ही सोचते रहना, किसी भी चीज को जल्दी भूल जाना, एक ही विषय को लेकर बार-बार प्रश्न करना। एक बार जो सोच लिया उसे ही ठीक समझना; ये सब ऐसे लक्षण हैं कि आदमी को सतर्क हो जाना चाहिए। रात को सोते समय पलंग पर लेट जाने के बाद स्मरण आया कि शायद दरवाजों की सिटकनी नहीं लगी है। उठकर वह बंद करने के लिए जाता है और ठीक-ठीक देखकर लौट आता है।

थोड़ी ही देर बाद फिर खयाल करता है कि शायद सिटकनी न लगी है। फौरन उठता है और जाकर दरवाजों को पुनः देखता है। यदि यही प्रक्रिया बार-बार होती रहे तो यह समझना चाहिए कि वह शीघ्र ही पटरी से उतर रहा है। पागलपन का जो मजा है वह एक पागल ही जान सकता है—ऐसे वाक्यों के बारे में वह सोचता है तथा उस पर चर्चा भी करता है। आत्मीयता के साथ, लगाव के साथ, एकाग्रता के साथ वह न तो किसी से मिलता है और न ही किसी के दिए हुए काम को करता है। प्रतिक्षण भिन्न-भिन्न विचारों का आना तथा ऐसी चीजों की कल्पना करना जो संभव नहीं हैं, अव्यावहारिक हैं, उसके लिए साधारण हैं। झुंझलाहट, खिन्नता, व्यग्रता तथा आक्रोश के तत्त्व इनके व्यक्तित्व में प्रमुखता से पाए जाते हैं। साधारण आदमी भी इन वेदनाओं का शिकार होता है पर असंतुलित व्यक्तियों में इन तत्त्वों की अधिकता होने के कारण वे असामान्य हो जाते हैं। विवेक, तर्क और बुद्धि होते हुए भी इन गुणों का ठीक-ठीक लाभ नहीं उठा पाते।

आज जबकि मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताओं को जुटाने के लिए कठोर परिश्रम करना पड़ रहा है आम आदमी ने अपने समय और धन को बचाने के लिए अन्य तरीके सोच रखे हैं। और उन अन्य अमानवीय तरीकों को अपनाकर ही वह असंतुलित होता है तथा उसकी मानसिक अवस्था बिगड़ जाती है। आदमी का विवेक और अंतरात्मा तो सदैव उसके साथ रहती है। अतएव आंतरिक संघर्ष के कारण वह सोच नहीं पाता कि क्या सही है और क्या गलत है। आज किसी भी क्षेत्र में मनुष्य यथार्थवादी नहीं है। अंधविश्वास, रूढ़िवाद के प्रति मानव को नहीं बदल सका है।

महात्मा गांधी का रामराज्य, ग्रामराज्य आदि की सारी कल्पनाएं धूल-धूसरित हो गई हैं। सर्वत्र भागदौड़ मची है। कहीं भी व्यक्ति-निर्माण, चरित्र-निर्माण की रचनात्मक गतिविधियों की चर्चा नहीं की जाती। आज कहा जा रहा है कि साहित्य में सत्य से अधिक कल्पना जरूरी है। दार्शनिक प्लेटो कहा करता था कि लोकतंत्रीय देश में शिक्षा निःशुल्क दी जानी चाहिए। बेरोजगारी नहीं होनी चाहिए और जो बेरोजगार हैं उन्हें छात्रवृत्ति देनी चाहिए। किसी के भी बीच कोई भेदभाव नहीं रहना चाहिए। निःशुल्क चिकित्सा-व्यवस्था होनी चाहिए। व्यक्तित्व की गरिमा सर्वोपरि होनी चाहिए। पर हमारे देश में इन बिंदुओं पर सुखद स्थिति नहीं है। सर्वत्र 'उलटा चोर कोतवाल को डांटे' की स्थिति है। सारे मुद्दों पर विकास नहीं हुआ है। और इसीलिए जनता का भ्रम दूर हो रहा है और उसका धैर्य भी टूट रहा है। वे समझते हैं कि जनतांत्रिक सरकार हमारे लिए कुछ नहीं कर सकी है। जिसे देखिए वही देश से लेना चाहता है लेकिन देश को देना कुछ नहीं चाहता। इसी संघर्ष में सब भाग रहे हैं, सब

चिल्ला रहे हैं तथा सब संस्कारविहीन हो रहे हैं। अभ्युदय अर्थात् सबका उदय नहीं हो पा रहा है। जो तिरस्कृत हैं, पिछड़े हुए हैं, उन सबमें असंतोष है लेकिन जो धनिक वर्ग है, उनमें भी आतंक का भय छाया हुआ है। मध्यम वर्ग की हालत सब जानते हैं।

आर्थिक विपन्नताओं तथा सामाजिक परेशानियों से त्रस्त स्वस्थ आदमी भी अपनी जीविका के लिए आंख बेच रहा है। धनिक वर्ग तथा चिकित्सक वर्ग धोखा देकर गरीबों से स्वस्थ अंग खरीद लेते हैं। समझ में नहीं आता कि इनसानियत किधर जा रही है। कोई आदमी अपना गुर्दा बेच रहा है, कोई अपना दिल दे रहा है। इस माहौल में संतुलन किसी भी क्षेत्र में रह सकता है क्या ? वर्तमान समय में आदमी न तो दीन का है और न ही दुनिया का है। एक संतुलित व्यक्ति में ही मस्तिष्क का संतुलन, दृष्टिकोण की भव्यता तथा अभिरुचियों की उदारता रहती है।

१९
सामूहिक अंतर्राष्ट्रीय आवाज

उत्तम यातायात के साधनों के कारण, अनूठे वैज्ञानिक अनुसंधानों के कारण मानव ने जीवन के हर क्षेत्र में अभूतपूर्व सफलता पाई है। डॉ० राधाकृष्णन् कहा करते थे कि मानव चांद पर जा चुका है परंतु पृथ्वी पर चलना नहीं सीखा है। तृतीय विश्वयुद्ध के बादल मंडरा रहे हैं। पूरा विश्व सर्वनाश की आशंका से ग्रसित है। फिर भी सामूहिक अंतर्राष्ट्रीय आवाज इसके विरुद्ध इतनी प्रभावशाली बन रही है कि आशा की किरणें निकल रही हैं। अभी तक इतिहास जातियों और देशों के बीच में संघर्ष का इतिहास रहा है। इस इतिहास ने यह बताया है कि कैसे सामाजिक संगठन टूटे और कैसे आपस में लोगों में विभेद हुआ। हम लोगों ने जीवन एक बंटे हुए व्यक्तित्व, नागरिक वर्ग और समुदाय के रूप में जिया। अब प्रश्न यह है कि कैसे हम अपनी बौद्धिकता, आध्यात्मिकता को मिलाएं और मिलकर एक ऐसे संसार का निर्माण करें जिसमें हमें जीवन के उत्तम मूल्यों की प्राप्ति हो सके तथा मानवता का विनाश न होने पाए।

धर्म की प्रवृत्ति से युक्त राष्ट्रवाद से ही विश्व का कल्याण होगा। आज पूर्व-पश्चिम का परंपरागत विभाजन समाप्त हो चुका है। अपने-अपने स्वार्थ-साधन के लिए राजनीतिक तथा सैन्य गुट निर्मित हो रहे हैं। निर्गुट देशों के भी सम्मेलन होते रहते हैं। रूडियार्ड किपलिंग ने अपने कई लेखों में देशों की एकता के बारे में लिखा है। अब जमाना यह नहीं है कि पूर्व और पश्चिम को अलग-अलग माना जाए। परिवर्तन की लहर इतनी तेज है, सब कुछ एक हो गया है। हम लोग चाहे किसी भी देश के वासी हों लेकिन सबसे पहले हम लोग इस धरती के प्राणी हैं। इस धरती की तमाम सांस्कृतिक विरासत भी सबकी अपनी है।

भारतीय महान् प्रतिभाओं में महात्मा गांधी, रवींद्रनाथ टैगोर, अरविंद आदि के नाम गिनाए जा सकते हैं जो कि पश्चिम और पूरब की सभ्यता का मिश्रण थे। विश्व में अभी तक न जाने कितनी राजनीतिक, आर्थिक एवं सामा-

जिक क्रांतियां हुई हैं। लेकिन इन सबने केवल विक्षोभ तथा भयंकर विपदाओं को ही पैदा किया। उस सबके कारण सत्ता एक हाथ से निकलकर दूसरे के पास चली गई। इन क्रांतियों से विश्व में जो अशांति तथा संघर्ष चल रहा है, स्पर्धा बढ़ रही है, उसे रोका नहीं जा सका। लेकिन अब विश्व के लोगों ने महसूस किया है कि एक ऐसी भी क्रांति संभव है जिससे मानव के दिल और दिमाग में परिवर्तन लाया जा सकता है। संयुक्त राष्ट्रसंघ की जो चिंतन-शैली है तथा उसकी जो विभिन्न शाखाएं हैं उन्हीं के माध्यम से मानवता को एक करने का प्रयास चल रहा है। छोटी-मोटी बाधाओं को तोड़कर जीवन को एक बड़े पैमाने पर समझ सकना और सारी दुनिया को एक रूप में देखना होगा। उसी हालत में विश्व की सारी विपदाएं दूर हो सकेंगी।

हजारों मनुष्यों में से एक व्यक्ति जो मानव-धर्म के स्रोतों से अनुप्राणित होता है वह मानवता की भलाई के लिए आवाज उठाता है। धीरे-धीरे सम विचारवाले व्यक्ति एकत्रित होते हैं और ऐसे लोगों के समूह बन जाने पर संयुक्त राष्ट्रसंघ जैसी संस्था का जन्म होता है। वर्तमान समय में व्यक्तिगत आवाज तथा वाणी का उतना मूल्य नहीं है जितना सामूहिक अंतर्राष्ट्रीय आवाज का मूल्य है। बच्चों के अंतर्राष्ट्रीय बाल संगठन, महिलाओं के अंतर्राष्ट्रीय महिला संगठन ने विश्व के कर्णधारों पर जादू का असर किया है। विश्व-भर के बालक-बालिकाओं तथा महिलाओं का परमाणु युद्ध के विरुद्ध नारों ने आश्चर्यजनक परिणाम दिए हैं। अमेरिकन प्रेसिडेंट रीगन तथा गोर्बाचोव को नाभिकीय युद्ध के शस्त्रों को नष्ट करने के लिए बाध्य किया है। वह संधि इस दशक की सबसे बड़ी उपलब्धि है। विश्व में प्रेम, शांति तथा सुखद वातावरण का निर्माण करने में सं० रा० संघ की जो भिन्न-भिन्न शाखाएं हैं उनका सहयोग तथा उनकी भूमिका अतुलनीय है। उन संस्थाओं की संख्या करीब २० के आसपास है। विश्व में मानवता नाम की चीज को पहचाना जा रहा है। सं० रा० संघ का अटलांटिक चार्टर पूरे विश्व की भलाई के लिए है। सं० रा० संघ में दूरदर्शिता है, किसी भी समस्या को सही रूप से विश्लेषण करने की शक्ति है और इसीलिए उसके कार्यकलापों को एक के बाद एक सफलता मिल रही है। विश्व में मानव-नवजागरण और नव-स्फूर्ति की चमक देखी जा सकती है।

आम आदमी को, दुनिया के जनसमुदाय को क्या चाहिए ? शांति, सुव्यवस्था तथा रोटी। लेकिन इन तीन बुनियादी आवश्यकताओं को छोड़कर युद्ध, हिंसा और प्रतिदिन मारकाट ही सामान्य हो गई है। पूरी मानवता दुःखी है। लेकिन न केवल हमारे देश में परंतु पूरी दुनिया में हाहाकार मचा हुआ है। हमारा देश विदेशी ऋण से दबा जा रहा है। दस वर्ष पहले हमारा ८,९८४ करोड़ रुपए का विदेशी कर्ज था जो १९८८-८९ तक बढ़ते-बढ़ते २,२४,००० करोड़ रुपए का हो

गया। इसमें से १४,००० करोड़ रुपए तो मात्र ब्याज के रूप में चुकाना होगा। इस आर्थिक संकट को भी अंतर्राष्ट्रीय मानीटरी फंड सुलझाने का प्रयत्न कर रहा है। दुनिया में ईरान, इराक की लड़ाई, पेलेस्टीन, इजराइल की लड़ाई, लिबनान तथा गाजा क्षेत्र में मारकाट, अफगानिस्तान का गोरिल्ला युद्ध, शिया तथा सुन्नी जमातों की लड़ाई, मुसलमान तथा ईसाई देशों में टकराव, अफ्रीका में अश्वेत-श्वेत की लड़ाई—सर्वत्र युद्ध और मारकाट, इन सबसे इंसानियत की कोई भलाई नहीं हो रही है। आम लोगों का सर्वनाश हो रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी अदृश्य शक्ति की प्रेरणा से ये सब हो रहे हैं। तबाही, नर-संहार और आपस में कटुता और विद्वेष ऐसा फैल रहा है मानो इसका कोई अंत ही नहीं है। बड़े-बड़े राष्ट्रों के कर्णधार हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं और एक अजीब लाचारी के शिकार हैं। दुःख तो इस बात का है कि शांति-स्थापना के लिए जो अगुवाई की जाती है उसमें भी स्वार्थवश कुछ देश रोड़े अटका देते हैं। मेरी राय में अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएं ही कुछ ठोस कदम उठा सकती हैं। एक युग था जब गौतम बुद्ध ने करुणा का, जीसस क्राइस्ट ने सेवा का तथा महात्मा गांधी ने अहिंसा का बोलबाला शुरू किया था। मानवता को राहत मिली थी पर अब मानव धर्म के स्रोत ही सूख रहे हैं। अब सचाई, सद्‌गुण, सेवा का स्थान अधम स्वार्थपरता ने ले लिया है। और वही सारे विनाश की जड़ है। इनसान तो खुदगर्ज हो ही गया है, लेकिन देश, बड़े-बड़े राष्ट्र भी सिवाय अपने देश की सोचने के दूसरों की भलाई कतई नहीं सोच रहे हैं।

सन् १९१८ में स्थापित लीग ऑफ नेशंस ने अपने २७ वर्ष की अवधि समाप्त कर सन् १९४५ में अपने रूप को बदल दिया। संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना १९४५ में हुई। उसकी भिन्न-भिन्न २० शाखाएं सारे विश्व में कार्यरत हैं। अपने ४३ वर्षों के अस्तित्व में इस संस्था ने सशस्त्र संघर्ष को रोकने के लिए जो शांति-प्रयास किए हैं उसके ठोस परिणाम अब दृष्टिगोचर हो रहे हैं। सं० रा० संघ में विश्व के १५५ देश सदस्य के रूप में सम्मिलित हैं। यह संस्था अपने-आप में शक्तिशाली है तथा मानवीय अधिकारों व प्रत्येक देश की समस्याओं की सुरक्षा के लिए सदैव तत्पर रहती है। निजी स्वार्थ के टकराव के कारण जो पांच महान् शक्तियां हैं—रूस, अमेरिका, चीन, फ्रांस तथा ग्रेट ब्रिटेन—कभी-कभी वीटो का प्रयोग कर महत्त्वपूर्ण से महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव को अमान्य कर देती हैं। लेकिन अब इस व्यवधान को दूर करने की बात सोची जा रही है।

सन् १९६८ में विश्व के सारे लोग अंतर्राष्ट्रीय कल्याण की भावना से जाग उठे थे। उन दिनों अमेरिका द्वारा वियतनाम का युद्ध, फ्रांस में मई, १९६८ की जन जागृति, प्रेग स्प्रिंग—इन तीनों अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं में विश्व के सभी लोगों ने दिलचस्पी दिखाई तथा अपने-अपने तरीके से इन उलझनों का समाधान

ढूंढ़ना चाहा। सबने विश्व-एकत्व की भावना को अपनाना चाहा। सब लोग आशावादी हो गए थे; लेकिन आज १९६८ की आशावादिता कुछ कम हो रही है। निराशा ने उसका स्थान ले लिया है। आज सब यही महसूस करते हैं कि प्रयास करने का कोई अर्थ नहीं है। लेकिन बीच-बीच में संयुक्त राष्ट्रसंघ के ऐसे प्रयास हो जाते हैं कि सब लोग पुन: आशावान हो उठते हैं। अफगानिस्तान, पश्चिम एशिया और दक्षिणी-पश्चिमी अमेरिका में लगातार तीसरी बार शांति स्थापना के प्रयासों की सफलता अपने-आप में उल्लेखनीय है। अफगानिस्तान में पिछले आठ साल से जमी सोवियत सेनाओं की क्रमबद्ध वापसी जिनेवा वार्ता की एक सफल कहानी है। इससे पूरे विश्व में तनाव कम हुआ है। कम-से-कम आधा दर्जन बार संयुक्त राष्ट्र महासचिव के दूत ने सहमति वार्ता के दौर चलाए और सफलता मिली।

२० अगस्त, सन् १९८८ को पहली बार ईरान-इराक युद्ध में तोपों का गर्जन बंद हुआ। इस युद्ध से अंतहीन पीड़ा, दु:ख, आर्थिक जो नुकसान हुए उसका कहना ही क्या है। एक लाख से अधिक लोग मारे गए। पश्चिम एशिया की यह सबसे भयंकर और खून-खराबेवाली लड़ाई थी। भूमि पर, समुद्र में और हवा में लड़ाई बंद करने के संयुक्त राष्ट्रसंघ के सुझाव को दोनों देशों ने मान लिया है।

इसी तरह से विश्व के अन्य स्थानों में जो युद्ध की चिनगारियां निकलती रहती हैं उन्हें यह संस्था बुझाती है। दिसंबर, १९८७ में जो अमेरिकी राष्ट्रपति रोनेल्ड रीगन तथा सोवियत संघ के नेता श्री गोर्बाचोव के बीच संधि हुई है वह ऐतिहासिक है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के इतिहास में वर्ष १९८८ ने अपना विशेष स्थान बना लिया है। मिखाइल गोर्बाचोव के साथ रीगन की जो संधि हुई है वह एक महान् उपलब्धि है। इसके तहत दोनों देश ५,६०० किलोमीटर से अधिक दूरी तक मार करनेवाले अंतर महाद्वीपीय प्रेक्षापास्त्रों में ५० प्रतिशत की कटौती करेंगे। मोटे तौर पर यह सहमति है कि दोनों पक्षों के पास ६,००० से अधिक नाभिकीय अस्त्र और १,०६,००० से अधिक इन्हें ले जानेवाले वाहन नहीं रहेंगे। इस शताब्दी के अंत तक समस्त नाभिकीय अस्त्रों का उन्मूलन हो सकता है।

गोर्बाचोव ने १९९९ के अंत तक पृथ्वी को नाभिकीय अस्त्रों के आतंक से मुक्त करने की एक बृहद रूपरेखा बनाई है। तीन चरणों में इस लक्ष्य को प्राप्त करना है। समय के तकाजे ने सोवियत प्रस्ताव की सार्थकता को रेखांकित किया है। दोनों शक्तियां मान गई हैं कि नाभिकीय श्रेष्ठता प्राप्त करने का प्रयास किसी को नहीं करना चाहिए। अमेरिका की आशंका है कि गारंटीशुदा निगरानी के अभाव में धोखाधड़ी की गुंजाइश रहेगी। दोनों देशों के विशेषज्ञों को एक-दूसरे के स्थलों पर जाने का अधिकार दे दिया गया है। अब किसी की आंख में कोई दूसरा धूल नहीं झोंक सकता। इस सबके बावजूद विश्व के कुछ राजनीतिज्ञ इस

संधि की सफलता के बारे में आशान्वित नहीं हैं। 'वारसा', 'नाटो' तथा अन्य युद्ध-संधियों से जुड़े राष्ट्र विरोध की आवाज उठाने लगे हैं, जो दुखद है, अगले दस वर्षों में किस रास्ते पर चलना मुनासिब होगा, यह मानवता को तय करना है। मानव अस्तित्व की रक्षा का सहज बोध यही आवाज देता है कि इस शताब्दी के अंत तक नाभिकीय खतरे को समूल दूर किया जाए। अंतरिक्ष युद्ध योजना में न तो किसी का भला है और न इससे अमेरिकी दावे के अनुसार सुरक्षा ही बढ़ेगी। लोग ऐसे विश्व में रहना चाहते हैं जहां नाभिकीय महाविनाश का आतंक न हो। दोनों देश संयुक्त अभियान के तहत मिलें तथा इस आतंक को जड़ से समाप्त करें। मुनाफे की ताकतों पर पलनेवाली ताकतों की ओर से समस्या पैदा होती है। वे हथियारों की होड़ के लिए चिंतित रहते हैं। दिसंबर, १९८७ की शिखर बैठक के बाद इन ताकतों ने कहना शुरू किया कि फलां-फलां शर्तें नहीं मानी गई हैं, इसलिए संधि की पुष्टि नहीं होनी चाहिए। पर २८ व २९ मई, १९८८ की संधि ने ये सब शंकाएं दूर कर दी हैं। इस संधि की आवाज दिन-ब-दिन बुलंद हो रही है। इच्छा-शक्ति होने पर बड़ी-से बड़ी समस्या हल की जा सकती है, अविश्वास की मोटी-से-मोटी दीवार भेदी जा सकती है। रासायनिक अस्त्रों को प्रतिबंधित करने और परंपरागत सैन्य बलों में व्यापक कटौती के मामले में भी प्रगति मुश्किल नहीं है। मुनाफे की ताकतों पर जानेवाले देश अब अधिक शोर नहीं मचा सकते। अंतर्राष्ट्रीय तीव्र आवाज के सामने उनकी आवाज फीकी पड़ जाएगी। तर्कहीन आवाज वजनहीन होती है। स्वार्थ से प्रेरित आवाज मिमियाती है तथा उसमें नैतिक शक्ति नहीं रहती।

सारी मानव-जाति के कुछ ऐसे भी मूल्य हैं जो हम सबको एकजुट करते हैं। ये हैं मातृत्व का सुख, घर-परिवार और अपने प्रियजन की हित-चिंता। हम सब अपनी इस अभिलाषा की दृष्टि से भी एक हैं। किंतु हम एक निरापद संसार में जीना और काम करना चाहते हैं। ऐसे संसार में जिसमें युद्ध की विभीषिका का कोई खतरा न हो। आज के हमारे तूफानी अशांत युग में बड़ी-बड़ी आशाओं और बड़ी-बड़ी चिंताओं के युग में इन मूल्यों का महत्त्व अतुलनीय हो गया है। आज अलग-अलग लोग या जनगण ही नहीं, पूरी मानव जाति ही हेमलेट की द्विविधा 'जिंदगी या मौत' में पड़ी हुई है। इस चयन की पीड़ा को अपने हृदय से हम जितनी तीव्रता से अनुभव करेंगे उतनी ही प्रखरता से हम रचनात्मक कार्यों की ओर अधिक ध्यान देंगे। मानव-कल्याण की भावनाओं पर जोर दिया जाएगा। अर्थ-व्यवस्था में बुनियादी परिवर्तन, हमारे जीवन का निरंतर बढ़ता जनवादी-करण तथा बच्चों की शिक्षा और लालन-पालन के काम में आमूल सुधार ये सब सामूहिक अंतर्राष्ट्रीय आवाज को बुलंद करने से ही संभव है। हमारे हृदय में सदा जीवन का हर्ष और आशा का प्रकाश बना रहे। हमें अपनी संतानों के प्रति

प्रेम तथा पारस्परिक समझ की भावना को उच्च स्थान देना पड़ेगा। समान विचारवाले लोगों का कर्मीवृन्द बनाने में हम सफल हो जाएंगे। राष्ट्र-निर्माण की दिशा में हर देश प्रयास कर रहा है। लेकिन उन्हें मानवता के नाम पर एकजुट होकर अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं को सहयोग देना होगा। खतरे का सामना होने पर मनुष्य अपनी सारी शक्ति बटोरता है। आज मानव जाति यह समझ गई है कि एकता में ही उसे शक्ति मिलेगी जिससे वह नाभिकीय युद्ध के दावानल में भस्म होने से बचा सकती है। भयंकर रोगों पर विजय पा सकती है तथा भावी पीढ़ियों के लिए धरती, वायु और जल को साफ बनाए रख सकती है। इसीलिए आज भिन्न-भिन्न अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएं एकजुट होकर मानव-कल्याण के लिए समर्पित हैं। आज संसार के सैंकड़ों महिला संगठनों के परस्पर संबंधों में हम ऐसे विवेक-संगत सहयोग की चेष्टा को ही प्रमुख पाते हैं जो गौण बातों में स्वाभाविक मत-भेदों पर पर्दा नहीं डालता परंतु विश्वव्यापी समस्याओं के हल में विजय की संभावना देता है। यही परस्पर समझ और विश्वास का सबसे सही और छोटा रास्ता है। टकरावों में फंसने के बजाय महिला आंदोलन में भी अब इन चार या उन समस्याओं के हल के प्रति परस्पर स्वीकार्य रुख तथा विभिन्न सामाजिक समूहों के साझे हित ढूंढ़ने की अभिलाषा पाई जाती है।

१९८८ के साल के अंत तक अंतर्राष्ट्रीय महिला आंदोलन के संयोजकों ने दूसरे देशों के संगठनों के साथ मिलकर कई द्विपक्षीय और बहुपक्षीय संगोष्ठियां एवं सम्मेलन करने की योजना बनाई। इनमें विचार-विमर्श के जो विषय थे। उनमें सारी दुनिया की नारियों की दिलचस्पी है। इनमें प्रमुखता ऐसे विषयों को दी गई जैसे शांति की रक्षा, समाज में स्त्री की स्थिति, बच्चों का लालन-पालन, कामकाजी कैरियर और व्यावसायिक उन्नति के लिए अनुकूल परिस्थितियां तथा ऐसे अन्य अनेक प्रश्न। विचारों के खुले आदान-प्रदान, गरमागरम बहसों और रचनात्मक वार्तालापों के मंच बने। सच कहा जाता है कि बहसों में ही सचाई जन्म लेती है। ऐसी परिस्थितियों में परस्पर समझ, आदर और विश्वास की भावना पनपती है।

सं० रा० संघ के अटलांटिक चार्टर में हर पहलू से पूर्णता होते हुए भी उसमें कई खामियां रह गई हैं। उन्हीं छिद्रों का उपयोग करके भिन्न-भिन्न देश युद्ध की स्थिति उत्पन्न कर देते हैं। जैसे आर्टिकल २, पैरा १, आर्टिकल ५१, ४२ एवं २७ में जो त्रुटियां रह गई हैं उनका निराकरण आवश्यक है। मैं उन सबकी चर्चा न करके केवल इतना कहूंगा कि अंतर्राष्ट्रीय परिवार में जो फूट, संदेह व अविश्वास की कमी दृष्टिगोचर होती है, वे सब दूर किए जा सकते हैं। जिस तरह से मनुष्य को आत्मरक्षा का पूर्ण अधिकार है वैसे ही हर राष्ट्र को अपनी रक्षा का अधिकार है। लेकिन जो देश उपद्रव करना चाहता है वह इस तत्त्व की

आड़ में गलत स्थिति पैदा कर देता है। आर्टिकल २७ जिसमें वीटो का समावेश किया गया है, उसका भी दुरुपयोग किया जाता है। वर्तमान समय में पूंजीवादी अमेरिका तथा साम्यवादी रूस एक-दूसरे के प्रति सहिष्णुता नहीं दिखाते। इसके पीछे वर्चस्व की भावना काम करती है और इसीलिए इतनी गहन खतरनाक सैन्य शक्ति बढ़ाई जाती है। इस बीमारी का एकमात्र इलाज है सकारात्मक, रचनात्मक एवं एक-दूसरे की समस्याओं को समझना तथा आत्मसात् करना। जिसमें देने की भावना अधिक हो बजाय लेने के तथा यह भावना सचाई पर आधारित हो। राष्ट्रों की मनोवृत्ति रातोंरात नहीं बदली जा सकती। परंतु समस्या को देखने का नजरिया जरूर बदला जा सकता है। 'आत्मवत् सर्व-भूतेषु' की भावना को जाग्रत् किया जा सकता है। मानव ने सभी क्षेत्रों में चमत्कारिक अभूतपूर्व प्रगति कर ली है लेकिन आपस में एक-दूसरे को शंका तथा संदेह की निगाह से देखते हैं। इसी कारण इतनी प्रगति हो जाने पर भी हर एक व्यक्ति डरा हुआ है। न जाने कब क्या हो जाए? बड़े-से-बड़ा शक्तिशाली देश चौकन्ना रहता है। उसे डर है कि कोई दूसरा देश उसपर धावा न बोल दे।

कहा जाता है कि न्यूयार्क में एक सौ हवाई जहाज २४ घंटे आकाश में मंडराते रहते हैं। इस मद पर प्रतिदिन कितनी रकम खर्च होती होगी, इसका अंदाज लगाया जा सकता है। मानवीय शक्ति का कितना अपव्यय होता होगा यह कहना मुश्किल है। यह सब केवल डर तथा देश की सुरक्षा के नाम पर किया जाता है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के अटलांटिक चार्टर के तहत धर्म शब्द का उपयोग कहीं नहीं किया गया है। यह निश्चित है कि उसकी जो विभिन्न अठारह अंतर्राष्ट्रीय शाखाएं हैं वे सब केवल मानवता की सेवा के लिए कार्यरत हैं। इनसानियत के तकाजे को सार्थक कर रही हैं। मानवता को तृतीय विश्वयुद्ध की विभीषिका से बचाने के लिए ही करुणा, अहिंसा, भाईचारा, विवेक एवं सेवा की अनुभूति से अनुप्राणित होकर दो महाशक्तियों ने १९८८ में नाभिकीय शस्त्रों के विनाश के लिए आई-एन-एफ-(ट्रीटी) संधि की है।

राजनीतिक क्षेत्र में 'मेरा देश सही या गलत' का जो सिद्धांत मानते हैं वह विवेकपूर्ण नहीं है। देशभक्ति का अर्थ संकीर्णता नहीं होना चाहिए। संकीर्ण देशभक्ति के कारण मनुष्य अपना विवेक खो बैठता है। कूपमंडूक हो जाता है। लेकिन अब धीरे-धीरे अमेरिका और सोवियत संघ दोनों देशों ने अपना रुख बदला है। दोनों देशों में मानवता का सार्वभौमिक रूप देखा जा रहा है। विभिन्न धर्मों तथा अन्य देशों के लोगों का हाथ खोलकर स्वागत अमेरिका के लोग करते हैं तथा सबको अपना लेते हैं। आज से कुछ दशक पूर्व ग्रेट ब्रिटेन में भी यही तरीका था। लेकिन अब उनकी नीति बदल रही है। जाति, धर्म, रंग, भौगोलिक सीमा के अंतर को नजरअंदाज कर केवल गुण पर ध्यान करना तथा उसका

सम्मान करना होगा। उसी हालत में मानवता आगे बढ़ेगी। इसी दिशा में सं० रा० संघ अपनी भूमिका काफी हद तक निभा रहा है और विश्व के लिए महान् कल्याणकारी कार्य कर रहा है।

गुटनिरपेक्ष आंदोलन के माध्यम से संयुक्त राष्ट्रसंघ की आवाज को और अधिक बल मिला है। गुटनिरपेक्ष आंदोलन विश्व के नागरिकों के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। एक सौ एक राष्ट्रों की सदस्यतावाले गुटनिरपेक्ष आंदोलन के सामने इस समय दो प्रमुख समस्याएं हैं—पहली यह कि नए अंतर्राष्ट्रीय वातावरण में जब पूंजीवादी तथा समाजवादी खेमों के बीच तनाव घट रहा है और आपस में लड़ने वाले देश समझौतों की तलाश कर रहे हैं तब इस आंदोलन की क्या भूमिका होनी चाहिए। यदि इस आंदोलन को प्रभावशाली बनाना है तो राजनीतिक मध्यस्थता की भूमिका, आर्थिक विकास, परस्पर व्यापार तथा तकनीकी सहयोग जैसे मुद्दों पर ये अगुवाई कर सकते हैं। संयुक्त राष्ट्र महासचिव जेवियर पेरेज द कुइयार के प्रतिभाशाली व्यक्तित्व ने इस दिशा में काफी कार्य किया है। दूसरी समस्या यह है कि अगला गुटनिरपेक्ष सम्मेलन कहां रखा जाए। अर्थात् अगले तीन वर्षों के लिए इस गुट का नेता कौन बने ?

फिलिस्तीनी मुक्ति संगठन के राजनीतिक विभाग के प्रमुख फारुख खादौती ने इसराइल अधिकृत क्षेत्रों की मौजूदा स्थिति के बारे में एक विस्तृत रिपोर्ट दे दी है। इस बीच फिलिस्तीन राष्ट्रीय परिषद् की बैठक ट्यूनीशिया में हुई। फिलिस्तीन मुक्ति मोर्चा तथा उसके नेता यासर अराफात का वर्षों का संघर्ष सफल हो गया है। फिलिस्तीनी जनता को उसका राष्ट्र मिल गया। इस नए राष्ट्र को भारत तथा कई देशों ने मान्यता दे दी है। उसे और सुदृढ़ बनाने के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ में भी प्रयत्न करेगा। गुटनिरपेक्ष आंदोलन के नेताओं ने अंतर्राष्ट्रीय समुदाय का आह्वान किया है कि दक्षिण अफ्रीका के आतंकवादी कदमों के विरुद्ध ठोस उपाय किए जाएं। अंगोला और दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका, जिसे नामीबिया कहते हैं, के बीच चला आ रहा संघर्ष रोकने के लिए युद्धविराम के लिए सहमत हो जाना एक शुभ लक्षण है। एक ओर जहां इस प्रकार के शांति प्रयासों में संयुक्त राष्ट्रसंघ लगा हुआ है, वहीं दूसरी तरफ अमेरिकी प्रशासन ने ऐसे मौके पर विश्व संस्था को दिया जानेवाला १९८७ का योगदान, जो करीब ४४० लाख डालर होता है, रोक लेने का फैसला किया था। लेकिन यह हर्ष की बात है कि अंततः रीगन प्रशासन ने अपना योगदान उस संस्था को दे दिया। रीगन प्रशासन ने संयुक्त राष्ट्रसंघ की उपलब्धियों से संतुष्ट होकर आठ करोड़ डालर उस समय स्वीकृत कर दिया। केवल ६ करोड़ डालर को कुछ कारणों से रोक दिया। साथ ही १९८९ के लिए १४ करोड़ डालर की स्वीकृति भी दे दी।

संयुक्त राष्ट्रसंघ का एक बड़ा संकट यह है कि न केवल इनके शत्रुओं ने

इनके काम करने का समय नहीं दिया, इसकी उपयोगिता पर शक किया गया। इसे कुछ कर दिखाने का मौका यदि दिया जाए तो यह सचमुच मानव-जगत् की भलाई करने में सफल होगा। इसके जो घोर समर्थक हैं वे भी अपना धैर्य खो बैठते हैं।

मेरी यह मान्यता है कि इस सामूहिक अंतर्राष्ट्रीय आवाज को दिन-प्रतिदिन बुलंद किया जाए ताकि विश्व का भला हो सके।

अमेरिका के पूर्व विदेशमंत्री हेनरी किसिंजर ने कहा है कि भविष्य में अगले दशक में भारत का अमेरिका की तरह रुतबा बढ़ जाएगा। भारत की अंतर्राष्ट्रीय भूमिका बढ़ती जाएगी। सुरक्षा संबंधी मामलों में भारत का महत्त्व बढ़ जाएगा। आनेवाले वर्षों में भारत, चीन, जापान, मेक्सिको, ब्राजील तथा अर्जेंटाइना इतने महत्त्वपूर्ण देश बन जाएंगे कि उन्हें नई अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था के प्रयासों में शामिल करना ही पड़ेगा। भारत एक उभरता हुआ प्रगतिशील देश है। यदि हम लोगों ने अपने देश की आवाज और वाणी को ओजस्वी बना लिया तथा अपनी कथनी और करनी में सामंजस्य स्थापित कर लिया तो निश्चय ही हमारा भविष्य उज्ज्वल है।

हमें केवल यह देखना है कि राजनीति के कुटिल जाल में फंसकर भिन्न-भिन्न देश इस मानवता की भावना को न भूल जाएं। राष्ट्रों के बीच परस्पर स्नेह और मैत्री का आह्वान फीका न पड़े। इसलिए जरूरी है कि सभी राष्ट्र इस संस्था को सचाई के साथ पूरा-पूरा सहयोग देते रहें।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमेरिका व सोवियत संघ महाशक्तियों के रूप में उभरे। एक पूंजीवादी, दूसरा साम्यवादी। इन दो खेमों में शीतयुद्ध की भी स्थिति बनी रहती है। शीतयुद्ध एक ऐसी स्थिति है कि जिस महायुद्ध की लपटें कभी भी पैदा हो सकती हैं, मगर संयुक्त राष्ट्रसंघ ने स्वेज, कांगो, कोरिया, क्यूबा, बर्लिन, लेबनान, वियतनाम आदि संकटों को युद्ध में परिणत होने से रोका और मानव-समाज को भीषण तबाही से बचा लिया। रंग-भेद और जाति-भेद मिटाने में इस संस्था की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। एशिया, अफ्रीका और लातीनी अमेरिका के गुलाम देशों को विदेशी औपनिवेशिक शासन से मुक्त कराने में भी उनका जबरदस्त सहयोग रहा। संयुक्त राष्ट्रसंघ पहले राजनीतिक कार्यों पर अधिक जोर देता था किंतु अब उसकी ८० प्रतिशत गतिविधियां सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी से संबंधित हैं।

अब दो महाशक्तियों में शीतयुद्ध करीब-करीब नहीं के बराबर है। अब तो विकसित और विकासशील देशों के बीच संघर्ष की स्थिति आ गई है। अंकटाड व समुद्री कानून सम्मेलन इसके प्रमुख उदाहरण हैं। लेकिन सबको विश्वास है कि समस्याएं सुलझ जाएंगी।

सं०रा० महासचिव पेरेज द कुइयान ने कहा है कि विश्व की सुरक्षा के लिए खतरा बढ़ा है। हथियारों की जारी होड़, क्षेत्रीय विवादों और मानव-अधिकार-उल्लंघन की घटनाओं के कारण ही यह सब हो रहा है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में सुधार, दुनिया के अनेक भागों में गरीबी उन्मूलन के लिए व्यापक कार्यक्रमों एवं ठोस नीतियों की आवश्यकता है। कोई भी युद्ध ऐसा नहीं होता जो स्थायी विजय दिलाए। सार्वभौम मानव-अधिकार की रक्षा सबको करनी पड़ेगी। संयुक्त राष्ट्र-संघ को मजबूत बनाना अत्यधिक जरूरी है। इसके लिए कई सुझाव दिए गए हैं जिनमें सदस्यता प्रावधान, वीटो अधिकार, स्वतंत्र वित्त-व्यवस्था तथा उसके छः भागों में संगठनात्मक परिवर्तन अर्थात् सुधार आवश्यक है। अभी कई ऐसे मसले हैं जिन पर ठोस कार्यवाही नहीं हो सकी है। पर यदि दो महाशक्तियों के बीच तनाव कम होता रहा तो सारी समस्याएं सुलझ जाएंगी।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के निम्नलिखित उद्देश्य हैं—

(१) अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा एवं शांति बनाए रखना, (२) राष्ट्रों के बीच उनके समान अधिकार और आत्मनिर्णय के आधार पर मैत्रीपूर्ण संबंधों का विकास करना, (३) आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और मानव हितवादी अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाना, मानवीय अधिकारों तथा सबके लिए मौलिक स्वाधीनता के प्रति समान भावना तथा सहयोग प्राप्त करना, (४) समान उद्देश्यों की सिद्धि के लिए राज्य द्वारा किए जानेवाले कार्यों को सामंजस्य का केन्द्र बनाना।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के तहत 'यूनाइटेड नेशंस सिस्टम्स' एक ऐसी पद्धति है जिसकी कई शाखाएं मानव-कल्याण के लिए कार्य कर रही हैं। ये विश्वव्यापी कार्यक्रम मानव-जीवन के हर क्षेत्र में चल रहे हैं। जैसे—(१) विश्व स्वास्थ्य संगठन, (२) खाद्य और कृषि संगठन (एफ०ए०ओ०), (३) अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आई० एल० ओ०), (४) शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति संबंधी संगठन, (५) पुनर्निर्माण और विकास के लिए अंतर्राष्ट्रीय बैंक, विश्व बैंक, भारत सहायता क्लब, (६) अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, (७) अंतर्राष्ट्रीय वित्त निगम, (८) अंतर-राष्ट्रीय दूरसंचार संघ, (९) अंतर्राष्ट्रीय दूरसंचार उड्डयन संगठन, (१०) विश्व अंतरिक्ष विज्ञान संघ, (११) अंतर्राष्ट्रीय बाल संकट कोष, (१२) समुद्र परामर्श संगठन, (१३) अणुशक्ति अभीकरण, (१४) विश्व डाक संघ, (१५) शरणार्थी उच्चायुक्त संगठन आदि।

विश्व स्वास्थ्य संगठन

आज से कुछ वर्ष पूर्व डॉक्टर कोटनिस तथा उनके साथियों ने चीन के स्वतंत्रता अभियान के समय वहां जो मानवीय सेवा की थी, वह आज भी याद की जाती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने पूरी दुनिया से बड़ी माता जैसा भयंकर

बीमारी को जड़ से नष्ट कर दिया है। अब एक नई बीमारी एड्स (ए०आई०डी० एस०) निकली है। यह छूत से लगा व्याधि समूह है जो रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति कम कर देता है। शारीरिक सुरक्षा प्रणाली इस बीमारी से क्षतिग्रस्त हो जाती है तथा इस बीमारी का शिकार व्यक्ति चंद दिनों में ही चल बसता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के आंकड़ों के मुताबिक इसके ९४,००० रोगी हैं। कहा जाता है कि इससे दोगुने रोगी एड्स की चपेट में हैं। करीब एक करोड़ लोगों में इसके विषाणु पल रहे हैं। इसीलिए अब अंतर्राष्ट्रीय जगत् में एकजुट होकर एड्स का इलाज ढूंढ़ने का आह्वान किया गया है।

स्टॉकहोम में जून, १९८८ में एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में दुनिया-भर के चिकित्सक, वैज्ञानिक इकट्ठे हुए। अन्य देशों के ७,००० प्रतिनिधि एक मंच पर जुटे। समाज के सभी प्रमुख वर्गों के विशेषज्ञ भी थे। इनमें गणितज्ञ, सांख्यिकीयविद्, अर्थशास्त्री, पत्रकार, समाजशास्त्री, प्राणिविज्ञान विशेषज्ञ, अपराध विज्ञानी, मनोवैज्ञानिक, न्यायविद् और इतिहासकार भी शामिल थे। सबका एक ही स्वर था कि इस भयंकर बीमारी को कैसे रोका जाए? इसका निराकरण कैसे किया जाए, इसे कैसे तोड़ा जाए? अब तक एड्स का प्रमुख कारण समलैंगिक संबंध बताया गया है। संभवतः इसीलिए सम्मेलन में समलैंगिक आजादी और नारियों के अधिकार के पेशेकार तथा वेश्याओं के प्रतिनिधि भी थे। यह सम्मेलन समाज-सेवा-संगठनों तथा स्वीडन के चिकित्सा विभाग एवं विश्व स्वास्थ्य संगठन के मिले-जुले प्रयास से संभव हुआ। सबने कहा कि इस बीमारी पर रोक कैसे लगाई जाए। एड्स की रोकथाम के उपायों, उसके बचाव की प्रवृत्ति और व्यवहार पर अर्थपूर्ण, सार्थक बहस हुई। सबने कहा कि बीमारी के कारणों और खतरों के खिलाफ जनता को जागरूक और शिक्षित करके ही इसकी असरदार रोकथाम की जा सकती है।

स्वीडन के श्री जार्ज क्लेन ने इस उपाय पर ज्यादा जोर देने को अर्थहीन बताया। उन्होंने बताया कि जनशिक्षण के माध्यम सीमित हैं। उन्होंने उदाहरण दिया कि धूम्रपान के खिलाफ पिछले बीस साल से जनशिक्षण तथा जनजागरण अभियान चलाया जा रहा है लेकिन नतीजा नहीं के बराबर है। उन्होंने कहा कि आणविक जीव-विज्ञान ही इसका इलाज ढूंढ़ने में सफल हो सकती है। विश्व के १३६ देश इस बीमारी से पीड़ित हैं।

नशीले पदार्थों की खपत बढ़ने के कारण एड्स के फैलने का खतरा भी तेजी से बढ़ रहा है। अमेरिका तथा अन्य देशों में कोकीन के नशेड़ियों तथा अफीमचियों के बीच यह रोग शीघ्रता से बढ़ता जा रहा है। पूरे विश्व के लिए उत्तम स्तर की दवाइयां, गोलियां, सुइयां बनाई जा रही हैं ताकि मरीजों को सही दवाई भयंकर बीमारियों के लिए मिल सके। उन दवाइयों की सूची बनाकर पूरे विश्व में वित-

रित की जा रही हैं। ऐसी दवाइयों की सूची भी बनाई जा रही है जिन्हें वैज्ञानिकों ने प्रतिबंधित कर दिया है। बीमारी को पहचानने तथा सही इलाज के लिए एकीकृत तरीका अपनाया जा रहा है। चिकित्सा जगत् के विश्व के जाने-माने वैज्ञानिक बंगलौर में अक्टूबर, १९८८ में एकत्रित हुए थे। वहां रेडियो एक्टिव तत्त्वों की पूर्ण जानकारी पर विवेचना की गई। आई०एस०आर० (इंडियन स्पेस रिसर्च) संस्थान ने यह आयोजन किया था। करीब ९०० विश्व-प्रसिद्ध चिकित्सक एवं वैज्ञानिकों ने आपस में चर्चा की। मानवता की भावना से ही प्रेरित होकर इस तरह के अनूठे प्रयास किए जा रहे हैं। लोग यह समझने लगे हैं कि मानवता सार्वभौमिक है।

प्रति वर्ष नोबल पुरस्कार दिया जाता है। वह भी अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना को उजागर करने में महत्त्वपूर्ण है। प्रति वर्ष छः विभिन्न क्षेत्रों में अभूतपूर्व खोजों या आविष्कारों के लिए यह पुरस्कार दिया जाता है। डॉ० रमन को भौतिकी में नोबल पुरस्कार दिया गया था। १९१२ में रवींद्रनाथ टैगोर को उनके काव्य 'गीतांजलि' पर यह पुरस्कार मिला था। इसी तरह शांति स्थापना के लिए, चिकित्सा, भौतिकी, रसायनशास्त्र, साहित्य तथा अर्थशास्त्र के लिए भी नोबल पुरस्कार दिए जाते हैं। शांति : आस्कर आयरस सांकेज (कोस्टारिका); चिकित्सा : डॉ० तोनेगावा (जापान); भौतिकी : जार्ज बेडनार्ज (प० जर्मनी) एवं अलेक्जेंडर (स्विट्जरलैंड); रसायनशास्त्र : जिन मेरी लटेन (फ्रांस); चार्ल्स पेडरजन, डोनाल्ड क्रेय (अमेरिका); साहित्य : जोसेफ बोडस्की (अमेरिका); अर्थशास्त्र : राबर्ट सोले (अमेरिका)। इस तरह के पुरस्कार के पीछे भी मानवता के गुणों को समझकर योग्य पुरुषों का सम्मान किया जाता है। अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना के लिए भारत सरकार द्वारा संस्थापित यह पुरस्कार प्रत्येक वर्ष ऐसे व्यक्ति को दिया जाता है जो विश्व के लोगों के बीच सद्भावना और मित्रता को बढ़ावा देने हेतु विशिष्ट भूमिका निभाता है। १९६५ में यह पुरस्कार यू० एन० ओ० में भूतपूर्व महासचिव यूथांट को दिया गया था। यह पुरस्कार मार्टिन लूथर किंग, खान अब्दुल गफ्फार खां तथा यहूदी मेनूहिन को भी दिया गया था। हाल में मदर टेरेसा, नेल्सन मंडेला व स्वर्गीय इंदिरा गांधी को भी दिया जा चुका है।

ओलंपिक खेलों के जन्मदाता 'पीयरे द कुबरतिन' को श्रेय देना चाहिए जिनके कारण पूरे विश्व के लोग खेल-कूद के लिए एक अंतर्राष्ट्रीय मंच पर एकत्रित होते हैं तथा सच्ची खेल-भावना का प्रदर्शन करते हैं। खेल के साथ-साथ दुनिया में व्याप्त तनाव को शिथिल करने का यह एक बड़ा माध्यम है। राजनीतिक परिदृश्य से परे हटकर यहां सद्भाव व मैत्री की जो गंगा बहती है वह राष्ट्रों की कटुता को न केवल धो डालती है वरन् परस्पर मैत्री व बंधुत्व की भावना भी जगाती है। ओलंपिक खेलों की मशाल प्रज्वलित होते ही संदेश चारों ओर फैलने

लगता है कि सभी छोटे व बड़े राष्ट्र एकता व सहिष्णुता के पथ पर चलने की शपथ लें। यदि यही ओलंपिक स्प्रिट विश्व के नागरिकों में, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आ जाए तो विश्व का कल्याण निश्चित है। प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वयं के गौरव के साथ-साथ अपने देश के गौरव को भी प्रखर करता है। खेल-भावना से अनुप्राणित विश्व नागरिक पूरे विश्व को एक समझता है। विश्व-कल्याण के लिए इसी खेल-भावना की जरूरत है।

युद्ध-रहित संसार की कल्पना करना वास्तविकता से आंखें मूंदना है। यद्यपि संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा घोषित यू० एन० चार्टर युद्ध-विहीन संसार की कल्पना करता है। उस कल्पना का आधार है सामूहिक अंतर्राष्ट्रीय सद्भाव एवं प्रेम। इसी आवाज को बुलंद करने की भरसक कोशिश चारों दिशाओं में की जा रही है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के यू० एन० चार्टर के प्रयासों के बावजूद युद्ध रोके नहीं जा सकते। युद्ध को रोकने का एकमात्र तरीका यह हो सकता है कि भिन्न-भिन्न देश आपस के संबंधों को मधुर बनायें। सहिष्णुता दिखाएं और सचाई के साथ उन सिद्धांतों का पालन करें।

तत्त्व की बात यह है कि मानवता के सारे सिद्धांतों को निष्पक्ष रूप से अपनाया जाए। महाशक्तियों में आपस में प्रेम-भाव बढ़े। जैसाकि गोर्बाचोव-रीगन की संधि-वार्ता ने सिद्ध कर दिया है। एक-दूसरे की भलाई करने से जो आत्म-संतोष प्राप्त होता है वह मानव-जीवन के किसी भी आनंद से श्रेष्ठ है। यह निश्चित है कि ऐसा ठोस रचनात्मक चिंतन एक रात में नहीं आ सकता। लेकिन उसके बीज बोए जा सकते हैं तथा वातावरण सुधारा जा सकता है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के १५६ देशों में से प्रत्येक देश का अपना धर्म है, सभ्यता है तथा उनकी अपनी परंपराएं हैं। पर जब संघ के मंच पर उन देशों के प्रतिनिधि बैठते हैं तो उन्हें यह प्रतीत होता है कि मानवता सबके लिए समान है। सबके धर्मों का स्रोत मानवीय कल्याण है। विवेकानंद ने विश्व धर्म सम्मेलन में सरल शब्दों में कहा था कि मोती के दाने जिस तरह एक ही धागे में गुंथे रहते हैं वैसे ही सब धर्मों की नैतिकता और आध्यात्मिकता आपस में गुंथे हुए हैं। पूरी मानवता एक है।

स्वामी विवेकानंद ने करीब एक सौ वर्ष पूर्व शिकागो की धर्म महासभा में कहा था, "शीघ्र ही सारे प्रतिरोधों के बावजूद प्रत्येक धर्म की पताका पर यह लिखा रहेगा 'सहायता करो, लड़ो मत'। परभाव ग्रहण न कि परभाव विनाश। समन्वय और शांति न कि मतभेद और कलह।" धीरे-धीरे वह समय आएगा जब यह भविष्यवाणी सत्य होगी। ये मर्मस्पर्शी शब्द आज सत्य का रूप ले रहे हैं। यही आवाज क्रमशः सामूहिक अंतर्राष्ट्रीय आवाज बन जाएगी, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

२०
उपसंहार

आदमी आदमी से डरता है। आज का आदमी स्वयं के प्रति सच्चा नहीं है। प्रत्येक इनसान एक विशेष तरह का मुखौटा लगाए हुए है। इसीलिए उसकी आवाज में वजन नहीं है तथा वाणी में ओज नहीं है। मुझे इस बात का यकीन होता जा रहा है कि हमारी असली समस्या यह है कि हम अपने अंतर्मन की आवाज नहीं सुन रहे हैं। वह आवाज क्षीण और अत्यंत शिथिल पड़ रही है। उसी के फलस्वरूप हर क्षण उसकी वाणी में विरोधाभास रहता है। वह बोलता कुछ है, बताता कुछ है, सोचता कुछ है और करता कुछ और ही है। व्यवहार में इतनी विसंगतियां आ गई हैं कि एक समझदार आदमी को वह पूर्णरूपेण हास्यास्पद दिखता है। आज हम पाखंड और धोखे से मित्रता करते हैं। आज का आदमी अपनी हालत को खुद नहीं समझ पा रहा है।

कोल्हू के बैल की तरह विवेक की आंखों पर पट्टी बांधे वह चक्कर काट रहा है। कभी वह अपने पुराने धार्मिक संस्कारों को पुनर्जीवित करने के लिए मंदिर जाता है, समाज में भी रहता है अतएव विभिन्न महफिलों में भी जाना ही पड़ता है। कई बार मानसिक यंत्रणा के कारण मनोबल टूट जाता है, कभी बाह्य तत्त्व मनोबल को तोड़ जाते हैं। जीवन में कई ऐसी घटनाएं आती हैं, ऐसे अनुभव होते हैं कि उन सबको सहते हुए अवांछित तत्त्वों से भी संधि करनी पड़ती है। वह मंदिर जाता है तो भक्तिपूर्ण पुनीत आवाज सुनाई पड़ती है। महफिलों में जाता है तो खट्टी-मीठी सब तरह की आवाजें आती हैं। असत्य की अनुभूतियों से वह गुंजित हो उठता है। जीवन के आघात-प्रतिघात से जब मन खिन्न हो जाता है तो तांडव नृत्य की-सी भयंकर आवाज घुंघरुओं से निकलती है। फिर भी मनुष्य जीता रहता है। कभी मधुर आवाज सुनता है और कभी उदासीन होकर, विचलित होकर अन्य कर्कश आवाजें भी सुनने लगता है। दिग्भ्रमित होकर चारों तरफ कुछ पा जाने के लिए निहारता रहता है। आज उसके जीवन में ह्रास और मधुहास

नहीं भरा है। केवल आक्रोश, व्यग्रता, संपत्ति अर्जन एवं सत्ता की भूख से वह तड़पता रहता है। यह विचारणीय है कि आज के मनुष्य के अंदर कितनी छटपटाहट है। वह सांसारिक मोह-माया के भंवर में फंसा हुआ है। पुनीत, प्रांजल, ओजस्वी वाणी उसे कहीं सुनने को नहीं मिल रही है। वह संस्कारविहीन हो गया है। हमारे युग की सबसे बड़ी समस्या यह है कि हम चौराहे पर खड़े हैं। समझ में नहीं आ रहा है कि हम किस ओर जा रहे हैं। जब मनुष्य का युद्ध अपने-आपके साथ आरंभ होता है तब उसका कुछ मूल्य होता है। आज वह न तो अपने-आपसे युद्ध कर सक रहा है और न समाज के विरोध में खड़ा हो पा रहा है।

"देखकर पांव रखो, छानकर पानी पिओ, सच बोलो, और मन से पवित्र आचरण करो।" मनुस्मृति कहती है। लेकिन आज सभी सच बोलने से डरते हैं। मन से पवित्र आचरण नहीं करते। आज चोर को चोर कहने की किसी में हिम्मत नहीं है। किसी पर कीचड़ उछालना आम बात हो गई है। चरित्र-हनन करके लोग अपनी धाक जमाना चाहते हैं। चाटुकारिता, कृत्रिम वाणी, मीठी लुभावनी वाणी बोलकर आज सब लोग अवसरवादी हो गए हैं। टूटते हुए समाज के प्रति यदि किसी को ईमानदारी बरतनी है तो वह सही आवाज और सही वाणी बोले। आत्म-प्रवंचना से बचते हुए समाज के प्रति अपने कर्त्तव्यों को सचाई के साथ निभाए।

समस्या तो यह है कि ईमानदार, सच बोलनेवाले व्यक्ति की आज कोई इज्जत नहीं करता। उसकी ईमानदारी को चुनौती दी जाती है। कहा जाता है कि देखते हैं कि वह कब तक सचाई पर टिका रहेगा। वह बेचारा ऐसी आवाज सुन-सुनकर भयभीत हो जाता है। एक दिन ऐसा आता है कि लाचार होकर अपने चारों तरफ के वातावरण को देखकर वह अपनी सचाई की प्रवृत्ति को छोड़ देता है। घोर-से-घोर अन्याय के प्रति वह कोई आवाज नहीं उठा सकता। उसका आत्म-विश्वास डिग जाता है।

आदमी तो क्या पूरा समाज अपराध-बोध से पीड़ित है। आज भी सामंतवादी प्रवृत्तियां पनप रही हैं। हमारी मानसिकता में गुलामी की सड़ांध घर किए है। जिस अंग्रेजी ने हमें गुलाम बनाया वह आज भी हम पर सवार है। कॉनवेंट स्कूल तथा पश्चिमी सभ्यता के प्रतीक नए-नए विश्वविद्यालय हमारी नई पीढ़ी को ठीक-ठीक शिक्षा नहीं दे पा रहे हैं। आज शिक्षा का सीधा अर्थ रोजगार हो गया है। यथार्थ में मानव के अंदर छिपी शक्तियों को जगा देना ही शिक्षा है। शिक्षा गुरु देते हैं और आज गुरुओं की क्या हालत है, यह सबको विदित है।

आदमी की आवाज और वाणी को व्यापक आयाम देना होगा। छोटी-से-छोटी घटनाएं यदि समाज का अनहित कर रही हैं तो उन्हें सामने लाना होगा। सारी घटनाओं को सही परिप्रेक्ष्य में देखने के लिए सबको बाध्य करना होगा।

जमीर बेचकर, शोहरत कमाने की प्रवृत्ति को रोकना होगा। आज ईमान बिक रहा है। सोचनीय तो यह है कि ऐसे लोगों की ही आवाज बुलंदी पर है तथा उनकी वाणी वजनदार समझी जाती है। आजकल किसी भी काम के लिए रिश्वत देनी पड़ती है। कोई भी काम आसानी से क्यों नहीं होता। इस सचाई को सब जानते हैं कि ऐसा क्यों हो रहा है। पर आज बहुत ही कम लोग हैं जो इस प्रवृत्ति के विरुद्ध आवाज उठा सकें। मानव के चरित्र में दोगलापन तो आ ही गया है पर अब आवाज और वाणी में न केवल गिरावट आ गई है अपितु उनमें प्रदूषण भी होने लगा है। स्पष्ट, ओजपूर्ण स्वाभाविक वाणी बोलने में लोग झिझकते हैं। यह सत्य है कि अप्रिय सत्य नहीं बोलना चाहिए। पर असत्य को ही क्यों बोला जाता है ?

"रंगी को नारंगी कहते, बने दूध को खोया,
चलती को हैं गाड़ी कहते, देख कबीरा रोया।"

यह कैसी मूर्खता है—कैसी नासमझी है कि एक अच्छे-खासे रंगवाले फल को नारंगी कहा जाता है। सारयुक्त दूध को 'खोया', निस्तार कहा जाता है और चलती हुई गतिमान वस्तु का नाम गाड़ी (स्थिर) रखा गया है। आज यदि कबीर होते तो बजाय रोने के वह अपना माथा ठोंक लेते। जोर-जोर से विलाप करने लगते। समाज बेरंगी हो गया है। लोग रंगहीन हो गए हैं। उनकी आंखों में पानी रह ही नहीं गया है। चारों तरफ झूठी आवाज उठाई जा रही है और झूठी वाणी बोली जा रही है। आज उसी की दुनिया है और हम सब उन्हीं के करिश्मे आए दिन देखते रहते हैं। देखकर सभी दुखी हो रहे हैं पर सभी बेबस हैं, लाचार हैं। किसी भी वर्ग के लोग हों, जहां भी एकत्रित होते हैं, बातचीत शुरू होती है तो इन्हीं सब बुराइयों का दुखड़ा गाया जाता है। सब मगरमच्छ के आंसू बहाते हैं। लेकिन स्वयं जिस क्षेत्र में काम करते हैं, वहां सचाई नहीं बरतते।

मनुष्य अपनी प्रकृति में जो सुख का आकर्षण रखता है और जिसको वह धीरे-धीरे अपनी चिंताओं और क्रियाओं द्वारा बढ़ा लेता है इन्हीं सुख-अनुरागों से मनुष्य की आत्मा में नीच जीवन की उत्पत्ति होती है। आज मानो सारे संसार में नीच जीवन की भयानक रौ बह रही है। नीच जीवन ने मानवता का बड़ा खून पिया है। इसीलिए आज आदमी की आवाज और वाणी फीकी पड़ गई है।

देश की उन्नति के लिए सही आवाज और सही वाणी की सदैव प्रगति होनी चाहिए। आवाज और वाणी में आदर्शों, उच्च विचारों की संपन्नता होनी चाहिए। नाना प्रकार के अनुभवों से सुसज्जित आवाज और वाणी एक प्रबल हथियार है। मानव इस हथियार का उपयोग अनंत काल से करता आया है। हर युग में युग-धर्म के मुताबिक आवाज और वाणी परिवर्तित होती रही हैं। इन दोनों में परिवर्तन की, विकास की, गतिशीलता की असीम संभावनाएं हैं। एक समय के शास्त्रीय

संगीत से ही वर्तमान में पाश्चात्य संगीत का जन्म हुआ है। आवाज और वाणी की उपयोगिता की, इसके विस्तार की कोई सीमा नहीं बांधी जा सकती। आवाज, ध्वनि, पूरे ब्रह्मांड में है, सौरमंडल में है, जहां पर रात्रि की नीरवता में एक ऐसा मौन रहता है जिसे बिरले ही उस मौन की आवाज को सुन सकते हैं। मौन की आवाज की तीव्रता एवं गति असीम है। मनुष्य की आध्यात्मिक शक्ति के अनुसार उसकी आवाज और वाणी की सार्थकता, शक्ति प्रतिक्षण बढ़ती रहती है। उनमें प्रखरता आती रहती है। उस वाणी में प्रशांत सागर की तरह हिलोरें उठती रहती हैं।

प्रकृति, प्राकृतिक दृश्यों, पर्वतों, चट्टानों, मरुस्थलों, सरिताओं तथा समुद्र की भी अपनी एक विशेष आवाज होती है। इनकी आवाज चिरंतन और शाश्वत है। पेड़-पौधों, जंगल के वृक्षों के झुंड आदि से जो आवाज निकलती है उसका आनंद कवि हृदय तो लेते ही हैं लेकिन आम आदमी भी उस आवाज से आकर्षित होता है। कुछ-न-कुछ संदेश पा जाता है। वर्तमान में शहरों के जीवन का वैचित्र्य सब ही जानते हैं, अनुभव करते हैं। औद्योगीकरण, विशाल कारखाने, बड़े-बड़े दफ्तर, बड़े-बड़े कार्यालय, ये सब भी अपनी आवाजें निकालते रहते हैं। शोर-प्रदूषण के अध्याय में इन सबका वर्णन किया गया है। यह तो मनुष्य पर निर्भर करता है कि वह प्रकृति की आवाज सुने या शहरों की आवाज सुने। या गांवों में खलिहान में एकत्रित अन्न संपदा की आवाज सुने। एक युग था जब त्रिवेणी—प्रयागराज, दार्शनिक दृश्य से यमुना कर्म, गंगा उपासना और सरस्वती ज्ञान का स्वरूप माने जाते थे। मानव जब तक कर्म, ज्ञान और उपासना की त्रिवेणी में अवगाहन नहीं करता तब तक व्यावहारिक और परमार्थिक धरातल पर पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। इन तीनों की उपासना और ज्ञान में कोई विरोध नहीं है। पूर्णता के पर्याय के लिए इन तीनों का समन्वय पवित्र एवं आस्थाशील वातावरण में आवश्यक है।

प्रकृति की आवाज हो, संघर्षमय दैनिक जीवन की आवाज हो या खेतों और खलिहानों की आवाज हो—एक-न-एक दिन मानव सतत जागरूक रहकर परम विंदु पर पहुंच सकता है। अपने को पहचान सकता है। अपने को पहचानने का तरीका, रूप भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। जिस किसी भी आवाज में उसे हर्षातिरेक की प्राप्ति हो वही आवाज उसके लिए जीवनदायिनी हो सकती है। मानव मस्तिष्क में सदैव कुछ-न-कुछ आवाज उठती ही रहती है। यदि वह उन आवाजों को समझकर, संकलित कर एक वाणी का रूप दे सके तो वह रचना अद्वितीय हो सकती है। हो सकता है इस रचना के लिए उसे अधिक समय लग जाए, अधिक तपस्या, अधिक चिंतन, अधिक त्याग करना पड़े। पर यदि उसने सच्ची आवाज, रचनात्मक आवाज को पहचान लिया है तो वह एक-न-एक दिन अवश्य सफल

होगा। उसकी यह संकलित वाणी विशेष रूप अवश्य लेगी। अंदर की आवाज घुटन न बन जाए, दु:खद न हो, इसलिए उसे प्रदर्शित करना चाहिए। जीवन के किसी-न-किसी बिंदु पर आवाज को पहचानते हुए, एक शुरुआत करनी ही पड़ेगी। बिना शुरुआत के अंत हो ही नहीं सकता।

आज तो यह समाज की दुर्दशा है कि बहुत-सी बातें, बहुत-से दृश्य देखे नहीं जाते, मगर फिर भी देखने पड़ते हैं। एक अजीब बेबसी है जिंदगी की। बारीकियों को नजदीक से देखने पर मालूम होता है कि इनसानियत की अहमियत को जो नहीं समझता उसके लिए इनसानियत और हैवानियत में कोई फर्क नहीं है। आज के बहुरूपियों को जब हकीकत बताई जाती है या हकीकत से साक्षात्कार कराया जाता है, उनके चेहरे का पानी उतर जाता है, मुंह से कोई आवाज नहीं निकलती। आजकल गरीबों के कथित मसीहा का नकाब ओढ़कर गरीबों का शोषण करने वाले न केवल राजनीतिक वर्ग हैं वरन् बुद्धिजीवी वर्ग भी कुछ कम नहीं हैं। वातानुकूलित कमरों में रहकर गरीबी की पीड़ा को, उसकी कसक को रेखांकित करने के लिए झोंपड़ियों में रहनेवालों पर कविता लिखते हैं। कविता की पंक्तियों से लगता है मानो गरीबों का सच्चा हमदर्द उनके अलावा इस धरती पर दूसरा कोई नहीं है।

आश्चर्य तो यह है कि ऐसे नकाबपोश यह समझते हैं कि उनके बल पर ही समाज तरक्की की मंजिल की तरफ बढ़ रहा है। यह कितना दु:खद है कि हर नेता मंच से यही कहता है—"भारत के मतदाता बहुत बुद्धिमान हैं तथा अपने विवेक का उपयोग करते हैं।" जबकि सचाई बिल्कुल दूसरी है। यथार्थ में भारत का अधिकांश मतदाता अशिक्षित तथा अनपढ़ है और अपने मत को बेच देता है।

जो जितना भ्रष्ट है वह अपने को उतना ही अधिक पवित्र बताने के लिए प्रयत्नशील रहता है। आज के नेता गरीबों के बीच जाते हैं और कहते हैं कि भाई, आप लोग समझते क्यों नहीं कि आवश्यक बस्तुओं के दाम हम 'गरीबी हटाओ' प्रोग्राम के अंतर्गत बढ़ा रहे हैं। ऐसा कहना न केवल झूठ बोलना है परंतु आत्म-प्रवंचना का प्रखर उदाहरण है। कीमतें बढ़ाई जा रही हैं। वे क्यों बढ़ाई जा रही हैं, यह सर्वविदित है।

इसी तरह 'भ्रष्टाचार हटाओ' भी केवल एक नारा है। सही काम कोई करना ही नहीं चाहता और न उसे करने ही दिया जाता है। लेकिन वह दिन जरूर आएगा जब ऐसे भ्रष्ट लोगों को बेनकाब करना ही होगा। समाज में दादागीरी और मनी-पावर की वजह से खुद लोग अपने को समाज के ठेकेदार मान बैठे हैं। आज यह एक धंधा हो गया है कि सत्ता के दलाल बन जाओ और जो चाहो सो करो। दलाल का रोल अदा करनेवाले पूर्णतः सुरक्षित रहते हैं, उन्हें कोई नहीं छू सकता। कुल मिलाकर धर्म और राजनीति की आड़ में कुछ लोग अपने स्वार्थ

की रोटियां सेंक रहे हैं। वर्तमान समय में एक नई सभ्यता ने जन्म लिया है, जिसमें सत्ता और स्वार्थ की हविस ही सब कुछ है। ऐसे लोभी आज समाज के कर्णधार माने जाते हैं।

वैचारिक धरातल से हटकर राजनेता और लोक प्रतिनिधि जब रास्ते से भटक जाते हैं तब जनता का क्या होगा ? राजनीति सिद्धांतों की पटरी से उतरी हुई है। इसीलिए देश की जनता भी नीचे जा रही है। बकौल एक शायर के—

"जहान में पत्थरों की फसलें हैं, गुल खिलने की बात करते हैं।"

वर्तमान समय में जो संभव नहीं है उसी को संभव बनाने का नारा देना एक सफल व्यक्तित्व की पहचान है। प्रबुद्ध वर्ग समाज के प्रति उदासीन है। उन्हें लगता है कि ईमानदारी, योग्यता, आदर्शवादिता का अब कोई सम्मान नहीं करता। ऐसे माहौल में अवसरवादी ही फूलेंगे और फलेंगे। आज कोई व्यक्ति कहकहा लगाकर हंसता ही नहीं। सुखमय आनंददायिनी हंसी अतीत की चीज हो गई है। आज हंसी में भी तनाव है। कहकहे की गूंज कहीं नहीं सुनाई देती। नशे की हालत में ही आज लोग हंसते हैं। भिन्न-भिन्न हंसी के द्वारा अपने अंदर की भावनाओं को व्यक्त किया जाता है। यह वर्तमान सभ्यता है। कम बोलकर अंदर की कड़वाहट को दबाकर रखना चाहता है। निश्छल, निष्कपट, बालसुलभ हंसी देखने को नहीं मिलती। आज का मनुष्य शब्द और वाणी नहीं निकालना चाहता क्योंकि उसकी उस हंसी को सब लोग ठीक-ठीक समझते हैं जो वह हंसकर बोलना चाहता है। तुलसीदास जी ने कहा था—

"आवत ही हर्षे नहीं, नयनन नहीं सनेह,
तुलसी तहां न जाइए, कंचन बरसे मेह।"

हंसने की मुद्रा के साथ नैनों की भी आवाज सुनाई पड़ती है। आदमी को तुरंत अहसास हो जाता है कि उसका स्वागत किया जा रहा है या निरादर किया जा रहा है।

सच कहा जाए तो आज का मानव दिग्भ्रमित है। उसे न तो अपने स्वरूप का बोध है और न ही संसार की वास्तविकता का पता है। वह तो मात्र देहेंद्रिय सुख को प्रधान मान अपनी चेतना को इंद्रिय और मन के अनुगत कर इस अंधकार में भटक रहा है। कभी किन्हीं विषय-वस्तुओं से सुख का अनुभव करता है। कभी अन्य प्रकार के पदार्थ उसे आकर्षित कर सुख-प्राप्ति का आभास कराने लगते हैं। वह कभी हंसता, कभी रोता और कभी कलपता जीवन व्यतीत करता है। दूर-दूर तक सुख और शांति नहीं रहती।

हमारे ऋषियों ने बताया है कि इस लोक में दो मार्ग है—एक श्रेयस मार्ग, दूसरा प्रेयस मार्ग। ये दो मार्ग मनुष्य को अपनी ओर खींचने का प्रयत्न करते रहते हैं। हमें प्रेयस मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। उसी हालत में हम अपने

लक्ष्य को पा सकेंगे। जो प्रेयस मार्ग को पकड़ता है, वह दिशाविहीन हो जाता है। बुद्धिमान मनुष्य श्रेयस मार्ग को चुनता है तथा मूर्ख प्रेयस मार्ग की ओर उन्मुख होता है।

पुस्तक की भूमिका में मैंने इस रचना के उद्देश्य को रेखांकित किया है। भावना, अनुभूति से ब्रह्मांड की उत्पत्ति हुई है। ये सारी संवेदनाएं, अनुभूतियां, ध्वनि ही तो हैं। शाश्वत स्फोट के माध्यम से ब्रह्मा ने ब्रह्मांड की रचना की है। ध्वनि उत्पत्ति के तीन सोपान हैं—प्रथम 'शब्द', द्वितीय 'अर्थ' (इसे स्पंदन भी कह सकते हैं) और यही वह जीवंत ऊर्जा है अर्थात् श्वास, जिसके द्वारा शब्द निकलते हैं। तृतीय प्रत्यय अर्थात् शब्द अर्थ, प्रत्यय में आवाज निहित है। और उसी कारण ध्वनि उत्पन्न होती है। ध्वनि वह है जो गतिशील हो जाती है। कंपनरहित अवस्था से जब आवाज गति के कारण कंपनमय हो जाती है वह ध्वनि का रूप ले लेती है। इस तरह से दिखने में आवाज ही ध्वनि है। लेकिन प्रत्येक आवाज ध्वनि नहीं हो सकती। मानव-मस्तिष्क की क्षमता अपार है। सारी ध्वनियों को वह ग्रहण करती है और व्यक्तित्व की क्षमता के अनुसार उनका उपयोग करती है।

आवाज की दुनिया कितनी व्यापक और विचित्र है। संक्षिप्त में मैं इसकी चर्चा करूंगा। भूकंप की आवाज के समय पता चलता है कि पत्थरों से भी आवाज निकलती है। सरिता की लहरों की मधुरता, समुद्र के गर्जन की ध्वनि से एक विशेष प्रकार की शांति मिलती है। शीतल, मंद, सुगंध हवा जब झूम-झूमकर बहती है, जंगलों के वृक्ष समूह जब नाचने लगते हैं तब जो आनंद प्राप्त होता है, वह अवर्णनीय है। संगीत की निकली धुनें एवं सामूहिक संगीत और नृत्य से निकली सुहावनी आवाज सबको मुग्ध कर देती है।

कहने का तात्पर्य यह है कि वातावरण में ध्वनि ही ध्वनि है। नृत्य एक महान् कला है। नर्तक या नर्तकी अपने नृत्य की मुद्रा से अंदर की सारी अनुभूतियों को प्रदर्शित करते हैं। लेकिन यदि उस नृत्य के साथ सुमधुर संगीत न रहे तो नृत्य का पूरा-पूरा आनंद नहीं आता। नृत्य के पूर्व संबल ढोल की मोहरा की तालमय प्रस्तुति एक समा बांध देती है।

शब्द अपने-आप में शक्ति से पूर्ण होते हैं। किसी शब्द से हम विचलित हो जाते हैं और कुछ शब्दों से हमारी चेतना इतनी जागृत हो जाती है कि हम ऊंचे उठ जाते हैं। उच्चरित शब्द अणुबम जैसी शक्ति की क्षमता रखता है। हमारे ऋषि-मुनि क्रुद्ध अवस्था में जो श्राप देते थे उसे उनकी आध्यात्मिक शक्ति का विस्फोट ही कहा जा सकता है। 'श्राप' शब्दों और वाक्यों का समूह लेकिन उनकी शक्ति अपरिमित रहती थी। संबंधित व्यक्तियों में चाहे वे जहां भी हों श्राप का असर कैसे हो जाता था, यह शोध का विषय है।

जीवंत आवाज और ओजस्वी वाणी से ही जीवन ऊंचा उठता है। लेकिन

अब आवाज निस्तेज तथा वाणी यांत्रिक हो रही है। टेलीफोन पर वर्तमान समय में समय पूछने पर कंप्यूटर की वही रेंकती, निर्जीव आवाज सुनाई पड़ती है जिसकी लय चौबीसों घंटे एक तरह की होती है। वह ध्वनि रुग्णताग्रसित मालूम होती है। इक्कीसवीं सदी, जो कंप्यूटर का युग कहलानेवाली है, इसमें करीब-करीब सब क्रियाएं रोबोट के द्वारा ही संपादित होंगी। फिर क्या होगा ? ध्वनि और वाणी को यांत्रिक बना दिया जाएगा। न तो उसमें गति होगी, न लय होगी और न ही स्पंदन होगा। वैज्ञानिक की निगाह में आवाज का जो महत्त्व है वह अपनी जगह है लेकिन जीवन में सुख और आनंद देने के लिए भी आवाज की आवश्यकता है।

हमारी परंपराएं महान् हैं, हमारे संस्कार श्रेष्ठ हैं, हमारा साहित्य-संगीत उच्चकोटि का है। हमारे यहां बुद्धि की कमी नहीं है। हमारे वैज्ञानिक-चिकित्सक-टेक्नोक्रेट्स विदेश में जाकर सम्मान पाते हैं। वर्तमान समय में जो नैतिकता में कमी आई है, चरित्र में गिरावट आई है हमें उसे सुधारना है। देश के प्रति लगाव और समर्पण की भावना को पुनः जागृत करना है। लोकतंत्र की आधारभूत संस्थाएं कार्यपालिका, विधायिका तथा न्यायपालिका इन तीनों के उच्च आदर्शों को किसी भी कीमत पर बनाए रखना है तथा उनकी आवाज को मंद नहीं होने देना है।

समाज में अंधविश्वास, कूप-मंडूकता, जहालत, धर्मांधता ही पतन के मुख्य कारण हैं। समाज का नवजागरण, नवनिर्माण उसी हालत में संभव है जब मानव अपनी आवाज पहचाने तथा सही-सच्ची वाणी बोले।

"रात-भर का मेहमान है अंधेरा, किसके रोके रुका है सवेरा।" यह संक्रमण काल बीत जाएगा। जो मायूसी लोगों में छाई हुई है, जो अंधेरा फैला हुआ है उसे हम दूर कर सकते हैं। सवेरा होकर ही रहेगा। देश उन्नति के शिखर पर अवश्य पहुंचेगा।

मनुष्य में देवत्व का उदय, धरती पर स्वर्ग का अवतरण उसी हालत में संभव है जबकि वह अपने अंतर्मन की आवाज सुने और वाणी में सचाई आए। कथनी और करनी में एकरूपता हो। द्विविधा में रहकर, असमंजस में पड़े रहकर वह सदैव असंतुलित ही रहेगा। व्यक्ति-निर्माण, परिवार-निर्माण, समाज-निर्माण उसी हालत में संभव है जबकि वह जीवन के आधारभूत नियमों, सिद्धांतों, संस्कारों एवं आदर्शों का पालन करे। विचार-क्रांति, नैतिक-क्रांति, सामाजिक-क्रांति उसी हालत में संभव है जबकि मनुष्य व्यक्तिवादी भोगवाद को छोड़े तथा समाज के लिए जीना सीखे। जनमानस का भावनात्मक परिष्कार ही सब क्रांतियों की जननी है। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय इंग्लैंड जर्मनी से परास्त हो रहा था। उन क्षणों में विंस्टन चर्चिल ने कहा कि "देश के प्रत्येक नागरिक के लिए यह महान्

क्षण है।" उसने कहा, "यदि इंग्लैंड का विनाश होता है तो कौन नागरिक जिंदा बचेगा और यदि इंग्लैंड जिंदा रहता है तो कौन नागरिक मरेगा।" इस नारे से मानव के अंदर के सारे सद्गुण उभर आए। और अंत में इंग्लैंड की जीत हुई। हमारे देश के कर्णधारों को भी ऐसी वाणी बोलनी चाहिए और हम सबको तदनुसार अपनी विचारधारा बदलनी चाहिए। हमारे देश और पश्चिमी देशों में प्रधान भेद यह है कि हमारा जीवन अंतर्मुखी है और उनका बहिर्मुखी। अभी कुछ वर्ष पूर्व हम अंतर्मुखी जीवन में ही विश्वास करते थे पर जब से पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव पड़ा है हम केवल बहिर्मुखी बन गए हैं। हमें इन दोनों जीवन पद्धतियों के बीच संतुलन कायम करना होगा। पश्चिमी देश भी अब हमारे जीवन-दर्शन का लोहा मानने लगे हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि वह शुभ दिन शीघ्र आएगा जबकि हम अपने पुराने गौरव को पुनः प्राप्त कर लेंगे। हमारा यह संक्रमण काल शीघ्र समाप्त होगा। जिस दिन हम अपने देश के लिए जीना सीखेंगे उसी दिन से देश महान् बनने लगेगा। स्वार्थपरता, स्वार्थपरक राजनीति तथा स्वकेंद्रित विचारधाराओं के ही कारण आज हम पिछड़े हुए हैं। अपनी संकीर्णता को छोड़-कर, दूसरों के दुःख की आवाज को सुनकर रोनेवाले आज नहीं हैं। मनुष्य का ध्येय संसार के प्रति भलाई करना है, अपने गुणों का गान करना नहीं। पर आज मनुष्य केवल अपने गुणों का गान ही करता है। परोपकार से उसे कोई सरोकार नहीं है।

आवाज और वाणी की दुनिया पर विचार व्यक्त करते हुए मैंने इस आधार-भूत सत्य को उजागर किया है कि आज का मनुष्य अपनी अंतरात्मा की आवाज को नहीं सुन पा रहा है। फलस्वरूप जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में धोखेबाजी, पाखंड, कृत्रिमता एवं आत्म-वंचना का साम्राज्य है। कोई भी व्यक्ति किसी भी स्तर का क्यों न हो, किसी भी धंधे में क्यों न हो लेकिन वह सचाई के प्रति स्थिर नहीं रह पा रहा है।

कविवर रवींद्रनाथ टैगोर के निम्नलिखित उद्गार सबके लिए स्फूर्तिदायक हैं। हम उस स्वतंत्रता के विश्व की ओर बढ़ना चाहते हैं जहां बुद्धि भय नाम की चीज नहीं जानती, जहां सभी सिर उठाकर चलते हैं, जहां ज्ञान के मार्ग में किसी भी तरह की बाधाएं व अवरोध नहीं हैं। जहां शब्द सत्य के गर्भ से पैदा होते हैं, जहां बुद्धि-विवेक की निर्मल धारा मृत प्रथाओं के रेगिस्तान में जाकर खो नहीं जाती। जहां बुद्धि विचारों और कार्यों के रूप में उन्मुक्त उड़ान भरती है। आज अंतरात्मा की आवाज इतनी शिथिल और क्षीण हो गई है कि उसे पहचानना आवश्यक है। बिना इस पहचान के व्यक्ति, परिवार, समाज, देश का कल्याण संभव नहीं है। मात्र अंतरात्मा की आवाज पहचान लेने पर मानव के लिए अपेक्षित समस्त सद्गुण प्रादुर्भूत हो जाते हैं।

सारे विश्व के लोग मानव धर्म के स्रोत को समझने लगे हैं। अपने जीवन में तदनुसार कार्य करें तो आपस की बहुत-सी उलझनें यों ही कम हो सकती हैं। सनातन धर्म का श्रद्धा और विश्वास, बौद्ध धर्म की करुणा, जैन धर्म की अहिंसा, सिख धर्म की गुरु-भक्ति, ईसाई धर्म की सेवा, इसलाम धर्म का भाईचारा, पारसी धर्म की पवित्रता—ये सब आवाजें सर्वत्र फैली हुई हैं। लेकिन इन सब आवाजों को वर्तमान समय में अनसुना किया जा रहा है। मानव-स्वभाव सर्वत्र एक-सा है। इनसानियत, मानवता की आवाज को धूमिल होने से बचाया जाए। वाणी को निस्तेज न होने दें। मानवता की आवाज सार्वभौमिक है। नियति की पाटी पर क्या लिखा है, उसे पढ़ना असंभव है। लेकिन निम्नलिखित नारों को हम लुप्त तो अवश्य कर सकते हैं तथा उसके लिए कर्त्तव्यनिष्ठ भी हो सकते हैं—"शांति चाहिए हिंसा नहीं; स्नेह चाहिए नफरत नहीं; सहयोग की भावना चाहिए विरोध की नहीं; निर्माण की आवाज गुंजित हो न कि विनाश की।"

□□

मुद्रक : पंडित कंपोजिंग एजेंसी द्वारा दुर्गा मुद्रणालय, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२

वि० का० - २८६

डा. मदनलाल शुक्ल

जन्म : 15 मार्च, 1923

शिक्षा : प्राथमिक स्तर से मैट्रीकुलेशन तक लगातार मेरिट छात्रवृत्ति तथा डिग्री स्तर पर आगरा कॉलेज का आलराउंड मेरिट स्कॉलरशिप।

आगरा कॉलेज यूनीयन में सैक्रेटरी। वाद-विवाद प्रतियोगिता में अग्रणी तथा प्रांतीय स्तर पर फुटबॉल के सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी का पुरस्कार।

एम.बी.बी.एस. के तृतीय वर्ष में फार्मेसी मेटीरिया मेडिका तथा फारमेकालॉजी में सर्टीफिकेट ऑफ ऑनर।

एम.बी.बी.एस. अंतिम वर्ष में सर्जरी में प्रथम स्थान आने पर पुरस्कार तथा सर्टीफिकेट।

सन् 1951 में मास्टर ऑफ सर्जरी (M.S.) की उपाधि।

सेवा : एक वर्ष तक कॉलेज में अध्यापन कार्य।

मेडीकल कॉलेज नागपुर में दो वर्ष तक 'लेक्चरर इन सर्जरी' के पद पर कार्य किया। इसी वर्ष ऑल इंडिया एसोशिएसन ऑफ सर्जंस की सदस्यता मिली। तभी अनेक लेख प्रकाशित हुए।

सन् 1953 में लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित साक्षात्कार में प्रथम स्थान तथा सिविल सर्जन के पद पर नियुक्ति।

सन् 1981 में सेवा निवृत्ति।

विज्ञान, विशेषकर स्वास्थ्य व चिकित्सा विज्ञान, के जनोपयोगी विषयों पर गंभीर लेखन को अब पूरी तरह समर्पित। इनकी सर्वप्रथम कृति 'असामायिक मृत्यु : कारण और बचाव' नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले में पुरस्कृत होकर सम्मानित हो चुकी है। आगामी पुस्तकें हैं—'बचपन से बुढ़ापा' तथा 'आधुनिक चिकित्सा पद्धति और योग'।